जातक-कथा

[भगवान् बुद्ध के पूर्व जीवन की चुनी हुई कथायें]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन
सुशीलकुमार

१६५०
सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री,
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

प्रथम बार : १६५०

मूल्य
तीन रुपये

मुद्रक :
तीर्थराम
कैपिटल प्रेस,
दिल्ली

विषय-सूची

प्रस्तावना

पालि वाङ्मय में तिपिटक [त्रिपिटक] का विस्तार इस प्रकार है[1] —

१. सुत्तपिटक, निम्नलिखित पांच निकायों में विभक्त हैं :

(१) दीघनिकाय, (२) मज्झिमनिकाय, (३) संयुत्तनिकाय, (४) अंगुत्तरनिकाय (५) खुद्दकनिकाय :

खुद्दकनिकाय के १५ ग्रन्थ हैं।

(१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, थेरी-गाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंश, (१५) चरियापिटक।

२. विनयपिटक निम्नलिखित भागों में विभक्त हैं :

(१) महावग्ग, (२) चुल्लवग्ग, (३) पाराजिका, (४) पाचित्तियादि, (५) परिवार पाठ।

३. अभिधम्मपिटक में सात ग्रन्थ हैं :

(१) धम्मसंगणि, (२) विभंग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गलपञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान।

इसी तिपिटक में एक प्राचीन वर्गीकरण है। उसके अनुसार बुद्धवचन इन नौ भागों में विभक्त हैं :

(१) सुत्त, यह शब्द सूत्र तथा सूक्त दोनों संस्कृत शब्दों का रूपान्तर समझा जाता है। कुछ लोगों ने पालि सुत्त को सूत्र कहा है। दूसरों ने आपत्ति की है : क्योंकि यह पाणिनि के व्याकरण सूत्रों की तरह छोटे आकार के नहीं हैं, इसलिए इन्हें सूत्र न कहकर सूक्त कहना चाहिए, जैसे वेद के सूक्त।

संस्कृत बौद्ध साहित्य में सूत्रों को सूत्र ही कहा गया है। इधर संस्कृत

१ सुमंगल विलासिनी (दीघनिकाय अट्ठकथा) की निदानकथा।

साहित्य में भी आश्वलायन सूत्र आदि गृह्य सूत्रों से अपेक्षाकृत समान होने के कारण सूत्रों को सूत्र कहना ही ठीक होगा। अंगुत्तरनिकाय के एकक निपात आदि में जो छोटे-छोटे बुद्धवचन हैं, वे ही वास्तव में प्राचीन सूत्र हैं। और जिन सूत्रों को सूक्त कहने की अधिक प्रवृत्ति होती है, वह इन सूत्रों पर लिखे गये वेय्याकरण (व्याख्याएँ) हैं।

यहां तो इतना ही अभिप्रेत है कि अशोक के समय से बुद्धवचन के एक अंश के लिए सुत्त शब्द व्यवहृत होता था।

(२) गेय्य—अलगद्दूपम सुत्त (मज्झिमनिकाय २२ वां सूत्र) की अट्ठकथा में लिखा है कि सूत्रों में जो गाथाओं का हिस्सा है वह गेय्य है। उदाहरण के लिए संयुत्तनिकाय का आरम्भिक हिस्सा। सभी प्रकार की गाथाओं को यदि गेय्य माना गया होता तो, उन गाथाओं का कोई पृथक वर्गीकरण रहा होता। प्रतीत होता है कि किसी खास तरह की गाथाओं की ही संज्ञा गेय्य रही होगी।

(३) वेय्याकरण—अर्थ है व्याख्या। किसी सूत्र का विस्तारपूर्वक अर्थ करने को वेय्या कहते हैं। भविष्यद्वाणी के अर्थ में जातक में व्याकरण शब्द आया है ; किन्तु इस शब्द का न तो उस व्याकरण से कुछ संबन्ध है और न संस्कृत वा पालि के व्याकरण साहित्य से।

(४) गाथा—बुद्धघोषाचार्य ने धम्मपद, थेरगाथा और थेरीगाथा की गिनती गाथा में की है। इनमें से थेरगाथा में अशोक के भाई वीतसोक की गाथाएं उपलब्ध हैं।[1] इससे तथा इसकी रचना-शैली से सिद्ध है कि इस ग्रंथ का वर्तमान रूप भगवान् के परिनिर्वाण के तीन-चार सौ वर्ष बाद का है।

(५) उदान—मूल अर्थ है उल्लास—वाक्य। खुद्दकनिकाय में जो उदान नामक ग्रंथ है उसके अतिरिक्त सुत्तपिटक में जहां-तहां और भी अनेक

---

१ इमस्मिं बुद्धुप्पादे अट्ठारस वस्साधिकानं द्विन्नं वस्स सतानं मत्थके धम्मासोक रञ्ञो कणिट्ठभाता हुत्वा निब्बत्ति। तस्स वीत सोकोत्ति नामं अहोसि (वीतसोक थेरस्स गाथा वण्णना)।

उद्गान आए हैं। यह कहना कठिन है कि इनमें से कितने उद्गान अशोक से पूर्व के हैं।

(६) इतिवुत्तक—खुद्दकनिकाय का इतिवुत्तक १२४ इतिवुत्तकों का संग्रह है। इनमें से कुछ अशोक के समय के और पहले के भी हो सकते हैं।

(७) जातक—यह कथा-साहित्य सर्वप्रसिद्ध है। अनेक दृश्य साँची,[1] भरहुत[2] आदि के स्तूपों की वेष्ठनी (रेलिङ्ग)पर खुदे मिलते हैं जो कि १५० ई० पूर्व के आसपास के हैं। इस पर विस्तृत विचार आगे किया ही गया है।

(८) अब्भुतधम्म—अर्थ है असाधारण धर्म। हो सकता है कि भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों में जो असाधारण बातें रहीं उनका वर्णन करने वाला कोई ग्रंथ रहा हो, किन्तु इस प्रकार का कोई ग्रंथ न अब प्राप्य है, न आचार्य बुद्धघोष के ही समय में रहा है। उन्होंने लिखा है "भिक्षुओ, ये चार आश्चर्य अद्भुत धर्म आनन्द में हैं। इस क्रम से (अर्थात्, बुद्ध के इस वाक्य के अनुसार) जितने भी आश्चर्य अद्भुत धर्मों से युक्त सूत्र हैं, वे सभी अब्भुतधम्म जानने चाहिए।"[3]

(९) वेदल्ल—महावेदल्ल और चुल्लवेदल्ल दो सुत्त हैं। इन दोनों सूत्रोंमें (१) महाकोट्ठित तथा सारिपुत्र के (२) भिक्षुणी धम्मदिन्ना तथा उसके पूर्व आश्रम के पति के प्रश्नोत्तर हैं। इनसे वेदल्ल नाम के संग्रह में किस प्रकार के सूत्र रहे होंगे, इसका कुछ अनुमान लग सकता है। प्रतीत होता है कि भगवान् बुद्ध के साथ श्रमण-ब्राह्मणों के जो प्रश्नोत्तर होते थे, वे वेदल्ल कहलाते थे।

सारे तिपिटक में या नौ अंगों वाले बुद्ध वचन में, कितना वास्तव में

१. सांची—भेलसा (प्राचीन विदिशा) के पड़ोस में।

२. भरहुत—इलाहाबाद से १२० मील दक्षिण-पश्चिम एक गाँव।

३. चत्तारो मे भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्देति आदिनयपवत्ता सब्बेपि अच्छरियब्भुतधम्मपटि-संयुत्ता सुत्तन्ता अब्भुत धम्मंति वेदितब्बा।

बुद्ध तथा उनके शिष्यों का उपदेश है और कितना पीछे की भर्ती, कहना कठिन है।

बुद्धवचन का नौ अंगों के रूप में जो प्राचीनतर वर्गीकरण है, उसमें भी जातक का समावेश होने से उसकी प्राचीनता का महत्व स्पष्ट ही है। जब हम देखते हैं कि साँची, भरहुत आदि स्थानों में अनेक जातकों के चित्र उत्कीर्ण हैं, तब उनकी प्राचीनता तथा महत्व और भी बढ़ जाता है।

जातक शब्द का अर्थ है जन्म सम्बन्धी। विकासवाद के अनुसार एक फूल को विकसित होने के लिए, उस पुष्प की जाति विशेष के अस्तित्व में आने में लाखों वर्ष लग जाते हैं। तब क्या कोई भी प्राणी साठ या सत्तर, अधिक-से-अधिक सौ वर्ष के जीवन में बुद्ध बन सकता है? उसे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक जन्म धारण करने ही होंगे। गौतम बुद्ध को भी धारण करने पड़े। बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मों तथा अन्तिम जन्म में उनकी संज्ञा बोधिसत्व रही। बोधि का अर्थ है बुद्धत्व और सत्व का अर्थ प्राणी—बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी। जातक में बोधिसत्व के पांच सौ सैंतालिस जन्मों का उल्लेख है।

कुल जातक वास्तव में कितने हैं? अर्थात् बोधिसत्व ने बुद्ध होने से पूर्व ठीक-ठीक कितनी बार जन्म ग्रहण किया है? कहना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

संस्कृत बौद्धसाहित्य में जातक-माला नाम का एक ग्रंथ है, जिसके रचयिता आर्यशूर हैं। तारानाथ ने आर्यशूर और प्रसिद्ध महाकवि अश्वघोष को एक ही कहा है। लेकिन यह ठीक नहीं। आर्यशूर की जातकमाला में कुल ३४ जातक हैं।

इसी प्रकार श्रीईशानचन्द्र के अनुसार महावस्तु नामक ग्रंथ में लगभग ८० कथाएँ हैं।

थेर-वादियों वा सिंहल, स्याम, बर्मा, हिन्दचीन आदि देशों के बौद्धों की परम्परा है कि जातकों की संख्या ५५० है।

तिपिटक में जिन जातक आदि ग्रन्थों का उल्लेख आया है, उन सभी

ग्रन्थों के साथ उनकी अट्ठकथायें अथवा उनके भाष्य भी सम्बद्ध हैं। धम्मपद के साथ धम्मपद अट्ठकथा है और जातक के साथ जातक-अट्ठकथा। मूल जातक धम्मपद की ही तरह गाथायें मात्र हैं। यदि किसी को जातक-अट्ठकथा से कथा ज्ञात हो तो जातक से भूली हुई कथा याद आ सकती है। किन्तु यदि कथा मालूम न हो तो अकेली कथायें कहीं-कहीं एकदम निरर्थक हैं। बिना जातकट्ठकथा के जातक अधूरा है।

जातकट्ठकथा का रचयिता, संग्रहकर्त्ता अथवा सिंहल से पालि में अनुवादक कौन है? महावंस में लिखा है कि आचार्य बुद्धघोष अभिधम्म-पिटक के प्रथम ग्रंथ धम्मसंगणि पर अत्थसालिनि टीका लिख चुकने के बाद भारत से सिंहल गये। सिंहल जाने का उनका एकमात्र उद्देश्य था सिंहल भाषा में सुरक्षित अट्ठकथाओं का पालि में अनुवाद करना। ये अट्ठ-कथाएं, कहते हैं महेन्द्र के साथ भारत से सिंहल पहुँचीं, इन्हींका बुद्धघोष ने महास्थविर संघपाल की अधीनता में महाविहार, अनुराधपुर में रहकर अध्ययन किया। जब वह विसुद्धिमग्ग नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखकर अपनी उन अट्ठकथाओं को पालिस्वरूप देने की अपनी योग्यता प्रमाणित कर चुके, तभी सिंहल के भिक्षुसंघ ने उन्हें उन सिंहल अट्ठकथाओं को पालि में अनुवाद करने की आज्ञा दी।

इन जातक-कथाओं का अन्तिम संग्रह या सम्पादन किसी के भी हाथों-हाथ हुआ हो; किन्तु इनकी रचना में तथा इनके जातकट्ठकथा का वर्तमान रूप धारण करने में कई शताब्दियां अवश्य लगी होंगी। कुछ-न-कुछ जातकों का उल्लेख तो स्थविरवाद तथा महायान के प्राचीनतम साहित्य में है। उनकी यथार्थ संख्या कह सकना कठिन है।

कुछ ऐसा अबौद्ध साहित्य है जो यद्यपि भगवान् बुद्ध से पूर्व का समझा जाता है, लेकिन उसकी परम्परा भले ही पुरानी रही हो, उसका सम्पादन पीछे ही हुआ है। उस साहित्य में और बौद्धकथा साहित्य में जो साम्य है, वह जहां एक-दूसरे की लेन-देन हो सकता है, वहां यही अधिक

सम्भव है कि एक ही मूलकथा ने दोनों जगह भिन्न-भिन्न रूप धारण किया है।

यह जातक संग्रह अपने वर्त्तमान स्वरूप में कम-से-कम लगभग दो हजार वर्ष पुराना है।

ईसा की प्रथम शताब्दी में आन्ध्र राजाओं के समय गुणाढ्य नाम के किसी पण्डित ने पैशाची भाषा में 'बृहत्कथा' नाम का एक ग्रन्थ लिखा था। पैशाची भाषा या तो आधुनिक दरदी की पूर्वज भाषा थी या उज्जैन के पास की एक बोली[1]। यह गुणाढ्य कौन थे, कहना कठिन है। इनकी 'बृहत्कथा' एकदम अप्राप्य है। अबतक किसी के देखने में नहीं आई। इससे नहीं कहा जा सकता कि वह 'बृहत्कथा' कितनी बृहत् थी और उसमें क्या-क्या था। बाण के हर्षचरित में, दंडी के काव्यादर्श में, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी में और सोमदेव के कथा सरितसागर में उसका प्रमाण है। सोमदेवने, जो कि एक बौद्ध था अपना कथा सरितसागर "बृहत्कथा" से ही सामग्री लेकर लिखा और सोमदेव के कथा सरितसागर में अनेक जातक कथाएँ विद्यमान हैं। इससे अनुमान होता है कि "बृहत्कथा" का आदिस्रोत जातक-कथाएँ ही रही होंगी।

प्रसिद्ध पचतन्त्र की अधिकांश कथाओं का मूल जातकों में ही है।[2] उसका कर्त्ता ब्राह्मण था। बौद्ध कथाएँ जहाँ जन-साहित्य हैं और उनका उद्देश्य जन-साधारण का शिक्षण रहा है, वहाँ पञ्चतन्त्र के ब्राह्मण रचयिता ने उन कथाओं का उपयोग केवल राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए किया है।

हितोपदेश में श्लोकों की अधिकता है। वे सचमुच हितोपदेश हैं। उसमें पञ्चतन्त्र से सहायता ली गई है और अनेक जातक-कथाएँ

१ भारत भूमि और उसके निवासी (पृ० २४६) जयचन्द्र विद्यालंकार।

२ बक जातक (३८)। २ वानरिन्द जातक (५८)। ३ कूट वाणिज जातक (६८)। ४ मिति चिन्ति जातक (११४) आदि।

विद्यमान् हैं।

आख्यायिका-साहित्य में बैताल पञ्चविंशति का भी स्थान है। उसमें पता नहीं, कोई जातक-कथा है या नहीं। सिंहासन द्वात्रिंशिका, शुक सप्तति आदि और भी कई ग्रंथ हैं। जैन वाङ्मय में भी आख्यायिका साहित्य है ही। इस सारे साहित्य में और बौद्ध जातक कथाओं में कहीं-न-कहीं साम्य अवश्य है, जो अधिकांश में जातक-कथाओं के ही प्रभाव का परिणाम है।

जातक-कथाओं में कई कथाएँ ऐसी हैं जो पृथ्वी के प्रायः हर कोने में पहुँच गई हैं। पंचतन्त्र ही इन कथाओं को फैलाने का मुख्य साधन बना प्रतीत होता है। छठी सदी में पचतन्त्र का एक अनुवाद पहलवी अथवा प्राचीन फारसी में हुआ। यह अनुवाद खुसरो नौशेरवां के राजवैद्य की कृति था। इसी अनुवाद से पंचतन्त्र का एक अनुवाद सीरिया की भाषा में हुआ, जो जर्मन अनुवाद के साथ १८७६ में लीपज़िग से छपा। पंचतन्त्र ही का एक अरबी अनुवाद लगभग ७५० ई० में अलमीकाफ के पुत्र अब्दुल्ला ने किया, जिसका नाम था कलेला दमना।[1] यह कथा-संग्रह अरबों को बहुत प्रिय हुआ। आगे चलकर जब अरब यूरोप के दक्षिण देशों में फैले तो उन्हें इन कथाओं को यूरोप में फैलाने का श्रेय मिला।

१८१९ में पंचतंत्रके अरबी अनुवाद कलेला दमना का अंग्रेज़ी अनुवाद हुआ। १४८३ में अरबी अनुवाद से ही पंचतंत्र जर्मन में अनूदित हुआ। १०८० में इस अरबी अनुवाद का ग्रीक भाषा में एक अनुवाद हो चुका था। १८६६ ई० में इस ग्रीक अनुवाद से लातीनी भाषा में अनुवाद हुआ। इसी प्रकार १५वीं सदी के अंत में पंचतंत्र के अरबी अनुवाद का फारसी अनुवाद हुआ जिसका नाम है अनवार सहेली। १६४४ में उस अनवार सहेली से लिव्रे दे ल्यूमिरे (Livre des Lumieres) नाम से फ्रेंच अनुवाद

१ दोनों नाम पंचतन्त्र के कर्कट और दमनक के विकृत रूप हैं।

हुआ। १८७२ में ग्रीक अनुवाद से इटली की भाषा में अनुवाद हुआ। १२५० में अरबी अनुवाद से ही हीब्रू में अनुवाद हुआ ; और इसी सदी के अंत में हीब्रू से लातीनी में भी। फिर आगे चलकर १८९४ में साधी अरबी से भी एक अनुवाद हुआ।

ईसप् की कथाओं के नाम से जिन कथाओं का यूरोप में प्रचार है और जिनके कुछ अनुवाद हमारी भारतीय भाषाओं में, यहां तक कि संस्कृत में भी छप चुके हैं,[1] उनका मूल उद्‌गम-स्थान कहां है? श्री रीज़डेविड्स उन कथाओं के बारे में विस्तृत अन्वेषण करने के बाद इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि उनमें से किसी कथा का किसी ईसप् से संबंध नहीं है।[2] ईसप्-कथाओं का प्रथम संग्रह मध्यम युग में हुआ। उनमें से अधिकांश का मूल स्थान हमारी जातक कथाएँ ही हैं, और बहुत सम्भव है कि लगभग सभी का मूल-स्थान भारतवर्ष है।[3]

पंचतन्त्र के जिस अरबी अनुवाद का हमने ऊपर उल्लेख किया है वह ८ वीं शताब्दी में बगदाद के ख़लीफ़ा अलमंसूर के दरबार में लिखा गया था। इसी ख़लीफ़ा के दरबार में एक ईसाई पदाधिकारी था, जो बाद में संन्यासी हो गया। उसका नाम है डमसकस का सन्त जान (St. John of Damascus)। उसने ग्रीक भाषा में अनेक किताबें लिखीं। उन्हीं में एक किताब बरलाम एंड जोसफ है। इस कथा के जोसफ कौन है? स्वयं बुद्ध। ऊपर कह आए हैं कि बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व अपने पिछले और अंतिम जन्म में बुद्ध बोधिसत्त्व कहलाए। यह बोधिसत्त्व ही बोसत और फिर जोसफ बना। सन्त जान की इस किताब में बुद्ध का आंशिक चरित्र और अनेक

१. अहमदनगर के श्री बालकृष्ण गोडबोले ने संस्कृत में अनुवाद किया था।

२. श्री मैकडानल के अनुसार बब्रियू ने २०० ई० में ईसप् कथाओं को लिखा। (इंडियाज़ पास्ट पृष्ठ १२५)।

३. बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज़ पृष्ठ ३२।

जातक-कथाएं हैं।

अरबी के कलेला दमना की तरह यह ग्रंथ लोगों को बहुत प्रिय हुआ और इसका प्रचार भी बहुत हुआ। अनेक यूरोपियन भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया। यह ग्रंथ लातीनी, फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश, जर्मन, अंग्रेजी, स्वेडिश और डच में प्राप्य है। १२०४ में आइसलैंड की भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ और फिलिपाइन द्वीप में जो स्पेन-बोली बोला जाती है, उस तक में यह प्रकाशित हो चुका है।

कितने ही आश्चर्य की बात प्रतीत होने पर भी यह सत्य है कि सन्त जोसफत के रूप में भगवान् बुद्ध आज सारे रोमन कैथोलिक ईसाइयों द्वारा स्वीकृत[1] हैं, आहत हैं और पूजे जा रहे हैं।

इन जातक-कथाओं के प्रसार और प्रभाव की कथा अनन्त प्रतीत होती है। एक इटालियन विद्वान ने सिद्ध किया है कि किताब उल् सिन्दबाद की अनेक कथाओं का और अलिफलैला की अनेक कथाओं का भी मूल-स्थान जातक-कथाएं ही हैं।

जिस समय हूण पूर्वी यूरोप में गये तो वे भी अपने साथ जातक-कथाओं में से कुछ ले गये। बहुत सी ऐसी कथाएं जिनका मूल जातक कथाओं में है सलाव लोगों में मिली हैं।

बौद्ध देशों में जातक-कथाओं का प्रचार है ही।

इस प्रकार जातक वाङ्मय चाहे उसे प्राचीनता की दृष्टि से देखें, चाहे विस्तार की और चाहे उपदेशपरक तथा मनोरंजन होने की दृष्टि से, वह संसार में अपनी सानी नहीं रखता।

अट्ठकथानुसार इन कथाओं में से तीन-चौथाई कहानियां जेत वन-विहार में कही गईं। शेष राजगृह तथा अन्य कोसम्बी, वैशाली आदि स्थानों में।

---

१. देखो पोप सिक्सटस् (१५८५-९०) की २७ नवम्बर की डिक्री जिसमें भारत के बरलाम और जोसफत को कैथोलिक ईसाइयों के सन्तों के रूप में स्वीकृत किया है।

प्रायः सभी जातकों के आरम्भ में "पूर्व काल में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" आता है। पता नहीं, यह ब्रह्मदत्त कोई राजा हुआ है या नहीं? कुछ लोगों का ख़याल है कि 'जनक' की तरह यह ब्रह्मदत्त भी अनेक राजाओं की पदवी रही होगी। हमारा तो ख़याल है कि कथाओं में ब्रह्मदत्त का मूल्य कथा आरम्भ करने के लिए एक निश्चित शब्द-समूह से अधिक कुछ नहीं, जैसे उर्दू की प्रायः हर कहानी 'एक दफ़ा का ज़िकर है' से आरम्भ होती है और अंग्रेजी की 'वन्स अपान ए टाइम' (Once upon a time) वैसे ही हमारी अनेक जातक-कथाओं के लिए 'पूर्व काल में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय' है।

जब कभी कहा जाता है कि भारतवर्ष का सारा साहित्य परलोक चिन्तामय है, उसको इहलोक की चिन्ता ही नहीं, तो उसे अपनी और अपने वाङ्मय की प्रशंसा समझते हैं। किसी भी जाति का काम केवल परलोक-परक होने से नहीं चल सकता। भगवान् बुद्ध ने इहलोक तथा परलोक चिन्ता में समत्व स्थापित किया। यही कारण है कि जातक कथाओं को बौद्ध वाङ्मय में महत्वपूर्ण स्थान मिला और उनका विकास हुआ। जातक साहित्य जन-साहित्य के सच्चे अर्थों में जनता का साहित्य है। इसमें हमारे उठने-बैठने, खाने-पीने, ओढ़ने-बिछाने की साधारण बातों से लेकर हमारी शिल्पकला, हमारी कारीगरी, हमारे व्यापार की चर्चा के साथ हमारी अर्थनीति, राजनीति तथा हमारे समाज के संगठन का विस्तृत इतिहास भरा पड़ा है। उस युग के भू-वृत्त के भी पर्याप्त सामग्री है। विशेष रूप से उस युग के जल-मार्गों तथा स्थल-मार्गों की।

भारतीय जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं जिसका लेखा इन कथाओं में न मिलता हो। यदि भविष्य में हमारा इतिहास राजाओं की जन्म-मरण तिथियों का लेखामात्र न रह कर जनता के जन्म-मरण के इतिहास के रूप में यथार्थ ढंग से लिखे जाने को है, तो प्राचीन काल के वैसे इतिहास के लिए इन कथाओं का मूल्य बहुत ही अधिक है।

यदि मनोरंजन के साथ-साथ उपदेश ग्रहण करना हो, यदि हृदय को उदार तथा शुद्ध बनाने वाली कथाओं के साथ-साथ बुद्धि को प्रखर करने वाली कथाएं पढ़नी हों, यदि अपने देश की प्राचीन आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक अवस्था से परिचित होना हो तो हम जातक कथाओं से बढ़कर किसी दूसरे साहित्य की सिफारिश नहीं कर सकते।

इस संग्रह में जो ये थोड़ी-सी कथाएँ हैं, इनका मूल खोजना हो तो इन पंक्तियों के लेखक द्वारा अनुवादित[1] 'जातक' देखना होगा। मूल कथाओं में 'वर्तमान-कथा' और 'अतीत-कथा' प्रायः दो भाग हैं। 'वर्तमान-कथा' का मतलब है भगवान् बुद्ध के समय में घटने वाली कोई घटना। उसी घटना से प्रेरित होकर प्रायः भगवान् कहते हैं, "भिक्षुओ, न केवल अभी ऐसा हुआ है, किंतु पूर्व-जन्म में भी ऐसा हुआ है," और उस अवसर पर सुनने वालों के प्रार्थना करने पर 'अतीत-कथा' सुनाते हैं।

ऊपरी दृष्टि से देखने से जातक-कथाओं की इन 'वर्तमान-कथाओं' का ऐतिहासिक मूल्य अधिक प्रतीत होता है ; किंतु ये कथाएँ उतनी ऐतिहासिक नहीं, जितनी काल्पनिक हैं। 'वर्तमान-कथाओं' की अपेक्षा 'अतीत-कथाओं' का मूल्य कहीं अधिक प्रतीत होता है।

१९४१ में 'जातक' का प्रथम-खण्ड प्रकाशित हुआ, बाद में यथा-समय दूसरे खण्ड भी। वे खण्ड आकार-प्रकार और मूल्य की दृष्टि से सामान्य पाठक की पहुँच से बाहर हो गये। दो-तीन खण्ड और प्रकाशित हो जाने पर तो 'जातक' को पढ़ने का मतलब होगा लगभग साढ़े तीन हजार पृष्ठ पढ़ना।

मित्रों, विशेष रूप से श्री मार्तण्ड उपाध्याय, ने सुझाया कि इन जातक-कथाओं में की 'अतीत-कथाओं' में से कुछ का एक छोटा संस्करण प्रकाशित किया जाय। मेरा उत्तर था कि मूल 'जातक' का अनुवाद समाप्त हो कर प्रकाशित होने तक मैं इस काम में हाथ नहीं लगा सकता।

१ जातक (खण्ड १, २, ३, ४—प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)

आगे चलकर भाई मार्तंडजी का विशेष आग्रह देख मैंने यह कार्य अपने अन्तेवासिक श्री सुशीलकुमार को करने की प्रेरणा की। वे पालि लेकर साहित्य-रत्न कर चुके थे और इसलिए हर तरह से इस कार्य के योग्य थे। हर्ष है कि उन्होंने समय निकालकर इन कथाओं को लिख डाला। इन कथाओं को मूल पालि से हिन्दी में लाने का श्रेय यदि मुझे है तो इस संग्रह में इन कथाओं का जो रूप है उसका श्रेय श्री सुशीलकुमार को है। मैं अपने अनुवाद में अनुवादक की मर्यादाओं से बंधा था। सुशीलकुमार को कथाओं को अधिक-से-अधिक बोधगम्य बनाने का ध्यान था। कथाओं की भाषा को मैं भी एक बार देख गया हूँ और इसलिए अब कथाओं के वर्त्तमान रूप की सम्मिलित ज़िम्मेदारी स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

कथाओं के शीर्षक बदल दिये गये हैं। जो पाठक इन कथाओं को मूल वृहत संग्रह में देखना चाहें उनके लिए प्रत्येक कथा का मूल नाम नीचे दे दिया गया है।

कथाएँ अपनी कथा आप कहती हैं। उनके विषय में और क्या कहा जाय? मूल वृहत-संग्रह की भूमिका से जो अंश ऊपर उद्धृत किया गया है, वही कुछ भारी हो गया लगता है।

ऊपर का कवर जिस कथा से संबंधित है वह इस संग्रह की तीसरी कथा है—स्वर्ण मृग।

साढ़े पांच सौ कथाओं के मूल कथा-संग्रह में से ये कुल ७७ कथाएँ ही पाठकों की भेंट हैं। पाठक दूसरे भागों में और कथाओं की भी प्रतीक्षा कर ही सकते हैं।

आगामी संग्रह अथवा इसी संग्रह के दूसरे संस्करण के लिए उपयोगी सुझावों के लिए लेखकद्वय कृतज्ञ होंगे।

बौद्ध विहार,
नई दिल्ली।

—आनन्द कौसल्यायन

जातक-कथा

: १ :

बंजारा

अतीत काल में काशी देश में वाराणसी (बनारस) नाम का एक नगर था। उसमें राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्व उस समय एक बंजारे के घर पैदा हुए थे।

आयु प्राप्त होने पर उन्होंने व्यापार करना शुरू किया। वह आस-पास के ही प्रान्तों में, कभी इस प्रान्त में कभी उस प्रान्त में घूमकर व्यापार करते थे। इस प्रकार माल बेचते उन्हें कई साल बीत गए। एक बार उन्होंने सोचा—क्यों न दूर प्रदेश चलकर खूब सामान बेचा जाय, तरह-तरह के माल खरीदे जायं। इस बहाने देश-भ्रमण भी होगा।

दूर-देश व्यापार के लिए जाने का विचारकर बोधिसत्व ने नाना मूल्य के बहुत से सामान एकत्र किये। पांच सौ गाड़ियों पर उन्हें लादा। इस प्रकार एक महा सार्थवाह (काफिला) के साथ काशी देश से बोधिसत्व ने यात्रा शुरू की।

उसी समय बनारस से ही एक और बंजारे के पुत्र ने पांच सौ गाडियों पर सामान लादकर चलने की तैयारी की। बोधिसत्व ने सोचा, "अगर यह भी मेरे साथ जायगा तो एक ही रास्ते से एक हजार गाड़ियों के जाने के लिए रास्ता काफी न होगा, आदमियों के लिए लकड़ी-पानी, बैलों के लिए घास-चारा मिलना कठिन हो जायगा। इसलिए या तो उसे आगे जाना चाहिए या मुझे।"

1. अपण्णक जातक। 1.1.1

बोधिसत्व ने उस आदमी को बुलाकर कहा—"भाई, हम दोनों इतने जन-बल के साथ इकट्ठे नहीं जा सकते। या तो तुम आगे जाओ या मैं आगे जाऊं।"

दूसरा बंजारे का बेटा इतना अनुभवी नहीं था। उसने सोचा—आगे जाने में मुझे बहुत लाभ है। बिना बिगाड़े हुए रास्ते से जाऊंगा। मेरे बैल अछूते तृण खायंगे। अपने आदमियों को तेमन बनाने के लिए अछूते पत्ते मिलेंगे। साफ और इच्छा भर पानी मिलेगा और मन-माने दाम पर सौदा बेचूंगा। अपने लाभ की ये सब बातें सोचकर उसने बोधिसत्व को जवाब दिया—"मित्र! मैं ही आगे जाऊंगा।"

बोधिसत्व ने पीछे जाने में बहुत लाभ देखे। उसने सोचा—अगर यह बंजारा आगे-आगे जायगा तो इसकी गाड़ियों के पहियों से तथा बैल और आदमियों के पैरों से ऊबड़-खाबड़ रास्ते समतल हो जायंगे। जहां रास्ता नहीं होगा, वहाँ रास्ता बन जायगा तथा बने रास्ते और साफ हो जायगे। मैं उसके चले रास्ते पर चलूंगा। आगे जानेवाले उसके बैल पकी-कड़ी घास खा लेंगे और मेरे बैल नये, मधुर तृण खायंगे। पत्ते तोड़े गए स्थानों पर नये उगे पत्ते साग-भाजी के लिए बड़े स्वादिष्ट होंगे। जहां पानी नहीं होगा वहां ये लोग खोदकर पानी निकालेंगे। उनके खोदे हुए कुओं, गढ़ों से हम पानी पीयेंगे। चीजों का मूल्य निर्धारित करना ऐसा ही है जैसे मनुष्यों की जान लेना। इसके आगे-आगे जाने से मुझे ऐसा नहीं करना पड़ेगा। इसके ही निर्धारित किये हुए दाम पर सौदा बेचूंगा। इतने लाभ देखकर उसने कहा—"मित्र! तुम आगे जाओ।"

"अच्छा मित्र!" कह वह मूर्ख बंजारा गाड़ियों को जोत नगर से निकला। क्रमशः एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में सामान बेचता वह मरुभूमि के निकट पहुंचा। मरु-भूमि पार कर उसे दूसरे प्रदेश में जाना था।

जिस कान्तार में वह प्रवेश करने जा रहा था वह बिना पानी का तथा भूत-प्रेतोंवाला था। कान्तार कई तरह के होते हैं; किसीमें चोरों का भय होता है, किसीमें हिंसक जन्तुओं का, कोई भूतों का कान्तार,

कोई बिना पानी का तथा किसीमें खाने-पीने की वस्तुएँ नहीं मिलतीं। उस आगे जानेवाले बंजारे के बेटे ने बड़े-बड़े मटकों में पानी भरवाकर गाड़ियों पर लदवाया। तब उस बिना पानीवाले साठ योजन के कान्तार में प्रवेश किया।

क्रमशः चलता हुआ वह बीच कान्तार के पहुंचा। उस कान्तार में रहने वाले दैत्यों ने सोचा—यदि हम इसके पानी के मटके किसी तरह फेंकवा दें तो ये लोग पानी के बिना कमजोर पड़ जायंगे। न आगे ही जा सकेंगे, न पीछे लौट सकेंगे। तब हम इनको बड़ी आसानी से खा सकेंगे।

यह सोचकर दैत्यों के सरदार ने सफेद रंग के तरुण बैलों को सुन्दर-सुन्दर गाड़ियों में जुतवाया। धनुष-तरकस, ढाल, तलवार आदि पाँच शस्त्रों को धारण किया। नीले और सफेद कमलों की मालाएं गले में पहनीं। बाल और वस्त्र इस प्रकार भिगो लिये जैसे अभी वह घनघोर वर्षा में से आ रहा हो। अपनी गाड़ियों के पहियों को कीचड़ लगवा दिया। तब अपने और आदमियों के साथ आगे रथ पर बैठकर राजा की तरह बंजारे के सामने दूर से आता हुआ दिखाई दिया। उसके आगे-पीछे चलनेवाले सेवक भी उसी प्रकार भीगे केश, भीगे वस्त्र, नीले, सफेद कमलों के गुच्छे लिये, पानी तथा कीचड की बूँदें टपकाते हुए, मिस की जड़ें खाते हुए इस प्रकार दैत्य सरदार के आगे-पीछे चले जैसे किसी महा-सरोवर के पास से आ रहे हों।

रेगिस्तान का बालू गरम हो जाता तथा हवा धू-धू करके चलती थी। भयानक हवा कभी आगे से चलती, कभी पीछे से चलती। जब आगे की हवा चलती तो बंजारा अपना रथ आगे करके चलता था। नौकर-चाकरों से धूल हटवाता चलता था। जब पीछे की हवा चलती तो अपना रथ पीछे करके धूल हटवाता चलता था। उस समय सामने की हवा थी, इसलिए बंजारा आगे-आगे जा रहा था।

जब दैत्य बंजारे के निकट पहुँचा तो उसने अपना रथ रास्ते से एक ओर कर लिया। आमना-सामना होने पर उसने पूछा—"कहां जाते हैं?"

फिर उसका निर्दिष्ट स्थान जानकर कुशल-क्षेम की बात-चीत की।

बंजारे ने भी अपने रथ को रास्ते से एक ओर कर लिया। गाड़ियों को जाने का रास्ता देकर दैत्य से बोला—"जी! हम बनारस से आते हैं। सौदा बेचने जा रहे हैं।"

"यह जो आप लोग उत्पल-कुमुद धारण किये हैं, पद्म-पुण्डरीक हाथ में लिये हैं, पानी से लथपथ बूँदें चुआते, भिस की जड़ें खाते आ रहे हैं, इस से तो मालूम पड़ता है कि आगे रास्ते में वर्षा हो रही है और उत्पल आदि से ढके सरोवर हैं!"—बंजारे ने जिज्ञासा की।

"जी हाँ, यह तो बिल्कुल सही बात है। यह देखिये न, सामने जो हरे रंग की बन-पाँति दिखाई दे रही है, उसके आगे के सारे जंगल में मूसला-धार वर्षा हो रही है। पहाड़ की दरारें भरी हुई हैं। जगह-जगह पद्म आदि से पूर्ण जलाशय हैं।"

"गाड़ियों में क्या-क्या सौदा जा रहा है?"—दैत्य ने पुनः प्रश्न किया।

"यही किसीमें काशी के वस्त्र हैं, किसीमें अमुक खाने की चीजे हैं किसीमें अमुक।"

"और इस पिछली गाडी में तो बहुत भारी सामान लदा है, भला क्या होगा उसमें?"

"जी, उसमें पानी है।"

"मगर अब आपको पानी का क्या प्रयोजन है? अभी तक ले आये सो तो ठीक किया, मगर इससे आगे तो इफरात पानी है। मटकों का पानी गिराकर तुम सुख से क्यों नहीं जाते?"

इस प्रकार की बात-चीत कर और "आप जाइये, हमें देर हो रही है" कहकर दैत्य चला गया। कुछ दूर जाकर वह आंखों से ओझल हो गया और अपने नगर पहुँच गया।

उस मूर्ख बंजारे ने अपनी मूर्खता के कारण दैत्य की बात मान ली। चुल्लू भर भी पानी बिना शेष रखे सब मटके फुड़वा दिये। तब गाड़ियाँ हँकवाईं। कुछ दूर जाने पर आदमियों को प्यास लगी। मगर उन्हें कहीं

भी पानी नहीं मिला। वे सूर्यास्त तक चलते रहे, शाम तक पानी न मिला। आखिरकार बैलों को खोल गाड़ियों का घेरा बना, बैलों को गाड़ियों के पहियों से बांध दिया। न बैलों को पानी मिला न मनुष्यों को भोजन। मनुष्य जहां तहां तड़पकर सो रहे। पानी के बिना वे अत्यन्त दुर्बल हो गये। रात होने पर दैत्य नगर से बाहर आये। उन्होंने सब बैलों तथा मनुष्यों को मारकर खाया। हड्डियाँ वहीं छोड़ चले गये।

इस प्रकार वह बंजारे का पुत्र अपनी मूर्खता के कारण अपना सब कुछ नाश कर बैठा। उनकी हाथ आदि की हड्डियाँ इधर-उधर बिखर गईं। पांच सौ गाड़ियाँ जैसी-की-तैसी खड़ी रहीं।

उस मूर्ख बंजारे के चले जाने के मास-आध मास बाद बोधिसत्व भी पांच सौ गाड़ियों के साथ नगर से निकले। क्रमशः चलते हुए उसी कान्तार के मुख पर पहुँचे। वहां उन्होंने पानी के मटकों में बहुत-सा पानी भर लिया। अपने तम्बुओं में ढिंढोरा पिटवा आदमियों को एकत्र किया। उनको हिदायत दी कि बिना मुझसे पूछे एक चुल्लू भर भी पानी काम में न लाना। जंगल में विषैले वृक्ष भी होते हैं। इसलिए किसी ऐसे पत्ते, फूल या फल को, जिसे पहले न खाया हो, बिना मुझसे पूछे कोई न खाय।

इस प्रकार आदमियों को ताकीद कर पांच सौ गाड़ियों के साथ मरुभूमि की ओर बढे। जब वे मरुभूमि के मध्य में पहुँचे तब उस दैत्य ने दूर से उनको आते देखा। वह पहले की भांति राजा का कपट-रूप बनाकर बोधिसत्व के मार्ग में प्रकट हुआ। बोधिसत्व ने उसे देखते ही पहचान लिया और मन में सोचने लगे—"इस मरुभूमि में जल नहीं है। इसका नाम ही निर्जल कान्तार है। यह पुरुष निर्भय दिखाई देता है। इसकी आंखें लाल हैं। पृथ्वी पर इसकी छाया तक नहीं दिखाई पड़ती। निःसन्देह इसने आगे गये मूर्ख बंजारे का सब पानी फिंकवा, उन्हें पीड़ित कर, मण्डली-सहित खा लिया होगा; लेकिन यह मेरी पण्डिताई तथा चतुराई को नहीं जानता।

बोधिसत्व ने दैत्य से कहा—"तुम जाओ। हम व्यापारी लोग बिना दूसरा पानी देखे पहला नहीं फेंकते। जहां दूसरा पानी दिखाई देगा, वहां

इस पानी को फेंकवा गाड़ियों को हलका कर चल देंगे।"

दैत्य थोड़ी दूर जाकर अंतर्धान हो, अपने नगर को चला गया। उसके चले जाने पर आदमियों ने बोधिसत्व से पूछा—"आर्य ! यह मनुष्य कह रहा था कि यह जो हरे रंगवाली बनपाँति दिखाई देती है, उसके आगे मूसलाधार वर्षा हो रही है। ये लोग उत्पल-कुमुद आदि की मालाएं धारण किये थे, पद्मपुंडरीक के गुच्छे हाथ में लिये थे, जिनकी जड़े वे खा रहे थे, उनके वस्त्र पानी से लथपथ थे। इसलिए आगे पानी जरूर होगा, हम पानी फेंक दें, गाड़ियों को हलका कर चलें।"

बोधिसत्व ने उनकी बात सुनकर सब गाड़ियों को रुकवा, मनुष्यों को एकत्र कराया। उनसे पूछा—"क्यों, तुममें से किसीने इस कान्तार में तालाब अथवा कोई पुष्करणी होने की बात कभी पहले सुनी थी ?"

"नहीं आर्य ! यही सुना था कि यह निर्जल कान्तार है।"

"अब कुछ मनुष्य कहते हैं कि इस हरे रंग की बनपाँति के उस पार वर्षा हो रही है। अच्छा तो वर्षा की हवा कितनी दूर तक चलती है ?"

"आर्य ! योजन भर—"

"क्या किसी एक भी आदमी के शरीर को वर्षा की हवा लग रही है ?

"आर्य ! नहीं।"

"काले बादल कितनी दूर तक दिखाई देते हैं ?"

"आर्य ! योजन भर।"

"क्या किसी एक को भी बादल दिखाई दे रहा है ?"

"आर्य ! नहीं।"

"बिजली कितनी दूर तक दिखाई देती है ?"

"आर्य ! चार-पांच योजन तक।"

"क्या किसीको बिजली का प्रकाश दिखाई पड़ता है ?"

"आर्य ! नहीं।"

"बादल की गरज कितनी दूर तक सुनाई देती है ?"

"आर्य एक-दो योजन भर।"

"क्या किसीको बादल की गरज सुनाई दी है?"

"आर्य! नहीं।"

"तो सुनो, ये मनुष्य नहीं, दैत्य थे। वे हमारा पानी फिंकवाकर हमें दुर्बल कर खाने आये होंगे। तुम देखोगे कि आगे जानेवाले बंजारे को वे उसका पानी फिकवाकर अवश्य खा गये होंगे। उसकी पांच सौ गाड़ियां जैसी-की-तैसी भरी खड़ी होंगी। वह बंजारे का पुत्र उपायकुशल नहीं था। आज तुम उसे रास्ते में देखोगे। इसलिए चुल्लू भर भी पानी बिना फेंके गाड़ियों को हांको।"

आगे पहुंचकर बोधिसत्व ने पांच सौ गाड़ियों को जैसी-की-तैसी पाया। बैलों तथा आदमियों की हड्डियां इधर-उधर बिखरी देखीं। उससे कुछ दूर बोधिसत्व ने गाड़ियां खुलवा दीं। गाड़ियों के इर्द-गिर्द घेरे में तम्बू तनवा दिये। दिन रहते ही आदमियों और बैलों को शाम का भोजन खिलाया। मनुष्यों के घेरे के बीच बैलों को बंधवाया। कुछ मनुष्योंके साथ हाथ में खजर लिये-स्वयं रात्रि के तीनों याम पहरा देते खड़े रहे। तड़के बैलों को खुलवाया। कमजोर गाड़ियों को छोड़ उनकी जगह पहले बंजारे की मजबूत गाड़ियां ली। कम कीमत का सौदा छोड़ उसकी जगह अधिक दामवाला सौदा लिया। तब बैलों को गाड़ियों में जोतकर आगे चले। सामान को दुगुने-तिगुने दाम पर बेचकर सारी मंडली के साथ खुशी-खुशी अपने नगर लौट आये।

: २ :

तण्डुल-नालिका का मूल्य

पूर्व समय में, काशी राष्ट्र में बनारस नाम का नगर था। वहां ब्रह्मदत्त राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व चीजों का मूल्य निर्धारित करने

२. तण्डुल-नालिजातक। १.१.५

वाले 'अर्घ-कारक' के पद पर नियुक्त थे। वह हाथी, घोड़े, मणि, सुवर्ण आदि का मूल्य निश्चित करके चीज के मालिक को चीज का उचित मूल्य दिलवाते थे।

लेकिन वह राजा लोभी था। उसने सोचा—यदि यह अर्घ-कारक इस प्रकार मूल्य निश्चित करता रहा तो थोड़े ही समय में मेरे घर का सब धन नष्ट हो जायगा। इसलिए किसी दूसरे आदमी को अर्घ-कारक बनाना चाहिए।

राजा उस समय खिड़की खोलकर राजांगणमें झांक रहा था। उसने एक मूर्ख, गंवार और लोभी आदमी को उधर से जाते देखा। मन में सोचने लगा—यह आदमी दाम लगाने का काम कर सकेगा। उसे बुलवाकर पूछा—"अरे! क्या तू हमारा दाम लगाने का काम कर सकेगा?"

"देव! कर सकता हूं।"

राजा ने अपने धन की रक्षा करने के लिए उस मूर्ख आदमी को अर्घ-कारक के पद पर स्थापित किया। वह मूर्ख आदमी घोड़े आदि का दाम लगाते समय दाम को घटाकर मन जैसा में आता, वैसा दाम लगाया करता था। उस पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण वह जो कुछ भी निश्चित करता, वही चीजों का मूल्य होता था।

उस समय उत्तरापथ का घोड़ों का एक व्यापारी पांच सौ घोड़े लेकर आया। राजा ने अर्घ-कारक को बुलवाकर घोड़ों का दाम लगवाया। उसने पांच सौ घोड़ों का दाम एक तण्डुल-नालिका निश्चित किया। "घोड़ों के व्यापारी को एक तण्डुल-नालिका दे दो" कहकर राजा ने घोड़ों को अश्व-शाला में भिजवा दिया।

व्यापारी सिर पीटकर रोने लगा—"पांच सौ बढ़िया घोड़े और उनकी कीमत एक नालिका तण्डुल!" वह पुराने अर्घ-कारक के पास गया। सारा समाचार सुनाकर उसने सलाह पूछी कि अब क्या करना चाहिए?

उसने उत्तर दिया—"उस आदमी को रिश्वत देकर उससे कहो कि "हमारे घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, यह तो हमें मालूम हो गया;

अब हम यह जानना चाहते हैं कि आपसे जो तण्डुल-नालिका मिली है, उसका क्या मूल्य है ? क्या आप राजा के सम्मुख खड़े होकर कह सकेंगे कि एक तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ? यदि कहे कि 'कह सकता हूं' तो उसे राजा के पास लेकर जाओ। मैं भी वहां आऊँगा।"

घोड़ों के व्यापारी ने 'अच्छा' कहकर बोधिसत्व की सलाह को स्वीकार किया। उसने अर्घ-कारक को रिश्वत देकर वह बात कही। रिश्वत पाकर उसने उत्तर दिया—" हां, तण्डुल-नालिका का मोल कर सकता हूँ।"

"तो राज-कुल चलें" कहकर व्यापारी उसे राजा के पास ले गया। बोधिसत्व तथा दूसरे अमात्य भी वहां आये।

राजा को प्रणाम कर घोड़ों के व्यापारी ने कहा—"देव ! यह तो मैंने जाना कि पांच सौ घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, अब कृपा कर अर्घ-कारक से पूछें कि एक तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है।"

राजा भीतर के रहस्य को नहीं जानता था। उसने पूछा—"अरे अर्घ-कारक ! पांच सौ घोड़ों का क्या मूल्य है ?"

"देव ! एक तण्डुल-नालिका।"

"और उस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ?"

"देव ! भीतर-बाहर सारी बाराणसी।"

उस समय सारी बाराणसी बारह योजन में फैली थी। उसके अन्दर बाहर तीन सौ योजन का देश था। उस मूर्ख ने अन्दर और बाहर, इतनी बड़ी बाराणसी का मूल्य किया एक तण्डुल-नालिका।

उसके इस निश्चय को सुनकर आमात्य ताली पीटकर हंसने लगे—"हम आज तक यही समझते थे कि पृथ्वी और राज्य अमूल्य होते हैं, लेकिन आज मालूम हुआ कि इतने बड़े राज्य-सहित बाराणसी का मूल्य एक तण्डुल-नालिका मात्र है। अहो ! मूल्य करनेवाले की प्रज्ञा ! इतने समय तक यह अर्घ-कारक कहां छिपे रहे ? हमारा राज्य ही इनके

योग्य नहीं है ।"

तब राजा ने लज्जित होकर उस मूर्ख को निकाल दिया । बोधिसत्व को ही पुनः अर्घ-कारक का पद दिया ।

: ३ :

स्वर्ण-मृग

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त नाम का राजा राज्य करता था । उस समय बोधिसत्व मृग की योनि में पैदा हुए ।

वह माता की कोख से ही स्वर्ण-मृग निकला । उसकी आंखे मणि की गोलियों के सदृश थी, सींग रजत-वर्ण के, मुह लाल रंग के दुशाले की राशि के सदृश हाथ-पैर के सिरो पर जैसे लाख लगी हो और पूंछ चामरी गाय की-सी । उसका शरीर घोडे के बच्चे जितना बडा था ।

कुछ बडे होने पर वह पांच सौ मृगों के साथ जंगल में रहने लगा । उसका नाम था—निग्रोध-मृगराज । वहांसे थोडी ही दूर पर एक दूसरा शाखा-मृग भी पाच सौ मृगों के झुण्ड के साथ रहता था । वह भी सुनहरे ही रग का था ।

उस समय बनारस का राजा मृगों का वध करने पर तुला हुआ था । बिना मांस के वह खाता ही न था । सारे निगम और जनपद के लोगों को इकट्ठा करवा, उनके अपने कामों को छुडवा, उन्हे साथ ले वह प्रतिदिन शिकार खेलने जाता था । मनुष्यो ने काम का हर्जा होता देख सोचा—"कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे कि किसी बडे उद्यान में बहुत से मृग इकट्ठे हो जायें । तब हम उन्हे राजा को सौपकर अपना काम आराम से कर सकेंगे ।" ऐसा निश्चय कर मनुष्य उद्यान में घास छाट कर, पानी रखकर, हरिणों के झुण्ड को ढूंढते हुए जंगल में दाखिल हुए ।

३. निग्रोधमृग-जातक । १२. १२

मुद्गर, तलवार, धनुष आदि नाना आयुध लेकर योजन भर स्थान का घेरा बनाया। क्रमशः उस घेरे को कम करते हुए निग्रोध-मृग तथा शाखा-मृग के निवासस्थान तक पहुंच गए। उस मृग-यूथ को देखकर वृक्ष, गुल्म आदि तथा भूमि को मुद्गरों से पीटते हुए मृगों के झुण्ड को छिपी-छिपी जगहों से निकाला। तलवार, धनुष आदि आयुधों को निकालकर, कोलाहल करते हुए, मृगों के झुण्ड को लाकर उद्यान में दाखिल किया। द्वार बन्द कर राजा के पास जाकर निवेदन किया—"देव ! लगातार शिकार के लिए जाने से हमारे काम की हानि होती है। हमने जंगल से मृगों को लाकर आपका उद्यान भर दिया है। अबसे आप उनका मांस खायं।" फिर राजा से आज्ञा मांगकर चले गए।

उद्यान में जाकर राजा ने मृगों को देखा। उनमें दो सुनहरी मृगों को देखकर उनको अभय-दान दिया। उस दिन से लगाकर कभी वह स्वयं जाकर एक मृग को मार लाता, कभी उसका रसोइया ही जाकर मृग मार लाता। धनुष को देखते ही मरने के भय से मृग डरकर इधर-उधर भागते। दो-तीन चोट खाकर जख्मी होते, रोगी होते, मर भी जाते। मृग-यूथ ने यह बात बोधिसत्व से कही। उसने शाखा-मृग को बुलवाकर कहा—"सौम्य ! मृग बहुत नष्ट हो रहे हैं। यदि मरना अवश्य ही है तो अब से मृग तीर से न बींधे जाय। गर्दन काटने की जगह, धर्म-गण्डिका स्थान पर जाने की मृगों की बारी बँध जावे। एक दिन मेरी मण्डली में से एक की बारी हो, एक दिन तेरी मण्डली में से एक की। जिसकी बारी आवे, वह मृग धर्म-गंडिका स्थान पर जाकर, सिर रखकर पड़ रहे। इस प्रकार मृग जख्मी न होंगे।"

उसने "अच्छा" कह स्वीकार किया। उस समय से मृगों की बारी बंध गई। जिसकी बारी आती, वह जाकर धर्म-गण्डिका पर शीश रखकर पड़ रहता। रसोइया उसे हलाल करके ले जाता।

एक दिन शाखा-मृग की टोली में एक गर्भिणी हिरणी की बारी आई। उसने शाखा-मृग से जाकर कहा—"स्वामी ! मैं गर्भिणी हूं। पुत्र पैदा

होने पर, हम दो जीव बारी-बारी से जायंगे। नहीं तो दो जीव एक साथ मरेंगे। आज मेरी जगह किसी और को भेज दो।"

"मैं तेरी जगह किसी और को नहीं भेज सकता। जो तुझ पर पड़ी है, उसे तू ही जान। जा।"

जब शाखा-मृग ने उस पर दया न दिखाई तो वह बोधिसत्व के पास गई। बोधिसत्व से उसने सारी बात कह सुनाई। उसने हिरणी की बात सुनकर उसे आश्वासन दिया कि वह उसकी जगह किसी और को तो नहीं कह सकता किन्तु स्वयं जा सकता है। हिरणी के चले जाने पर बोधिसत्व जाकर धर्म-गण्डिका-स्थान पर सिर रखकर लेट रहा। रसोइया "अभय-प्राप्त मृगराज" को गण्डिका-स्थान पर पड़ा देखकर सोचने लगा—"क्या कारण है?" उसने यह बात राजा से निवेदन की। राजा उसी समय रथ पर चढ़कर बहुत से जन-समूह के साथ वहां आया। उसने बोधिसत्व को पड़ा देखकर पूछा—"सौम्य मृगराज! क्या मैंने तुझे अभय-दान नहीं दिया है? यहां तू किस लिए पड़ा है?"

"महाराज! एक गर्भिणी हिरणी ने मुझसे आकर कहा कि मेरी बारी किसी दूसरे पर डाल दो, नहीं तो मेरे साथ एक बच्चे की भी हत्या हो जायगी। मैं एक का मरण-दुःख किसी दूसरे पर न डाल सकता था। मैंने अपना जीवन उसे देकर उसका मरना अपने ऊपर ले लिया। इसलिए मैं यहां आकर पड़ा हूं। महाराज! इसमें और कोई दूसरी शंका न करें।"

"स्वामी! स्वर्ण-वर्ण-मृगराज! मैंने तेरे सदृश क्षमा, मैत्री और दया से युक्त मनुष्यों में भी किसीको इससे पहले नहीं देखा। मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूं। उठ, तुझे और उस हिरणी को, दोनों को अभय-दान देता हूं।"

"महाराज! हम दोनोंको अभय मिलनेपर शेष मृग क्या करेंगे?"

"मृगराज! बाकियों को भी अभय देता हूं।"

"महाराज! इस प्रकार केवल उद्यान के ही मृगों को अभय मिलेगा।

बाकी क्या करेंगे ?"

"मृगराज ! उनको भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! मृग तो अभय प्राप्त करें। बाकी चतुष्पाद क्या करेंगे ?"

"मृगराज ! उनको भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! चतुष्पाद तो अभय प्राप्त करें, बाकी पक्षी क्या करेंगे ?"

"मृगराज ! उनको भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! पक्षी तो अभय प्राप्त करेंगे, बाकी जल में रहनेवाले जन्तु क्या करेंगे ?"

"मृगराज ! उनको भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! आपने बहुत पुण्य कमाया है, अपने ऊपर बहुत बड़ी विजय प्राप्त की है। महाराज ! धर्माचरण कीजिये। माता-पिता, पुत्र-पुत्री, सेवक-मंत्री तथा जनपद के सभी लोगों के साथ धर्म का व्यवहार करने से आप मरने के बाद स्वर्ग-लोक को प्राप्त होंगे।"

इस प्रकार महासत्व बोधिसत्व ने राजा से सब सत्वों के लिए अभय की याचना की। वहां से उठकर, कई दिन उद्यान में रहकर वह मृगों के झुण्ड के साथ अरण्य में चला गया।

उस गर्भिणी हिरणी ने पुष्प-सदृश पुत्र को जन्म दिया। वह खेलता-खेलता शाखा मृग के पास चला जाता। उसकी माता उसके पास जाता देख कर कहती—"पुत्र ! अबसे उसके पास न जाना। केवल निग्रोध-मृग के पास ही जाना। शाखा-मृग के आश्रय में जीने की अपेक्षा निग्रोध-मृग के आश्रय में मरना श्रेयस्कर है।"

: ४ :

भेड़ा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय

४. मतकभत जातक।१०.२.१८

उसके राज्य में एक त्रिवेदज्ञ, लोक-प्रसिद्ध ब्राह्मण-आचार्य रहता था।

एक बार श्राद्ध के दिन उसने एक भेड़ा मंगवाकर अपने शिष्यों से कहा—"तात ! इस भेडे को नदी पर ले जाओ। नहलाकर, गले में माला डालकर पाच अंगुलियों का चिह्न दे, सजाकर ले आओ।"

उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया। भेड़े को नदी पर ले जाकर नहलाया। अच्छी तरह सजाकर नदी के किनारे खडा किया। वह भेड़ा अपने पूर्व जन्मों को विचारकर हंसा और रोया।

उन ब्रह्मचारियों ने उससे पूछा—"मित्र भेड ! तू जोर से हँसा और रोया। किस कारण तू हँसा और किस कारण रोया ?"

"तुम लोग यह बात मुझे अपने आचार्य के पास ले जाकर पूछना।"

उन्होंने यह बात अपने आचार्य से जा कही। आचार्य ने यह बात सुन कर भेड से पूछा—"हे भेड ! तू किस लिए हँसा, किस लिए रोया ?"

भेड ने पूर्व-जन्म-स्मरण-ज्ञान से अपने पूर्व-कर्म को याद कर ब्राह्मण से कहा—"हे ब्राह्मण ! पूर्व-जन्म में मैं तेरे सदृश ही मन्त्र-पाठी ब्राह्मण था। श्राद्ध करने के लिए एक भेड मारकर मैंने मृतक भात दिया। सो, मैंने उस एक भेड के मारने के कारण, एक कम पांच सौ योनियों में अपना शीश कटवाया। यह मेरा पाँच सौवाँ अन्तिम जन्म है। 'आज मैं इस दु:ख से मुक्त हो जाऊँगा' सोचकर हर्षित हुआ और इस कारण हँसा। और जो रोया, सो तो यह सोचकर कि मैं तो एक भेड के मारने के कारण पाँच सौ जन्मों में अपना शीश कटाकर आज इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा, लेकिन यह ब्राह्मण मुझे मारकर, मेरी तरह पाँच सौ जन्मों तक शीश कटाने के दु:ख को भोगेगा; इसलिए तेरे प्रति करुणा से रोया।"

"भेड ! डर मत, मैं तुझे नहीं मारूँगा।"

"ब्राह्मण ! क्या कहते हो ? तुम चाहे मारो चाहे न मारो, मैं आज मरण-दुःख से नहीं छूट सकता।"

"भेड ! डर मत। मैं तेरी हिफाजत करता हुआ तेरे साथ ही घूमूंगा।"

"ब्राह्मण ! तेरी हिफाजत अल्प-मात्र है; मेरा किया हुआ पाप बड़ा है।"

"इस भेड़े को किसीको न मारने दूंगा" सोचकर शिष्यों को साथ ले ब्राह्मण भेड़ के ही साथ घूमने लगा। भेड़े ने छूटते ही एक पत्थर की शिला के पास उगी हुई झाड़ी की ओर गर्दन उठाकर पत्ते खाने शुरू किये। उसी क्षण उस पत्थर-शिला पर बिजली पड़ी। उसमें से पत्थर की एक फांक छीजकर भेड़े की पसारी हुई गर्दन पर आ गिरी। गर्दन कट गई।

उस समय बोधिसत्व उस जगह वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए थे। वृक्ष-देवता ने दैव-शक्ति से आकाश में पालथी मारकर बैठे हुए यह सोचा—"अच्छा हो अगर प्राणी पाप-कर्म के इस प्रकार के फल को जान कर प्राण-हानि न करें। यदि प्राणी इस बात को समझ लें कि जन्म लेना दुःख है तो एक प्राणी दूसरे प्राणी की हत्या कभी न करे। प्राणघात करने वाले को चिन्तित रहना पड़ता है।"

: ५ :

कुरङ्ग-मृग

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व कुरङ्ग-मृग की योनि में पैदा हुए थे। वह जंगल में फल खाकर रहते थे।

उस समय वह एक वृक्ष विशेष के फल खाया करते थे। अटारी पर से शिकार खेलनेवाला एक ग्रामीण शिकारी फलदार वृक्षों के नीचे मृगों के पद-चिह्न देख उन पर अटारी बांधकर बैठता था। जो मृग फल खाने आते, उन्हें अटारी पर से ही आयुध से बींधकर उनका मांस बेच कर गुजारा करता था।

एक दिन उसने उस वृक्ष के नीचे बोधिसत्व के पद-चिह्नों को देखा,

५. कुरंग मिग जातक । १. ३. २१

जिसके नीचे बोधिसत्व फल खाने आते थे। प्रातःकाल ही खाना खा, हाथ में शक्ति ले, बन में प्रवेश कर उस वृक्ष की अटारी पर जा बैठा। बोधिसत्व भ प्रातःकाल ही फलों को खाने की इच्छा से अपने निवास-स्थान से निकलकर उस वृक्ष की ओर चले। लेकिन बोधिसत्व एकदम वृक्ष के नीचे न जाकरयह सोचते हुए खडे रहे कि कभी-कभी शिकार खेलनेवाले शिकारी वृक्षों पर अटारी बांधते हैं, कहीं इसी तरह की कुछ गडबड न हो।

शिकारी ने मृग को जल्दी न आता देख अटारी पर बैठे-ही-बैठे फलों को बोधिसत्व के आगे बढ़ाकर फेंका। बोधिसत्व ने सोचा—"यह फल इतनी दूर आ-आकर मेरे सामने गिरते है। शायद ऊपर शिकारी है।" अधिक सोच विचार न कर उसने कहा—"हे वृक्ष! पहले तू फलों को सीधे ही गिराता था, लेकिन आज तूने अपना वृक्ष-स्वभाव छोड दिया। मेरे आगे विशेष रूपसे फल फेंक रहा है। सो, जब तूने वृक्ष-स्वभाव छोड दिया तो मैं भी तुझे छोड़ कर दूसरे वृक्ष के नीचे जाकर अपना आहार खोजूंगा।"

: ६ :

बैल और सूअर

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्व एक गांव में एक कुटुम्बी के घर गो-योनि में पैदा हुए—नाम था महालोहित। उनका एक छोटा भाई भी था। उसका नाम था चुल्ललोहित। इन दोनों भाइयों के कारण ही उस परिवार का काम उन्नति पर था।

उसी कुल में एक कुमारी भी थी। एक नगर-वासी ने उस कुमारी को अपने पुत्र के लिए वरा। कुमारी के माता-पिता एक सूअर को यवागु-भात खिला-पिलाकर पालने लगे, यही सोचकर कि कुमारी के विवाह के अवसर पर आनेवाले आगन्तुकों के लिए यह सालन की सामग्री होगा।

६. मुनिक जातक। ६. ३. ३०

चुल्ललोहित को सूअर की यह खातिर अच्छी न लगी। उसने अपने भाई से पूछा—"इस परिवार के काम-काज को उन्नत बनानेवाले हम हैं। हम दोनों भाइयों के कारण ही यह समृद्धि पर है। लेकिन इस घरवाले हमें तो केवल तृण-पुंवाल ही देते हैं। सूअर को यवागू-भात खिलाकर पालते हैं। इसको यह सब किस कारण से मिलता है?"

उसके भाई ने उत्तर दिया—"तात चुल्ललोहित! तू इसके भोजन की ईर्षा मत कर। तू उत्सुकता-रहित होकर भूसे को खा। यह सूअर अपना मरण-भोजन खा रहा है। इस कुमारी के विवाह के अवसर पर आनेवाले आगन्तुकों के लिए सालन की सामग्री होगा। इसीसे घरवाले इसे पोस रहे हैं। कुछ ही दिन बाद वे लोग आ जायंगे। तब तू देखेगा कि ये लोग इस सूअर को पैरों से पकड़कर घसीटते हुए उसके निवासस्थान से बाहर निकाल लेंगे। इसको मारकर आगन्तुकों के लिए सूप-व्यञ्जन बनायंगे।"

थोड़े दिनों के बाद ही वे मनुष्य आ गए। सूअर को मारकर नाना प्रकार के सूप-व्यञ्जन बनाये। बोधिसत्व ने चुल्ललोहित से पूछा—"तात तूने सूअर को देखा?"

"भाई! देख लिया उसको मिलनेवाले भोजन का फल। उससे तो लाख दर्जे अच्छा हमारा तृणवाला भूसा ही है। यह दीर्घायु का लक्षण है।"

: ७ :
बटेर

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व बटेर की योनि में पैदा हुए थे। बड़े होने पर वे अनेक सहस्र बटेरों के साथ जंगल में रहने लगे।

उस समय बटेरों का एक शिकारी, बटेरों के रहने के स्थान से कुछ

७. सम्मोदमान जातक। १. ४. ३३

दूर पर जाकर बटेरों की-सी आवाज लगाता। जब बटेर वहां इकट्ठे हो जाते तो उन पर जाल फेंक देता। जब वे जाल में फंस जाते तो जाल को किनारों से दबाता हुआ सबको एक जगह करके पेटी में भर लेता। उन्हें बेचकर उस आमदनी से अपनी जीविका चलाता।

एक दिन बोधिसत्व ने उन बटेरों को बुलाकर कहा—"यह चिड़ीमार हमारी जाति-बिरादरी का नाश कर रहा है। क्या करना चाहिए?" बटेरों ने कहा—"आप ही बताइये, क्या करना चाहिए?"

"मैं एक उपाय जानता हूं, जिससे यह हमें न पकड़ सकेगा। अब से जैसे ही यह तुम्हारे ऊपर जाल फेंके, वैसे ही जाल की एक-एक गांठ में सिर रखकर जाल-सहित उड़ जाओ। उसे यथेष्ट स्थान पर ले जाकर किसी कांटदार झाड़ी के ऊपर डाल दो। नीचे से जहां-तहां से भाग जाओ।"

सबने "अच्छा" कह स्वीकार किया। दूसरे दिन जब चिड़ीमार ने उनके ऊपर जाल फेंका तो वे जाल उड़ा कर ले गए और एक कांटेदार झाड़ी पर डाल दिया। अपने नीचे से जहां-तहां से निकल भागे।

झाड़ी में से जाल निकालते-निकालते ही चिड़ीमार विकल हो गया। वह खाली हाथ ही घर लौटा। उसके बाद से बटेर रोज वैसा ही करते। वह चिड़ीमार सूर्यास्त तक जाल छुड़ाता ही रह जाता। बिना कुछ पाये हुए खाली हाथ घर लौट आता।

उसकी भार्या ने छूछे हाथ लौटते देखकर कहा—"तुम रोज खाली हाथ घर लौटते हो। मालूम होता है, बाहर किसी और की भी परवरिश हो रही है?"

"नहीं भद्रे! मैं किसी और को नहीं पालता-पोसता हूँ। बात असल में यह है कि ये बटेर आज-कल एकमत होकर चुगते हैं। मेरे डाले जाल को काँटों की झाड़ी पर फेंककर चले जाते हैं। लेकिन तू चिन्ता मत कर। वे सदैव एक-मत नहीं रहेंगे। जिस समय वे विवाद में पड़ेंगे, उस समय इन सबको लेकर तुझे हँसाता हुआ घर लौटूंगा।"

... ...

कुछ दिनों बाद। बटेरों का मण्डल एक गोचर-भूमि पर उतरा हुआ था। चारा चुगते हुए वे आपस में खेलते-कूदते भी थे। उस समय गोचर-भूमि पर उतरता हुआ एक बटेर गलती से दूसरे के सिर पर से लाँघ गया। दूसरे ने क्रुद्ध होकर कहा—"कौन लाँघा मेरे सिर पर से?"

"भाई! मैं गलती से लाँघ गया। क्रुद्ध मत हो।"

उस बटेर के माफी माँगने पर भी वह क्रोध करता ही गया। आपस में दल-बन्दी हो गई। बार-बार बोलते हुए वे एक-दूसरे को ताना देने लगे—"मालूम होता है जैसे तू ही जाल को उठाता है!"

उन्हें इस प्रकार विवाद करते देखकर बोधिसत्व ने सोचा—"विवाद करनेवालों का कुशल नहीं है। अब ये जाल नहीं उठायंगे और महान् विनाश को प्राप्त होंगे। चिडीमार को अवसर मिल जायगा।"

जब लाख समझाने पर भी वे नहीं माने तब बोधिसत्व अपनी जमात को साथ लेकर कहीं और चला गया।

फिर आकर चिडीमार ने बटेरों की बोली बोली। जब वे एकत्र हो गए तब उन पर जाल फेंका। तब एक बटेर ने दूसरे को कहा—"जाल ही उठाते-उठाते तेरे सिर के बाल गिर गए। ले अब तो उठा।" दूसरे ने कहा—"जाल ही उठाते-उठाते तेरे दोनों पंखों की पंखड़ियां गिर पड़ीं। ले अब तो उठा।"

इस प्रकार जब वे 'तू उठा—तू उठा' कहकर विवाद कर रहे थे, तबतक चिड़ीमार ने ही जाल को उठा लिया। उन सबको एकत्रित कर, पेटी भर, भार्या को प्रसन्न करता हुआ वह घर लौटा।

: ८ :

तित्तिर

पूर्व समय में हिमालय के पास बर्गद का एक बड़ा पेड़ था। उस पेड़का

८. तित्तिर जातक। १.४.३७

आश्रय लेकर तीन मित्र रहा करते थे—तित्तिर, बानर और हाथी।

लेकिन वे तीनों न एक साथ मिलकर रहते थे, न एक दूसरे का आदर करते थे, न सत्कार करते थे, न एक साथ जीविका करते थे। तब उनके मन में यह विचार हुआ—"हमारे लिए इस प्रकार रहना उचित नहीं है। हमें आपस में मिलना-जुलना चाहिए। जो हम लोगों में बड़ा है, उसका प्रणाम आदि सत्कार करना चाहिए।"

उस दिन से तीनों आपस में मिलने लगे। फिर उनके बीच प्रश्न उठा कि कौन सबसे जेठा है? इस बात का फैसला करने के लिए तीनों मित्र बड़ के नीचे बैठे। वहां बैठने पर तित्तिर और बानर ने हाथी से पूछा—"सौम्य हाथी! तू इस वृक्ष को किस समय से जानता है?"

"मित्रो! जब मैं बच्चा था तो इस बर्गद के वृक्ष को जांघ के बीच करके लांघ जाता था। जब जांघ के बीच करके खड़ा होता था तो इसकी फुनगी मेरे पेट को छूती थी। सो मै इसे इसके गाछ होने के समय से जानता हूं।"

हाथी के जवाब दे चुकने पर तित्तिर और हाथी ने बन्दर से वही प्रश्न किया। बन्दर बोला—"मित्रो! जब मैं बच्चा था तो भूमि पर बैठकर, बिना गर्दन उठाए, इस बर्गद की फुनगी के अंकुरों को खाता था। सो मैं इसे छोटा होने के समय से जानता हूँ।"

वही प्रश्न तित्तिर के सामने भी दुहराया गया। वह बोला—"मित्रो! अमुक स्थान पर एक बर्गद का बड़ा पेड़ था। मैंने उसके फल को खाकर इस स्थान पर बीट कर दी। उसीसे यह वृक्ष पैदा हुआ। इस प्रकार इसे मैं उस समय से जानता हूँ, जब यह पैदा ही नहीं हुआ था।"

ऐसा कहने पर बन्दर और हाथी ने तित्तिर पण्डित को कहा—"मित्र! तू हममें जेठा है। इसलिए अब से हम तेरा सत्कार करेंगे, अभिवादन करेंगे तथा तेरे उपदेशानुसार चलेंगे। अब से तुम हमें उपदेश देना और अनुशासन करना।" उस समय से तित्तिर उन्हें उपदेश देने लगा तथा अनुशासन करने लगा।

इस प्रकार वे पशु-योनि के प्राणी आपस में एक दूसरे का आदर-सत्कार करते हुए जीवन के अंत में देव-लोकगामी हुए।

: ९ :

बक

पूर्व समय में कमलों के तालाब के पास जंगल में एक वृक्ष था। उस समय बोधिसत्व उस वृक्ष पर वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए।

उसके कुछ दूर पर एक दूसरा तालाब था। उसमें पानी की कमी हो गई। उस तालाब में बहुत-सी मछलियां रहती थीं। उनको देखकर एक बगुले के मुंह में पानी भर आया। उसने सोचा—"एक तरीके से इन मछलियों को ठगकर खाऊंगा।" पानी के किनारे जाकर वह विचार-मग्न-सा मुंह बनाकर बैठा। उसे देखकर मछलियों ने पूछा—"आर्य! चिन्तित क्यों बैठे हैं?"

"बैठा, तुम्हारे लिए सोच रहा हूं।"

"आर्य! हमारे लिए क्या चिन्ता कर रहे हैं?"

"यही कि इस तालाब में पानी नपा-तुला है, भोजन की कमी है, गरमी की अधिकता है; अब ये मछलियाँ क्या करेंगी?"

"तो आर्य! हम क्या करें?"

"यदि तुम मेरा कहना करो तो मैं तुम्हें, एक-एक करके, चोंच से पकड़, पंच-वर्णी कमलों से आच्छन्न एक महातालाब में ले जाकर छोड़ आऊं।"

"आर्य! प्रथम-कल्प से लेकर आज तक मछलियों की चिन्ता करने वाला कोई बगुला नहीं हुआ। क्या तुम हमें एक-एक करके खाना चाहते हो?"

"मैं तुम्हें किसी-न-किसी तरह बचाना ही चाहता हूं। यदि तुमको

१. बक जातक। १. ४. ३८

मेरी, तालाब के होने की बात पर विश्वास नहीं है तो पहले मेरे साथ एक मछली को तालाब देखने के लिए भेजो।"

मछलियों ने उसकी बात पर विश्वास कर लिया। एक कानी मछली को यह सोचकर उसके साथ भेजा कि यह जल-स्थल दोनों जगहों पर समर्थ है। उसने उसे ले जाकर तालाब में छोड़ दिया। सारा तालाब दिखा कर फिर उन मछलियों के पास वापस लाया। उसने उन मछलियों से तालाब के सौन्दर्य की प्रशंसा की। उसकी बात सुनकर सभी जाने को इच्छुक हो गईं। उन्होंने बगुले से कहा—"आर्य! हमें लेकर चलो।"

बगुला पहले उस काने महामत्स्य को ही तालाब के किनारे ले गया। तालाब दिखाकर, तालाब के किनारेवाले वरुण-वृक्ष पर जा बैठा। उसको शाखाओं के बीच में डालकर चोंच से कोंच-कोंचकर मारा। मांस खाकर मत्स्य के काँटों को वृक्ष की जड़ में डाल दिया। फिर जाकर उन मछलियों से कहा—"उस मछली को मैं छोड़ आया, अब दूसरी आये।" इस उपाय से बगुला एक-एक करके उन सब मछलियों को खा गया।

इस प्रकार जब तालाब की सब मछलियाँ खतम हो गईं तब एक केकड़े की बारी आई। बगुले ने उसे खाने की इच्छा से कहा—"भो कर्कट! मैं सब मछलियों को ले जाकर महातालाब में छोड़ आया। आ, तुझे भी ले चलूँ।"

"ले तो चलोगे, मगर मुझे पकड़ोगे कैसे?"

"चोंच में पकड़कर ले जाऊँगा।"

"तुम इस प्रकार ले जाते हुए मुझे गिरा दोगे। मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा।"

"डर मत! मैं तुझे अच्छी तरह पकड़कर ले जाऊँगा।"

केकड़े ने सोचा—"इसने मछलियों को तो तालाब में ले जाकर नहीं ही छोड़ा है। अगर मुझे ले जाकर तालाब में छोड़ देगा तो इसमें इसकी कुशल है, नहीं तो इसकी गर्दन छेदकर प्राण हर लूँगा।"

इसलिए उसने कहा—"मित्र बगुले! तू ठीक से न पकड़ सकेगा।

लेकिन हमारा जो पकड़ना है, वह पक्का होता है। यदि मुझे अपने डंक से अपनी गर्दन पकड़ने दे तो मैं चलूंगा।" बगुले ने केकड़े की ठगने की इच्छा को न जानते हुए कहा—"अच्छा।"

केकड़े ने अपने डंक से लोहार की संडासी की तरह उसकी गर्दन को अच्छी तरह पकड़कर कहा—"अब चल।" बगुला उसे तालाब दिखाकर वरुण-वृक्ष की ओर उड़ा।

केकड़े ने कहा—"मामा! तालाब तो यहां है, लेकिन तू यहां से ले कहां जा रहा है?"

बगुले ने कहा—"मालूम होता है, तू समझता है कि मैं 'प्यारा मामा' और तू मेरी बहन का प्रिय पुत्र है, इसीलिए मैं तुझे उठाये फिरता हूं। मैं तेरा दास हूं? देख, इस वरुण-वृक्ष के नीचे पड़े मछलियों के काँटों के ढेर को। जैसे मैं इन मछलियों को खा गया, वैसे ही तुझे भी खाऊंगा।"

केकड़े ने गर्जकर उत्तर दिया—"यह मछलियाँ अपनी मूर्खता से तेरा आहार हुईं। मैं तुझे अपने को खाने न दूंगा। किन्तु, तेरा ही विनाश करूंगा। तू नहीं जानता कि तू अपनी मूर्खता से ठगा गया है। मरना होगा तो दोनों मरेंगे। देख, मैं तेरे सिर को काटकर भूमि पर फेंक देता हूं।"

इतना कहकर केकड़े ने संडासी की तरह अपने डंक से उसकी गर्दन भींची। बगुले ने मुँह फैला दिया। आँखों से आंसू गिरने लगे। मरने के भय से उसने कहा—"स्वामी! मुझे जीवन दो, मैं तुम्हें नहीं खाऊँगा।"

"यदि ऐसा है तो उतर कर मुझे तालाब में छोड़ो।"

वह रुक गया। तालाब पर उतरकर उसने केकड़े को तालाब के किनारे कीचड़ पर रखा। कैंची से कुमुद की डंठल काटने की तरह केकड़ा उसकी गर्दन काटकर पानी में घुस गया।

: १० :

कबूतर

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व कबूतर की योनि में पैदा हुए।

उस समय बाराणसी-निवासी पुण्य की इच्छा से जगह-जगह पक्षियों के लिए सुख से रहने को छींके लटकाते थे। बाराणसी के सेठ के रसोइये ने भी अपने रसोईघर में छींका लटका रक्खा था। बोधिसत्व वहीं रहता था। वह प्रातःकाल ही निकलकर चुगने की जगहों पर दाना चुगकर शाम पड़े लौट आता था।

एक दिन एक कौवा उसी रास्ते बड़े जोर से उड़ा जा रहा था। उसको नीचे से खट्टे-मीठे, मत्स्य-मांस की गन्ध आई। उसके मन में लोभ उत्पन्न हो गया—मुझे यह मत्स्य-मांस कैसे मिलेगा? कुछ दूरी पर बैठकर वह विचारने लगा। शाम को उसने देखा कि एक कबूतर रसोईघर में घुस रहा है। उसने सोचा—इस कबूतर के जरिये मुझे मत्स्य-मांस मिल सकता है।

इसलिए अगले दिन प्रातःकाल ही जब कबूतर चुगने के लिए जा रहा था, कौवा उसके पीछे-पीछे हो लिया। कबूतर ने उसे अपने पीछे-पीछे आता देखकर पूछा—"सौम्य! तू किस लिए मेरे साथ-साथ फिरता है?"

"स्वामी! मुझे आपकी जीवन-चर्य्या अच्छी लगती है। अब से मैं आपकी सेवा में रहूंगा।"

"सौम्य! तुम्हारा चुगना दूसरा होता है, हमारा दूसरा। तुम्हारा मेरी सेवा में रहना कठिन है।"

"स्वामी! तुम्हारे चोगा लेने के समय मैं भी चोगा लेकर तुम्हारे साथ ही वापस लौटूंगा।"

"अच्छा, तो प्रमाद-रहित होकर रहना।"

१०, कपोत जातक। १. ४. ४२

जब बोधिसत्व चुगने जाते तो वहां तृण-बीज चुगकर खाते। उसी समय में कौवा गोबर के पिण्ड को खोदकर उसमें के कीड़े खाकर पेट भरता। वह जल्दी ही कबूतर के पास आकर कहता—"स्वामी ! तुम देर तक चुगते हो। अधिक खाना उचित नहीं।" जब शाम को कबूतर चोगा लेकर घर लौटा तो उसने भी उसके साथ प्रवेश किया। रसोइये ने देखा कि हमारा कबूतर एक दूसरे साथी को भी लाया है। उसने उस कौवे के लिए भी छींका टांग दिया। उस समय से दोनों वहीं रहने लगे।

एक दिन सेठ के लिए बहुत-सा मत्स्य-मांस लाया गया। रसोइये ने उसे रसोईघर में जहां-तहां लटका दिया। उसे देखकर कौवे के मन में लोभ पैदा हुआ। उसने निश्चय किया कि कल चुगने न जाकर मुझे यह मत्स्य-मांस ही खाना चाहिए। इसलिए वह रात को छटपटाता हुआ पड़ा रहा। अगले दिन चुगने के लिए जाते समय कबूतर ने बुलाया—"सौम्य काक ! आ।"

"स्वामी ! आप जायं, मुझे पेट में दर्द है।"

"सौम्य ! कौवों को पहले कभी पेट-दर्द नहीं हुआ है। वे तो भूख के मारे रात्रि के तीन पहरों में से एक-एक पहर में मूर्छित रहते हैं। तू इस मत्स्य-मांस को खाना चाहता होगा। आ, जो मनुष्य के खाने की चीज है, उसका खाना तेरे लिए अनुचित है। ऐसा मत कर, मेरे साथ चुगने के ही लिए चल।"

"स्वामी ! चल नहीं सकता।"

"अच्छा, तो लोभ के वशीभूत होकर मत रह, नहीं तो तेरा कर्म तुझे फल देगा।"

कबूतर चुगने के लिए चला गया। रसोइया नाना प्रकार की मत्स्य-मांस की चीजें बना रहा था। भाप निकलने के लिए बरतनों को थोड़ा खोलकर, कड़छी को बरतनों पर रखकर वह पसीना पोंछते हुए बाहर जाकर खड़ा हो गया। उसी समय कौवे ने छींके से सिर निकालकर रसोई-घर में इधर-उधर झांका। रसोइये को बाहर निकला हुआ देखकर सोचा—

"अब यह मेरे लिए मन भरकर मांस खाने का समय है। पहले बड़ा-बड़ा मांस खाऊं या चूर्ण ? मांस का चूरा खाने से पेट जल्दी नहीं भरेगा, इसलिए एक बड़े-से मांस के टुकड़े को छींके पर ले जाकर, वहां रखकर पड़ा-पड़ा खाऊंगा।"

यह सोचकर कौवा छींके से उड़कर कड़छी पर जा लगा। कड़छी ने 'किछीं-किछीं' शब्द किया। रसोइया उस शब्द को सुनकर दौड़ा। यह क्या है ? घुसते ही उसने कौवे को देखा। 'यह दुष्ट कौवा सेठ के लिए बनाया मांस खाना चाहता है। मै सेठ की नौकरी करके जीता हूँ या इस मूर्ख की ?' ऐसा कह उसने दरवाजा बन्द कर कौवे को पकड़ा और उसके सारे शरीर पर से पर नोच, कच्चा अदरक, नमक तथा जीरा कूटकर, उसमें खट्टा-मीठा मिला कर उसके सारे बदन पर चुपड़ दिया। फिर उस छींके में उसी प्रकार फेंक दिया।

वह अत्यन्त पीड़ा अनुभव करता हुआ छटपटाता पड़ा रहा। कबूतर ने शाम को आकर उस लोभी कौवे को पीड़ा-ग्रस्त देखा। उसने कहा—"लोभी कौवे ! तू मेरी बात न मानकर इस दु:ख में पड़ा।"

कबूतर ने निश्चय किया कि 'अब मैं इस जगह नहीं रहूंगा।' वहां से वह अन्यत्र चला गया।

कौवा वहीं मर गया। रसोइये ने उसे छींके-सहित उठाकर कूड़े पर फेंक दिया।

: ११ :

वैदर्भ-मन्त्र

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय एक गांव में एक ब्राह्मण वैदर्भ-मन्त्र जानता था। वह मन्त्र बहुमूल्य था।

११. वेदब्भ जातक। १.२ ४८

नक्षत्रों के ठीक होने पर उस मन्त्र का जाप कर आकाश की ओर देखने से सात रत्नों की वर्षा होती थी। बोधिसत्व उस समय उस ब्राह्मण के पास विद्या सीखते थे।

एक दिन वह ब्राह्मण बोधिसत्व को साथ लेकर गांव से निकलकर चेतिय-राष्ट्र की ओर गया। रास्ते में एक जंगल पड़ा। उस समय पांच सौ चोर जंगल में मुसाफिरों पर डाका डालते थे। उन्होंने बोधिसत्व और वैदर्भ ब्राह्मण को पकड़ लिया।

ये चोर 'पेसनक चोर' कहाते थे, क्योंकि जब ये, दो जनों को पकड़ते तो एक को घर भेजकर उसके घर से धन मंगवाते थे। 'प्रेषण' शब्द से ही वे प्रेषणक हुए। पिता-पुत्र को पकड़ते तो पिता को भेजते, मां-बेटी को पकड़ते तो मां को भेजते, गुरु-शिष्य को पकड़ते तो शिष्य को भेजते। सो उन्होंने बोधिसत्व को भेजा।

बोधिसत्व ने आचार्य को प्रणाम करके कहा—"मैं एक-दो दिन में आ जाऊंगा। आप डरियेगा नहीं। आज धन-वर्षा का नक्षत्र-योग है। आप दुख न सह सकने के कारण मन्त्र-जाप हरगिज न करें। यदि मन्त्र का जाप करके धन बरसायेंगे तो आप और पांच सौ चोर—सभी विनाश को प्राप्त होंगे। मेरा कहना मानकर पड़े रहिये।"

इस प्रकार आचार्य को समझाकर वे धन लाने चले गये। सूर्यास्त होने पर चोरों ने ब्राह्मण को रस्सी से कसकर जमीन पर डाल दिया। उसको असह्य वेदना होने लगी।

उसी समय पूर्व दिशा की ओर परिपूर्ण चन्द्र-मण्डल उगा। ब्राह्मण ने तारों की ओर देखकर धन बरसाने के नक्षत्र-योग को जान लिया। मन में विचार करने लगा—"मैं क्यों दुख सहूं? क्यों न मन्त्र-जाप करूं और रत्नों की वर्षा कर चोरों को धन देकर सुख-पूर्वक चला जाऊं?"

उसने चोरों से बातचीत की—"चोरो! तुमने मुझे किस लिए पकड़ रखा है?"

"धन के लिए।"

"यदि धन की आवश्यकता है तो शीघ्र ही मुझे बन्धन से मुक्त करो। नहलाकर, नवीन वस्त्र पहनाकर, सुगन्धियों का लेपकर, फूल-मालाएं पहनाकर बैठाओ। मैं आकाश से रत्नों की वर्षा कराऊंगा।"

चोरों ने उसकी बात सुनकर वैसा ही किया। ब्राह्मण ने नक्षत्र-योग जानकर आकाश की ओर देखा। उसी समय आकाश से रत्न गिरे। धन को इकट्ठा करके अपने उत्तरीय में गठरी बांधकर चोर जाने लगे। ब्राह्मण भी उसी रास्ते उनके पीछे-पीछे चला।

कुछ दूर जाने पर उन चोरों को दूसरे पांच सौ चोरों ने पकड़ा। चोरों ने पूछा—"हमें किस लिए पकडते हो?"

"धन के लिए।"

"यदि धन की आवश्यकता है तो इस ब्राह्मण को पकड़ो। यह आकाश की ओर देखकर धन बरसावेगा। हमें भी यह धन इसीने दिया है।"

चोरों ने उन चोरों को छोड़कर ब्राह्मण को पकड़ा—"हमें भी धन दो।" ब्राह्मण ने कहा—"धन तो मैं तुम्हें दूं, लेकिन धन बरसाने का नक्षत्र-योग अब एक वर्ष बाद होगा। यदि तुम्हें धन से मतलब है तो साल भर सबर करो।" चोरों ने सोचा—"यह दुष्ट औरों के लिए अभी धन बरसाकर हमें साल भर प्रतीक्षा कराता है।" उन्होंने क्रुद्ध होकर तलवार से ब्राह्मण के दो टुकड़े कर उसे वहीं रास्ते पर डाल दिया।

फिर जल्दी से उन चोरों का पीछा करके उनके साथ युद्ध किया। उन सबको मारकर उनका धन छीन लिया। आपस में बटवारा करने के लिए फिर परस्पर युद्ध किया। जबतक केवल दो जने रह गये तबतक एक-दूसरे को मारते रहे। उन एक सहस्र आदमियों के विनष्ट होने पर दो आदमियों ने धन को लाकर एक गांव के पास गाड़ा। उनमें से एक आदमी खड्ग लेकर धन की रक्षा करने लगा। दूसरा गांव में भात पकवाने गया। खड्गवाले आदमी ने सोचा—"क्यों न उसे मारकर सारा धन आप ही ले लूं?" वह हाथ में खड्ग लेकर तैयार बैठ गया।

दूसरे ने सोचा—"इस धन के दो हिस्से करने होंगे। क्यों न भात में

विष मिलाकर उसे मार डालूं ? इस प्रकार सारा धन मेरा ही हो जायगा।" ऐसा सोचकर, उसने पहले स्वयं भात खा लिया और खड्गवाले के भात में विष मिलाकर ले चला।

दोनों एक-दूसरे के मन के विकार को नहीं जानते थे। इसलिए दूसरा आदमी पहले के पास भात लेकर निधड़क पहुँचा। भात रखते ही पहले ने दूसरे के खड्ग से दो टुकड़े कर दिये और स्वयं भात खाकर मर गया।

: १२ :

सत्याग्रह

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से उत्पन्न हुए। नामकरण के दिन कुमार का नाम शीलव रक्खा गया। सोलह वर्ष की आयु होते ही वह सब शिल्पों में पारंगत हो गया।

पिता के मरने पर वह राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ। गरीबों को दान देता था। उपोसथ-व्रत रखता था। शान्ति, मैत्री तथा दया से युक्त होकर प्रजा को इस प्रकार सन्तुष्ट रखता था जैसे कोई गोद में बैठे पुत्र को।

एक बार उसके अन्तःपुर में एक अमात्य ने दूषित-कार्य किया। राजा ने उसे बुलाकर कहा—"हे मूर्ख ! तूने अनुचित किया है। अब तू मेरे राज्य में रहने के योग्य नहीं। अपने धन और स्त्री-पुत्र को लेकर दूसरी जगह चला जा।" राजा ने उसे देश-निकाला दे दिया।

वह अमात्य काशी-राष्ट्र सीमा पार कर कोशल-नरेश की सेवा में उपस्थित हुआ। उसके दरबार में रहता हुआ वह कुछ ही दिनों में राजा का आन्तरिक विश्वासपात्र हो गया। एक दिन उसने कोशल-नरेश से कहा—

१२. महासीलव जातक। १.६.५१

"देव ! बाराणसी का राज्य मक्खी-रहित शहद के छत्ते-जैसा है। राजा अत्यन्त कोमल स्वभाव का है। थोड़ी-सी सेना से बाराणसी राज्य जीता जा सकता है।"

राजा ने उसकी बात सुनकर सोचा—"बाराणसी राज्य महान् है। यह कहता है कि थोड़ी-सी सेना से जीता जा सकता है। कहीं यह चर-पुरुष तो नहीं है ?" तब उसने अमात्य को बुलाकर कहा—"मालूम होता है, तू चर-पुरुष है।"

"देव ! मैं चर-पुरुष नहीं हूँ। यदि मेरा विश्वास न हो तो मनुष्यों को भेजकर काशी-नरेश के राज्य की सीमा पर के ग्रामों का नाश करायें। गांववाले जब उन आदमियों को पकड़कर राजा के पास ले जायंगे तो राजा उन्हें धन देकर छोड़ देगा।"

उसकी बात मानकर राजा ने अपने आदमी भेजकर काशी-नरेश के प्रत्यन्त गांवों का नाश कराया। लोग उन चोरों को पकड़कर बाराणसी-राजा के दरबार में ले गये। राजा ने उनसे पूछा—"तात ! किस लिए गांव का नाश करते हो ?"

"देव ! जीविका का कोई उपाय न होने से।"

"तो तुम मेरे पास क्यों नहीं आये ? अब आगे से ऐसा मत करना।"

ऐसा कहकर राजा ने उन्हें धन देकर विदा किया। उन्होंने जाकर कोशल-नरेश से यह समाचार कहा। इतने पर भी कोशल-नरेश को काशी पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं हुई। उसने फिर मध्य-जनपद का नाश करवाया। फिर शहर लुटवाया। काशी-नरेश ने सबको धन देकर उसी प्रकार छोड़ दिया।

तब यह जानकर कि बाराणसी का राज्य अत्यन्त धार्मिक है, कोशल-नरेश काशी-राज्य लेने के लिए सेना लेकर निकला।

उस समय बाराणसी-नरेश शीलव महाराज के पास एक हजार ऐसे अभेद्य—शूरतर—महायोधा थे, जो सामने से मस्त हाथी के आने पर भी पीछे न लौटनेवाले थे, सिर पर बिजली गिरने पर भी न डरनेवाले थे,

शीलव महाराज की इच्छा होने पर सारे जम्बुद्वीप का राज्य जीत सकते थे। उन्होंने कोशल-नरेश की चढ़ाई की बात सुनकर राजा के पास आकर निवेदन किया—"देव! कोशल-नरेश बाराणसी लेने के इरादे से आ रहा है। हम जायं और अपने राज्य की सीमा लांघते ही उसे पीटकर पकड़ लायं।"

"तात! मेरे कारण दूसरों को कष्ट न होना चाहिए। जिन्हें राज्य लेना हो, वे ले लें। तुम मत जाओ।"

कोशल-नरेश ने सीमा लांघकर जनपद के बीच में प्रवेश किया। अमात्यों ने फिर भी उसी प्रकार निवेदन किया। राजा ने पहले ही की तरह मना किया। कोशल-नरेश ने नगर के बाहर खड़े होकर शीलव महाराज के पास सन्देश भेजा—"या तो राज्य दे अथवा युद्ध कर।"

राजा ने प्रत्युत्तर भेजा—"मेरे साथ युद्ध करने की आवश्यकता नहीं। राज्य ले लें।"

फिर भी अमात्यों ने राजा के पास आकर कहा—"देव! हम कोशल-नरेश को नगर में प्रविष्ट न होने दें। उसे नगर के बाहर ही पीटकर पकड़ लें।"

राजा ने पहले ही की तरह उन्हें मना किया। वह नगर-द्वारों को खुलवाकर हजार अमात्यों-सहित अपने सिंहासन पर बैठा।

कोशल-नरेश बड़ी सेना-सवारी के साथ बाराणसी में प्रविष्ट हुआ। वहां उसे एक भी विरोधी शत्रु नहीं मिला। उसने राजा के निवास-स्थान के द्वार पर जाकर देखा कि राजा सब दरवाजे खोलकर, सब मन्त्रियों-सहित अपने सिंहासन पर बैठा है। उसने अपने आदमियों को कहा—"जाओ, अमात्यों-सहित इस राजा के पीछे हाथ कसकर [बांधके स्मशान में ले जाओ। इसको बालू में इस प्रकार गाड़ दो कि एक भी हाथ न हिलाया जा सके। रात को शृगाल आकर इसके साथ जो करना होगा सो करेंगे।"

उस चोर-राजा के आदमी अमात्यों-सहित राजा को बांधकर ले गये।

उस समय भी शीलव महाराज ने चोर-राजा के प्रति अपने मन में द्वेष-भाव तक नहीं आने दिया। राजा के साथ बंधे जाते हुए अमात्यों में राजा की बात के विरुद्ध जानेवाला एक भी न था। इतनी विनीत थी वह राजा की परिषद् !

सो वे राज-पुरुष अमात्यों-सहित शीलव राजा को कच्चे स्मशान में ले गये। गले तक गढ़े खोदकर शीलव महाराज को बीच में और उसके दोनों ओर शेष अमात्यों को गाड़ा। घन से चारों तरफ से बालू कूट-कूटकर चले गये। शीलव महाराज ने अमात्यों को सम्बोधित कर उपदेश दिया—"तात ! चोर-राजा के प्रति क्रोध न कर मैत्री-भावना ही करो।"

आधी रात को मनुष्य का मांस खाने के लिए शृगाल आये। उन्हें देखकर राजा और अमात्य सबने एक साथ शोर मचाया। शृगाल डर के मारे भाग गये। लेकिन गीदड़ों ने रुक कर देखा कि कोई उनका पीछा नहीं कर रहा है। वे फिर लौट आये। उन्होंने फिर वैसा ही शोर मचाया। इस प्रकार तीन बार भागकर भी जब उन्होंने किसीको पीछा करते न देखा तो वीर बनकर लौटे। सोचा, ये लोग दण्डित होंगे। इस बार वे उनके बहुत शोर मचाने पर भी नहीं भागे।

सियारों का सरदार राजा के पास पहुंचा और बाकी दूसरों के पास। होशियार राजा ने उसे अपने समीप आने दिया।

उसने गर्दन को इस प्रकार ऊपर उठाया जैसे वह गीदड़ को काटने का मौका दे रहा हो। जब सियार गर्दन काटने आया तो उसको ठोड़ी की हड्डी से खींचकर यन्त्र की तरह जोर से पकड़ लिया। हाथी के बल के समान बलशाली राजा ने जब अपनी ठोडी से उसको पकड़ा तो सियार छुड़ा न सका। मरने से भयभीत होकर जोर से चिल्ला उठा। उसकी चिल्लाहट सुनकर बाकी सियार भाग खड़े हुए। सियार-सरदार के इधर-उधर झटके मारने से रेत ढीली हो गई। राजा ने रेत को ढीला हुआ जानकर शृगाल को छोड़ दिया। इधर-उधर हिलाकर दोनों हाथों को बाहर

निकाला। फिर हाथों से गढ़े की मुँडेर पर ज़ोर देकर वायु से छिन्न हुए बादल में से चन्द्रमा की तरह वह बाहर निकल आया। रेत हटाकर उसने सब अमात्यों को निकाला। सब अमात्यों-सहित वह कच्चे स्मशान में खड़ा हुआ।

उस समय कुछ मनुष्य एक मृतक मनुष्य को लाकर दो यक्षों की सीमा के बीच छोड़ गये। वे यक्ष उस मृतक मनुष्य को आपस में बाँट न सके। उन्होंने सोचा—"इसे हम नहीं बाँट सकते। यह सीलव-राजा धार्मिक है। इसके पास चलें। यह हमें ठीक-ठीक बाँट कर देगा।" वे इस मृतक मनुष्य को पांव से पकड़कर घसीटते-घसीटते राजा के पास ले जाकर बोले—"देव! इसे हमें बाँटकर दें।"

"यक्षो! मैं इसे बाँटकर तुम्हें दे तो दूं, लेकिन मैं अपरिशुद्ध हूं। पहले नहाऊंगा।"

यक्षों ने अपने बल से चोर-राजा के लिए रखा हुआ सुगन्धित जल लाकर राजा को नहाने के लिए दिया। नहा लेने पर चोर-राजा के वस्त्र लाकर दिये। वस्त्र पहन लेने पर चार प्रकार की सुगन्धि की पेटिका लाकर दी। सुगन्धि का लेप कर लेने पर सोने की पेटिका में, मणि-निर्मित पंखी में रखे हुए नाना प्रकार के फूल लाकर दिये। उन्होंने पूछा—"महाराज! अब क्या करें?" राजा ने कहा—"भूख लगी है।" उन्होंने जाकर चोर-राजा के लिए सम्पादित नाना प्रकार के अग्ररस भोजन लाकर दिये। नहाकर सुगन्धि से अनुलिप्त, अलंकृत, प्रसन्नचित्त राजा ने नाना प्रकार के भोजन खाये। यक्ष, चोर-राजा के लिए रखा हुआ सुगन्धित जल, सोने की सुराही और सोने के कसोरे ले आये। फिर राजा के पानी पीकर, कुल्ला कर हाथ-मुंह धो लेने पर उन्होंने चोर-राजा के लिए तैयार किया गया पाँच प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित पान लाकर दिया। उसको खा चुकने पर पूछा—"अब क्या करें?" "जाकर, चोर-राजा के सिरहाने रखी मांगलिक-खड्ग लाओ।" वह भी जाकर ले आये। राजा ने तलवार लेकर, उस मृत मनुष्य को सीधा खड़ा करवाकर, माथे के बीच में तलवार से प्रहार किया।

दो टुकड़े करके दोनों यक्षों को बराबर-बराबर बाँट दिया। राजा तलवार धोकर खड़ा हुआ। उन यक्षों ने मनुष्य-मांस खाकर प्रसन्न हो राजा से पूछा—"महाराज! हम आपके लिए क्या करें?"

"तुम अपने प्रताप से मुझे तो चोर-राजा के शयनागार में उतार दो और इन अमात्यों को इनके घर पहुँचा दो।" उन्होंने "अच्छा देव" कह कर वैसा ही किया।

उस समय चोर-राजा अपने शयनागार में शय्या पर पड़ा सो रहा था। राजा ने उस सोते हुए प्रमादी के पेट में तलवार की नोक चुभोई। वह डर के मारे अपनी शैया से हड़बड़ाकर उठा। दीपक के प्रकाश में सीलव-महाराज को पहचानकर होश संभालकर राजा ने पूछा—"महाराज! पहरे से युक्त, बन्द दरवाजेवाले भवन में, रात्रि के समय, पहरेदारों की आज्ञा के बिना, इस प्रकार तलवार बांधे, तुम इस शयनागार में कैसे आये?" राजा ने अपने आने का वृत्तान्त विस्तार से कहा। तब चोर-राजा ने पुलकित-चित्त होकर कहा—"महाराज! मैं मनुष्य होकर भी आपके गुणों को नहीं जानता और यह दूसरों का मांस खानेवाले, अति कठोर यक्ष आपके गुण जानते हैं। हे नरेन्द्र! मैं अब से आप-ऐसे शीलवान के प्रति द्वेष न रखूंगा।" ऐसा कहकर उसने तलवार लेकर शपथ ली। राजा से क्षमा मांगकर उसे शय्या पर सुलाया। आप छोटी चारपाई पर लेटा।

सबेरा होते ही चोर-राजा ने शहर में मुनादी फिरवाकर सब सैनिकों तथा अमात्य, ब्राह्मण, गृहपतियों को एकत्रित करवाया। उनके सम्मुख आकाश के पूर्ण चन्द्र को उठाकर दिखाने की तरह सीलव-राजा के गुणों को कहा। फिर सभा के बीच राजा से क्षमा मांगी। राज्य उसे ही सौंप कर कहा—"अब से आपके राज्य में चोरों की गड़बड़ी की देख-भाल करने का भार मुझ पर रहा। मैं पहरेदारी करूंगा। आप राज्य करें।"

चोर-राजा उस चुगलखोर अमात्य को दण्ड देकर, अपनी सेना-सवारी-सहित अपने देश चला गया।

: १३ :

फल

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था । उस समय बोधिसत्व एक श्रेष्ठ-कुल में पैदा हुए ।

क्रमशः आयु प्राप्त होनेपर पाँचसौ गाड़ियां लेकर वे वाणिज्य करने निकले। जंगल में से गुजरनेवाले एक महामार्ग पर पहुँचे । जंगल के मुख-द्वार पर खड़े होकर उन्होंने सभी मनुष्यों को एकत्रित करवाया । उन्होंने हिदायत देते हुए कहा—"इस जंगल में विष-वृक्ष होते हैं, विष-पत्र, विष-पुष्प, विष-फल तथा विष-मधु । यदि कोई ऐसा पत्र, फूल या फल हो, जिसे तुमने पहले न खाया हो, उसे बिना मुझसे पूछे मत खाना ।"

अच्छा, कहकर सभी जंगल में प्रविष्ट हुए । कुछ दूर जाने पर एक ग्राम-द्वार पर किम्बक नामक वृक्ष मिला । उस वृक्ष के तने, शाखा, पत्ते, फल, फूल सब आम की तरह थे । न केवल रंग और आकार में ही, किन्तु गन्ध और रस में भी इस वृक्ष के कच्चे-पक्के फल आम के सदृश ही थे; किंतु खाने पर हलाहल विष । उसी समय प्राणों का नाश कर देते थे ।

आगे-आगे जानेवाले कुछ लोभी मनुष्यों ने 'ये आम के वृक्ष हैं' समझकर फल खाए । कुछ लोग हाथ में लिये खड़े रहे कि सरदार को पूछकर खाएंगे । सार्थवाह के आनेपर उन्होंने पूछा—"आर्य ! इन आम के फलों को खाएं ?" बोधिसत्व ने जान लिया कि यह आम नहीं हैं । उन्होंने मना किया—"यह वृक्ष आम का नहीं, किम्फल-वृक्ष है, मत खाओ ।" जिन्होंने खा लिये थे, उनको भी उल्टी कराकर औषधि पिलाकर अच्छा किया ।

इससे पहले जो मनुष्य इस वृक्ष के नीचे निवास करते रहे, वे आम्र-फल समझकर इनके फल खाते रहे और अपने प्राणों को गंवाते रहे । अगले

१३. फल जातक । १.६.५४

दिन ग्रामवासी आकर मृत-मनुष्यों के पांव पकड़कर उन्हें छिपे स्थान में फेंक देते और गाड़ियों-सहित जो कुछ उनके साथ होता, ले जाते।

उस दिन भी अरुणोदय के समय ग्राम से निकलकर, 'बैल मेरे होंगे, गाड़ी मेरी होगी, सामान मेरा होगा' कहते हुए ग्रामवासी विष-वृक्ष के नीचे पहुंचे। मनुष्यों को निरोगी देखकर उन्होंने पूछा—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि यह वृक्ष आम्र के वृक्ष नहीं है ?" उन्होंने कहा—"हम नहीं जानते; हमारा ज्येष्ठ सार्थवाह जानता है।" मनुष्यों ने बोधिसत्व से पूछा—"हे पण्डित ! तूने कैसे जाना कि यह वृक्ष आम का वृक्ष नहीं है ?"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"न तो यह वृक्ष चढ़ने में दुष्कर है, न ही गांव से दूर है। फिर भी इसके फलों को किसीने नहीं खाया है। इन दो बातों से जानता हूं कि यह स्वादु-फलों का वृक्ष नहीं है।"

: १४ :

पंचायुध

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए।

कुमार के नाम-करण के दिन एक सौ आठ ब्राह्मणों की सब कामनाएं पूरी कर उनसे कुमार के लक्षणों के बारे में पूछा गया। चिह्न देखने में दक्ष ब्राह्मणों ने उसकी चिह्न-सम्पत्ति को देखकर कहा—"महाराज ! कुमार पुण्यवान है। तुम्हारे बाद राज्य प्राप्त करेगा। पांच शस्त्रों के चलाने में प्रसिद्ध होकर जम्बू-द्वीप में अग्रपुरुष होगा।"

ब्राह्मणों की बात सुनकर कुमार का नाम रखनेवालों ने उसका नाम पंचायुधकुमार रखा। उसके होश संभालने पर जब वह सोलह वर्ष का हो गया तो राजा ने बुलाकर कहा—"तात ! शिल्प सीख।"

१४. पंचायुध जातक। १.६.५५

"देव ! किसके पास ?"

"तात ! जा, गान्धार-देश के तक्षशिला नगर में लोक-प्रसिद्ध आचार्य के पास जाकर सीख। यह उस आचार्य को फीस देना।"—कहकर उसने हजार मुद्रा दी।

कुमार ने वहां जाकर विद्या सीखी। आचार्य के दिये हुए पांच शस्त्र लेकर, आचार्य को प्रणाम किया। तक्षशिला नगर से निकलकर, पंच हथियार-बन्द हो वाराणसी का रास्ता लिया। मार्ग में श्लेषलोम यक्ष से अधिकृत एक जंगल के द्वार पर पहुंचा। उसे जंगल के द्वार से घुसता देख कर मनुष्यों ने उसे रोका—"भो माणवक ! इस जंगल में मत प्रविष्ट हो। इस जंगल में श्लेषलोम नामक यक्ष है। वह जिस किसी मनुष्य को देखता है, उसे मार डालता है।"

बोधिसत्व अपने बल को तौलते हुए, निर्भीक केशर सिंह की तरह जंगल में घुस ही गया। उसके जंगल-प्रवेश करने पर उसे यक्ष ने देखा। वह ताड़ जितना ऊँचा था। घर जितना बड़ा सिर, बरतनों जितनी बड़ी-बड़ी आंखें और कन्दल की कली जितने बड़े दांत बना, श्वेत-मुख, चितकबरे पेट तथा नीचे हाथ-पांव वाला होकर अपने-आपको बोधिसत्व को दिखाकर उसने कहा—"कहां जाता है ? ठहर, तू मेरा आहार है।"

"यक्ष ! मैंने अपनी सामर्थ्य का अन्दाजा लगाकर यहां प्रवेश किया है। तू संभलकर मेरे पास आ। मैं तुझे विष से बुझे तीर से बींधकर यहीं गिरा दूंगा।" इस प्रकार धमकाकर उसने हलाहल-विष से बुझा तीर चढ़ाकर छोड़ा। वह जाकर यक्ष के रोमों में ही चिपक गया। इसके बाद दूसरा...... इस प्रकार पचास तीर छोड़े। सब उसके रोमों में ही चिपक रहे। यक्ष उन सभी तीरों को तोड़-मरोड़कर अपने पैरों के नीचे गिरा बोधिसत्व के समीप आया।

बोधिसत्व ने फिर भी उसे डराकर खड्ग निकालकर प्रहार किया। तैंतीस अंगुल लम्बी तलवार उसके रोमों में चिपक रही। तब बरछी से प्रहार किया। वह भी रोमों में ही चिपक रही। तब मुद्गर से प्रहार किया। वह

भी रोमों में चिपक रहा। तब कुमार बोला—"हे यक्ष ! क्या तूने मुझ पंचायुधकुमार का नाम पहले नहीं सुना ? मैंने तेरे अधिकृत जंगल में प्रवेश करते हुए, धनुष आदि का भरोसा नहीं किया। मैंने अपना ही भरोसा कर प्रवेश किया है। आज मैं तुझे मारकर चूर्ण-विचूर्ण करूंगा।" यह निश्चय प्रकट कर, ऊंचा शब्द करते हुए, दाहिने हाथ से यक्ष पर प्रहार किया। हाथ रोमों में चिपक गया। बाएं हाथ से प्रहार किया, वह भी चिपक गया। दाएँ पैर से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। बाएं पैर से प्रहार किया, वह भी चिपक गया। 'सिर से टक्कर मारकर उसे चूर्ण-विचूर्ण करूँगा' सोच कर सिर से प्रहार किया। सिर भी रोमों में चिपक गया।

पांच जगह चिपका हुआ, पांच जगह बंधा हुआ, लटकता हुआ भी वह निर्भय ही रहा। यक्ष ने सोचा—"यह पुरुष-सिंह है, साधारण आदमी नहीं। मेरे सदृश नामवाले यक्ष के पकड़ने पर भी डरता तक नहीं। मैंने इस मार्ग पर हत्या करते हुए इससे पहले एक भी ऐसा आदमी नहीं देखा। यह क्यों नही डरता ?"

सो उसने, उसे खाने की इच्छा छोड़कर पूछा—"माणवक ! तू मरने से किसलिए नहीं डरता ?"

"यक्ष ! मैं क्यों डरूंगा ? एक जन्म में एक बार मरना तो निश्चित है ही। इसलिए पुरुष-कर्म को मै क्यों छोड़ूं ?"

यक्ष उस पर प्रसन्न हुआ। उसने उसे छोड़ते समय कहा—"माणवक ! तू पुरुष-सिंह है। मै तेरा मांस नहीं खाऊंगा। आज तू राहु-मुख से मुक्त चन्द्रमा की तरह मेरे हाथ से छूटकर, जाति-सुहृद-मण्डल को प्रसन्न करता हुआ जा।"

: १५ :

असात-मन्त्र

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ने गान्धार देश में तक्षशिला नगर में ब्राह्मण-कुल में जन्म ग्रहण किया। बालिग होने पर तीनों वेदों तथा सब शिल्पों में सम्पूर्णता प्राप्त कर लोक-प्रसिद्ध आचार्य हुआ।

उसी समय बाराणसी में एक ब्राह्मण-कुल में पुत्र-उत्पत्ति के दिन निरन्तर प्रज्ज्वलित रहनेवाली आग रखी गई। जब ब्राह्मण-कुमार १६ वर्ष का हुआ तब उसके माता-पिता ने कहा—"पुत्र! हमने तेरे जन्म के दिन आग जलाकर रख दी थी। यदि ब्रह्म-लोक जाने की इच्छा है तो उस आग को लेकर जंगल में जा। अग्नि-देवता को नमस्कार करता हुआ ब्रह्म-लोक-परायण हो। यदि गृहस्थ होना चाहता है तो तक्षशिला जाकर वहां लोक-प्रसिद्ध आचार्य के पास शिल्प सीख। घर आकर कुटुम्ब का पालन-पोषण कर।"

माणवक ने आगा-पीछा सोचा—"मैं जंगल में प्रविष्ट होकर अग्नि की परिचर्या न कर सकूंगा, मैं कुटुम्ब ही पालूंगा।" माता-पिता को नमस्कार कर, आचार्य को देने के लिए एक हजार साथ ले, वह तक्षशिला गया।

कुमार तक्षशिला से शिल्प सीखकर घर वापिस लौटा। लेकिन उसके माता-पिता उसका गृहस्थ होना नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि वह वन में जाकर अग्नि-देवता की परिचर्या करे। सो उसकी माता ने उसे स्त्रियों के दोष दिखाकर जंगल भेजने की इच्छा से सोचा—"वह आचार्य पण्डित है, व्यक्त है। वह मेरे पुत्र को स्त्रियों के दोष बता सकेगा।" उसने पूछा—"तात! तूने शिल्प सीखा?"

"अम्मा! हां।"

१५. असात-मन्त्र जातक। १.७.६१

"असात-मन्त्र भी तूने सीखे ?"

"अम्मा नहीं सीखे।"

"तात ! यदि तूने असात-मन्त्र नहीं सीखे तो क्या सीखा ? जा सीख कर आ।"

वह 'अच्छा' कह फिर तक्षशिला की ओर चल दिया।

उस आचार्य की एक सौ बीस वर्ष की बूढ़ी माता थी। वह उसे अपने हाथ से नहलाता, खिलाता-पिलाता, उसकी सेवा करता था। उसने एक एकान्त जंगल में पानी मिलने की जगह पर पर्णशाला बनवाई। वहां घी, चावल आदि मंगवाकर अपनी माता की सेवा करता हुआ रहने लगा।

जब वह माणवक तक्षशिला में पहुंचा तो वहां आचार्य को न देखा। उसने पूछा— 'आचार्य कहां हैं ?" उस समाचार को सुनकर वह जंगल में गया और आचार्य को प्रणाम कर खड़ा हुआ। आचार्य ने पूछा—"तात ! किस लिए लौट आया ?"

"आपने जो मुझे असात-मन्त्र नहीं सिखाया।"

"तुझे किसने कहा कि असात-मन्त्र सीखना चाहिए ?"

"आचार्य ! मेरी माता ने।"

बोधिसत्व ने सोचा—"असात-मन्त्र तो कोई मन्त्र नहीं है। शायद इसकी माता इसे स्त्रियों के दोषों को विदित करा देना चाहती होगी।"

"अच्छा तात ! तुझे असात-मन्त्र सिखाऊंगा। आज से तू मेरे स्थान पर मेरी माता को नहलाना, खिलाना-पिलाना, उसकी सेवा करना। हाथ पैर, सिर और पीठ दबाते हुए कहना—"आर्ये ! बूढ़ी होने पर भी तेरा शरीर ऐसा है, तो जवानी में कैसा रहा होगा ?" शरीर दबाने के समय हाथ-पैर आदि की प्रशंसा करना। और जो कुछ तुझे मेरी माता कहे, बिना लज्जा के, बिना छिपाए, वह मुझ से कहना। ऐसा करने से असात-मन्त्रों की प्राप्ति होगी, न करने से नहीं होगी।"

"अच्छा आचार्य !" कहकर उस दिन से वह जैसा-जैसा आचार्य ने कहा था, वैसा-वैसा करने लगा।

उस माणवक के बार-बार प्रशंसा करने पर उस अन्धी, जरा-जीर्ण के मन में 'काम' उत्पन्न हो गया—"यह माणवक मेरे साथ रमण करना चाहता होगा!" उसने एक दिन माणवक से पूछा—"मेरे साथ रमण करना चाहता है?"

"आर्ये! मैं रमण करने की इच्छा तो करूं लेकिन आचार्यका भय है।"

"यदि मुझे चाहता है तो मेरे पुत्र को मार डाल।"

"मैंने आचार्य के पास इतना शिल्प सीखा, कैसे मैं केवल कामासक्ति के कारण उनको मारूंगा?"

"अच्छा तो यदि तू मेरा परित्याग न करे तो मैं ही उसे मार दूंगी।"

माणवक ने बोधिसत्व को यह सब बात कह दी। "माणवक! तूने अच्छा किया जो मुझे बता दिया। आ, उसकी परीक्षा करेंगे।" यह कह उसने गूलर का वृक्ष छीलकर, अपने जितना बडा काठ का एक पुतला बनाया। उसे सिर-सहित ढककर, अपने सोने की जगह पर लम्बा लिटा दिया। रस्सी बांधकर अपने शिष्य को कहा—"तात! कुल्हाड़ा ले जाकर मेरी माता को इशारा कर।"

माणवक ने जाकर कहा—"आर्ये! आचार्य पर्णशाला में अपनी शय्या पर सोए हैं। मैंने रस्सी की निशानी बांध दी है। यदि सामर्थ्य हो तो इस कुल्हाडे को ले जाकर मार।"

"तू मुझे छोड़ेगा नहीं न?"

"किसलिए छोड़ूंगा?"

वह कुल्हाड़े को लेकर कांपती हुई उठी। रस्सी के साथ-साथ जाकर हाथ से छूकर जान लिया, यह मेरा पुत्र है। काठ के पुतले के मुँह पर से कपड़ा हटाकर कुल्हाडे को लेकर एक जोरदार प्रहार किया। 'टन'का शब्द हुआ। वह जान गई कि यह लकड़ी है?

बोधिसत्व ने पूछा—"क्या करती है मां?" "मैं ठगी गई" जानकर वह वहीं गिरकर मर गई। बोधिसत्व ने उसका शरीर-कृत्य कर, आग बुझा, वन-पुष्पों से पूजा की। फिर वह माणवक-सहित पर्णशाला के द्वार

पर बैठा। "तात ! तूने असात-मन्त्र सीख लिया ?"

"हां आचार्य ! मैंने सीख लिया। स्त्रियां असाध्वी होती हैं, पापिनी होती हैं।"

वह आचार्य को प्रणाम कर माता-पिता के पास आया। उसकी माता ने उससे पूछा—"तात ! असात-मन्त्र सीखा ?"

"अम्मा ! हां।"

"तो अब क्या करेगा ? प्रव्रजित होगा या अग्नि-परिचर्या करेगा या गृहस्थ रहेगा ?"

"माता ! मैंने प्रत्यक्षतः स्त्रियों के दोष देख लिये। मुझे अब गृहस्थ बनने की इच्छा नहीं। मैं प्रव्रजित होऊंगा।"

: १६ :

मृदुलक्षणा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र के एक महाधनी ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुए।

आयु प्राप्त होने पर कुमार सब शिल्पों में पारंगत हो गया। लेकिन उसका मन गृहस्थी में न लगा। काम-सुख को छोड़ वह ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो योगाभ्यास करने लगा।

योगाभ्यास के द्वारा अभिज्ञा तथा समापत्ति-फल को प्राप्त किया। इस प्रकार ध्यान-सुख में रमण करता हुआ वह हिमवन्त प्रदेश में रहने लगा।

एक समय निमक-खटाई खाने के लिए हिमवन्त से उतरकर वह बाराणसी आया। बाराणसी पहुंचकर राजोद्यान में ठहरा। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त करके लाल रंग के वल्कल के वस्त्र पहने। एक कंधे पर अजिन-चर्म रखा। जटामण्डल बांधा। झोली-बहंगी लेकर बाराणसी

---

१६. मृदुलक्षणा जातक। १.७ ६६

में भिक्षा मांगने निकला। राजा के गृह-द्वार पर पहुँचा तो राजा उसकी चर्या-विहार देखकर प्रसन्न हुआ। उसे बुलाकर महामूल्यवान आसन पर बिठाया। प्रणीत खाद्य-भोज्य खिलवाकर सन्तुष्ट किया। तपस्वी से राजा ने अपने उद्यान में रहने की प्रार्थना की।

तपस्वी ने प्रार्थना स्वीकार की। राजा के घर का भोजन खाकर, राज-कुल को उपदेश देते हुए वह वहां रहने लगा। एक दिन राजा, उपद्रवी सीमांत-देश को शान्त करने के लिए जा रहा था। उसने अपनी मृदुलक्षणा नामक अग्रमहिषी को सहेजते हुए कहा—"आर्य की सेवा प्रमाद-रहित होकर करना।"

एक दिन मृदुलक्षणा बोधिसत्व के लिए भोजन तैयार कर प्रतीक्षा करने लगी। उसके आने में देरी जानकर उसने सुगन्धित जल से स्नान किया। सब अलंकारों से अलंकृत होकर महातल पर छोटी-सी शय्या बिछवाकर वह बोधिसत्व के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई लेट रही।

बोधिसत्व 'ध्यान' से उठकर भोजन का समय जानकर राजा के घर पहुंचे। मृदुलक्षणा वल्कल-चीर का शब्द सुनकर हड़बड़ाकर उठी। शीघ्रता से उठने के कारण उसका बारीक वस्त्र खिसक गया। उसे देख बोधिसत्व के मन में विकार पैदा हो गया। उसका दिल ऐसा हो गया जैसे दूधवाले वृक्ष को बसूले से छील दिया गया हो। उसी समय उसका ध्यान लोप हो गया। उसकी दशा बिना पर के कौवे की-सी हो गई। उसने खड़े-ही-खड़े भिक्षा-पात्र ग्रहण किया। बिना खाये ही पर्णशाला में लौट आया। आहार को शयनासन के नीचे रखकर राग-अग्नि से जलता हुआ लेट रहा। इस प्रकार उसने सात दिन बिछौने पर पड़े-ही-पड़े बिता दिये।

सातवें दिन राजा सीमान्त को शान्त कर लौट आया। नगर की प्रदक्षिणा कर बिना घर गये ही पहले तपस्वी को देखने की गरज से पर्णशाला में प्रवेश किया। उसे लेटा देखकर राजा ने सोचा कोई रोग हो गया होगा। इसलिए उसने पर्णशाला की सफाई कराकर उसके पैर दबाते हुए पूछा—"आर्य! क्या तकलीफ है?"

"महाराज ! मुझे और कोई रोग नहीं है। केवल चित्त के विकार के कारण आसक्त हो गया हूं।"

"आर्य ! चित्त किस पर आसक्त हो गया है ?"

"महाराज ! मृदुलक्षणा पर।"

"तो आर्य ! मैं आपको मृदुलक्षणा देता हूं।"

राजा तपस्वी को घर ले गया। देवी को सब अलंकारों से अलंकृत कर तपस्वी को दान दिया। देते समय राजा ने मृदुलक्षणा से कहा—"तुझे अपने बल से साधु की रक्षा करनी चाहिए।"

"अच्छा देव !" देवी ने उत्तर दिया।

देवी को लेकर तपस्वी राज-भवन से उतरा। उसने महाद्वार से निकलते ही कहा—"आर्य ! हमें एक घर लेना चाहिए। जाइये राजा से घर मांगिये।" तपस्वी ने जाकर घर मांगा। राजा ने एक ऐसा खाली पड़ा घर दिलवाया जिसमें लोग आकर मल-मूत्र तक त्याग जाया करते थे। वह देवी को लेकर वहां गया। देवी ने उसमें प्रविष्ट होने की अनिच्छा प्रकट की।

"क्यों नही प्रवेश करती ?"

"स्थान गन्दा जो है ?"

"अब क्या करूं ?"

"इसे साफ करो। राजा के पास जाकर कुदाली लाओ, टोकरी लाओ।"

देवी ने उससे अशुचि और कूड़ा फेंकवाकर, गोबर मंगवाकर लिपवाया। तदनन्तर कहा—"जाकर चारपाई लाओ, दीपक लाओ, बिछौना लाओ, चाटी लाओ, घड़ा लाओ। घड़ा भरकर पानी लाओ।" तपस्वी ने सारा सामान लाकर रक्खा, बिछौना बिछाया। बिछौने पर इकट्ठे बैठते समय देवी ने तपस्वी की दाढ़ी पकड़कर कहा—"बाबा जी ! तुम्हे कुछ होश भी है ?"

तब उसे अक्ल आई। इतनी देर तक चित्त-विकार के कारण वह अज्ञानी ही रहा। अब उसने सोचा—"यह तृष्णा अधिक होने पर, मुझे चारों-नरकों में से सिर न उठाने देगी। इस मृदुलक्षणा को आज ही राजा

को सौंपकर हिमवन्त में प्रवेश करना चाहिए।

उसने देवी को ले जाकर राजा से कहा—"महाराज! मुझे तेरी देवी से मतलब नहीं। मैं हिमवन्त जा रहा हूं।"

: १७ :

कंजूस

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बाराणसी में इल्लीस नाम का एक सेठ था। उसके पास अस्सी करोड़ धन था। लेकिन वह पुरुष के दुर्गुणों से युक्त, लगड़ा, लूला, बैंहगा, अश्रद्धावान्, अप्रसन्न-चित्त तथा कंजूस था। न किसीको देता, न अपने-आप ही खाता था। उसका घर ऐसा ही था जैसे राक्षस-गृहीत पुष्करणी। हां, उसके माता-पिता सात पीढ़ी तक दानशील रहे। इसने कुल-मर्यादा का नाश करके दानशाला जला दी। याचकों को पीटकर बाहर निकाल दिया। केवल धन ही संग्रह करता था।

एक दिन वह राजा की सेवा में गया। लौटते समय उसने रास्ते में एक थके हुए नागरिक को देखा। वह शराब की सुराही ले, पीढ़े पर बैठ कर, सड़ी हुई मछली खा, खट्टी शराब के कसोरे भर-भरकर पी रहा था। देखकर उसके मन में शराब पीने की इच्छा हुई। लेकिन वह सोचने लगा—"यदि मैं सुरा पीऊंगा तो मेरे पीने पर और बहुत लोग पीने की इच्छा करेंगे। मेरा धन खर्च होगा।"

उसने तृष्णा को मन में दबा लिया। लेकिन इस तीव्र इच्छा को न सह सकने के कारण उसका शरीर धुनी हुई रुई की तरह सफेद हो गया। गात धमनी को जा लगा।

१७. इल्लीस जातक। १. ८. ७८

एक दिन वह चारपाई पर सिमटकर पड़ रहा। उसकी भार्या ने आ कर पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी ! क्या रोग है ?"

"मुझे कोई रोग नहीं।"

"क्या राजा क्रुद्ध हो गया है ?"

"राजा मुझसे क्रुद्ध नहीं हुआ है।"

"तो क्या तुम्हारे बेटा-बेटा, नौकर-चाकरों से कुछ अपराध हो गया है ?"

"ऐसा भी कुछ नहीं।"

"तो क्या किसी चीज में तृष्णा हो गई है ?"

श्रेष्ठी चुप रहा। तब भार्या ने पूछा—"स्वामी ! तुम्हारी तृष्णा किस चीज में है ?"

"उसने शब्दों को निगलते हुए की तरह कहा—"मेरी एक तृष्णा है।"

"स्वामी ! क्या तृष्णा है ?"

"शराब पीने की इच्छा है।"

"तो कहते क्यों नहीं ? क्या तुम दरिद्र हो ? अब इतनी शराब बनवा दूंगी कि सारे निगम-वासियों के लिए पर्याप्त होगी।"

"तुझे उनसे क्या ? वह अपने कमाकर पीएंगे।"

"अच्छा तो उतनी ही तैयार कराऊंगी जो एक गली के लोगों के लिए पर्याप्त होगी।"

"जानता हू, तू बड़ी धनवान है।"

"अच्छा तो उतनी ही बनवाऊंगी जो इस घरवालों के लिए पर्याप्त होगी।"

"जानता हूँ, तू बड़ी उदार है।"

"अच्छा तो उतनी ही तैयार कराऊंगी जो तुम्हारे स्त्री-बच्चों के लिए पर्याप्त होगी।"

"तुझे इनसे क्या ?"

"अच्छा तो उतनी ही तैयार कराऊंगी जो तुम्हारे और मेरे लिए पर्याप्त हो।"

"क्यों, क्या अपने घर से बहुत धन लेकर आई है ?"

"अच्छा तो उतनी ही बनवाऊंगी जो तुम्हारे लिए पर्याप्त हो।"

सेठ ने सोचा—"घर में शराब बनवाने पर बहुत लोग आशा लगाएंगे। दुकान से मंगवाकर भी यहां बैठकर नहीं पी सकता।" उसने एक मासक* देकर दुकान से शराब की सुराही मंगवाई। नौकर से उठवाकर नगर से बाहर नदी के किनारे गया। एक घनी जगह में घुसकर सुराही को रखवाया। नौकर से कहा—"तू जा।" नौकर को दूर बिठाकर कसोरे भर-भर कर पीने लगा।

दानादि करने से उसका पिता देवलोक में 'शक्र' होकर उत्पन्न हुआ था। उसने ध्यान लगाकर देखा कि उसका चलाया हुआ दान अभी भी दिया जा रहा है या नहीं ? उसने उसका चालू न रहना, पुत्र का कुल-मर्यादा का नाश कर दान-शाला को जला देना, याचकों को पीटकर निकाल देना तथा कंजूस बनकर औरों को देने के भय से एकान्त में छिपकर शराब पीना देखा। उसने सोचा—"मैं जाकर उसको क्षुब्ध करके उसका दमन करूंगा। उसे कर्म-फल का ज्ञान कराकर, उसके हाथ से दान दिलवाकर उसे देव-लोक में उत्पन्न होने योग्य बनाऊंगा।"

शक्र मनुष्य-रूप धारण कर ठीक इल्लीस जैसी लूली-लंगड़ी शकल बनाकर राजगृह नगर में प्रविष्ट हुआ। राजा के पास जाकर राजा को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हुआ। राजा ने पूछा—"सेठजी ! कहो, असमय कैसे आए ?"

"देव ! मेरे घर में अस्सी करोड़ धन है। मैं चाहता हूं कि आप उसे मंगवाकर अपने खजाने में भरवा लें।"

"सेठजी ! हमारे घर में तुम्हारे धन से कहीं अधिक धन है।"

"देव ! यदि आपको आवश्यकता नहीं है तो मैं उसे लेकर यथेच्छ दान देता हूं।"

* कार्षापण का बीसवां हिस्सा।

"सेठजी ! दें।"

"अच्छा देव !"—कहकर राजा को प्रणाम कर शक्र इल्लीस सेठ के घर गया। सब नौकर-चाकर घेरकर खड़े हो गये। कोई भी यह न जान सका कि यह इल्लीस नहीं है। उसने घरमें प्रवेश कर देहली पर खड़े हो द्वारपाल को आज्ञा दी—"यदि कोई ठीक मेरे जैसी शकलवाला आए और 'यह मेरा घर है' कहकर प्रवेश करे तो उसकी पीठ पर प्रहार करके उसे बाहर निकाल देना।" प्रासाद के ऊपर चढ़कर, अत्यन्त मूल्यवान आसन पर बैठकर श्रेष्ठी-भार्या से मुसकराकर कहा—"भद्रे ! दान दें।" यह सुनकर सेठानी, लड़के-लड़कियां तथा नौकर-चाकर कहने लगे—"इतने समय तक कभी दान देने का विचार तक नहीं आया। आज शराब पीने के कारण मृदु-चित्त हो दान देने की इच्छा उत्पन्न हो गई होगी !"

सो सेठानी ने कहा—"स्वामी ! यथारुचि दे।" सारे नगर में मुनादी करवा दी गई कि जिसको चांदी, सोना, मणि-मोती की आवश्यकता हो वह इल्लीस सेठ के घर जावे। लोग झोली, थैला लेकर द्वार पर इकट्ठे हो, गए। शक्र ने सात रत्नों से भरे कमरों को खोलकर कहा—"यह सब तुम्हें देता हूं। जितनी-जितनी जरूरत हो, ले जाओ।" लोग धन को भर-भर कर ले जाने लगे।

एक देहाती इल्लीस सेठ के ही रथ में, इल्लीस सेठ के ही बैल जोत कर, सात रत्नों से भरकर नगर से बाहर जा रहा था। उस घने स्थान से कुछ दूर पर रथ को हांकता हुआ वह सेठ की प्रशंसा करता जाता था—"स्वामी इल्लीस ! तेरी सौ वर्ष की आयु हो। तेरे कारण अब मैं जन्म भर बिना काम किये भी जी सकता हूं। तेरा ही रथ, तेरे ही बैल, तेरे ही घर के सात प्रकार के रत्न ! न मां ने दिये, न बाप ने दिये, स्वामी ! तेरे ही कारण मिले।"

इल्लीस ने यह शब्द सुनकर भयभीत हो सोचा—"यह मेरा नाम लेकर क्या कहता है ! क्या राजा ने मेरा धन लोगों में बांट दिया है ?" वह तुरन्त उठा और जाकर बैलों की नकेल पकड़ ली—"अरे चेटक ! यह मेरा

ही रथ और मेरे ही बैल कहां लिये जा रहा है ?" गृहपति ने रथ से उतरकर कहा—"अरे दुष्ट चेटक ! इल्लीस सेठ सारे महानगर को दान दे रहा है, तेरा क्या लगता है ?" उसने सेठ को झटककर बिजली की तरह गिरा दिया। कन्धे पर प्रहार करके रथ ले चला गया।

सेठ ने कांपते हुए उठकर धूल झाड़ी। तेजी से दौड़कर दुबारा फिर रथ को घेरा। गृहपति ने उतरकर उसके बाल पकड़कर बांस की चपटी से मारा। गला पकड़कर जिधर से वह आया था, उधर मुंह करके धक्का दिया और रथ लेकर चला गया।

इतने में उसका शराब का नशा उतर गया।

उसने कांपते-कांपते घर जाकर मनुष्यों को धन ले जाते देखा। "भो ! यह क्या ? क्या राजा मेरा धन लुटवा रहा है ?"—कहकर जिस किसीका भी पकड़ना शुरू किया। जिसे पकड़ता, वही उसे पीटकर पैरों में गिरा देता। वेदना से पीड़ित हो उसने घर में घुसना चाहा। द्वारपालों ने पीट कर गर्दन पकड़कर निकाल दिया।

उसने सोचा—"अब राजा के सिवा मुझे किसीकी शरण नहीं।" इसलिए राजा के पास जाकर कहा — "देव ! आप मेरा धन लुटवा रहे हैं ?"

"सेठजी ! क्या तुमने ही अभी आकर नहीं कहा था कि देव ! यदि आप नहीं लेते हैं तो मै अपने धन को दान दूंगा ?"

"देव ! मैं आपके पास नहीं आया। क्या आप मेरे कंजूस होने की बात नहीं जानते ? मैं किसीको तिनके के कोने से तेल की एक बूंद तक नहीं देता। देव ! जो यह दान दे रहा है, उसे बुलाकर परीक्षा करें।"

राजा ने शक्र को बुलवा भेजा। न तो राजा को ही उन दोनों जनों में कुछ भेद दिखाई दिया, न मन्त्रियों को ही। कंजूस सेठ ने पूछा—"देव ! सेठ यह है कि मैं हूँ ?"

"हम नहीं पहचानते। तुम्हें कोई पहचाननेवाला है ?"

"देव ! मेरी भार्य्या !"

भार्या को बुलाकर पूछा गया—"तेरा स्वामी कौन है ?" वह शक्र ही के पास जाकर खड़ी हो गई । लड़के-लड़कियों, नौकर-चाकरों को बुलाकर पूछा। सब शक्र ही के पास जाकर खड़े हो गए ।

तब सेठ ने सोचा—"मेरे सिर में बालों से छिपी एक फुन्सी है । उसे केवल नाई ही जानता है, सो उसे बुलवाऊं ।" उसने कहा—"देव ! मुझे नाई पहचानता है । उसे बुलवावें ।" राजा ने उसे बुलवाकर पूछा—"इल्लीस सेठ को पहचानते हो ?"

"देव ! सिर को देखकर पहचान सकूंगा ।"

शक्र ने उसी क्षण सिर में फुन्सी पैदा कर ली । नाई ने दोनों के सिर में फुन्सी देख कर कहा—"महाराज ! दोनों के सिर में फुन्सी है । मैं इन दोनों में से किसीको नहीं कह सकता कि यह इल्लीस सेठ है ।"

नाई की बात सुनकर सेठ कांपने लगा । धन-शोक से अपने को संभाल न सकने के कारण वहीं गिर पड़ा । उस समय शक्र शक्र-लीला से आकाश में जाकर खड़ा हुआ । उसने कहा—"महाराज ! मैं इल्लीस नहीं, शक्र हूं ।"

इल्लीस का मुंह पोंछकर उस पर पानी छिड़का गया । वह उठकर देवेन्द्र शक्र को प्रणाम कर खड़ा हुआ । तब शक्र ने कहा-"इल्लीस ! यह धन मेरा है, न कि तेरा । मै तेरा पिता हूँ, तू मेरा पुत्र । मैंने दानादि पुण्य-कर्म करके शक्र की पदवी ग्रहण की । लेकिन तूने मेरे वंश की मर्यादा को तोड़ दिया। कंजूस होकर दानशाला को जला दिया, याचकों को बाहर निकाल दिया । खाली धन-संग्रह करता है । न तू आप खाता है, न दूसरे को देता है । धन ऐसे पड़ा है, जैसे राक्षस के अधिकार में हो । यदि जैसे पहले था, वैसे ही दानशाला बनवाकर दान देगा तो तेरी कुशल है, नहीं तो तेरे सब धन को अन्तर्धान कर इन्द्र-वज्र से तेरा सिर फोड़कर जान निकाल दूंगा ।"

इल्लीस सेठ ने मरने के भय से संत्रसित होकर प्रतिज्ञा की कि वह दान देगा । उसकी प्रतिज्ञा ग्रहण कर शक्र अपने स्थान को चला गया ।

: १८ :

नाम-सिद्धि

पूर्व समय में तक्षशिला में बोधिसत्व एक अत्यन्त विख्यात आचार्य हुए। वे पांच सौ शिष्यों को मन्त्र पढ़ाते थे। उनके एक शिष्य का नाम था 'पापक'। लोग उसे 'पापक' कहकर पुकारते थे—"पापक ! आ। पापक ! जा" आदि।

उसने सोचा—"दुनिया में 'पापक' नाम बहुत खराब है, मनहूस है। मैं दूसरा अच्छा नाम रखवाऊँ।" यह सोचकर वह आचार्य के पास गया। बोला—"आचार्य मेरा नाम अमांगलिक है। मुझे दूसरा नाम दें।"

आचार्य ने उत्तर दिया—"तात ! नाम बुलाने भर को है। नाम से कोई अर्थ-सिद्धि नहीं होती। जो तेरा नाम है, उसीसे सन्तुष्ट रह।"

आचार्य के बार-बार समझाने पर भी उसने नाम बदलने का ही आग्रह किया। तब आचार्य ने कहा—"तात ! जा, देश में घूमकर जो तुझे अच्छा लगे, ऐसा एक मांगलिक नाम ढूंढ़कर ला। आने पर तेरा नाम बदल दूंगा।"

'अच्छा' कह वह रास्ते के लिए खुराकी लेकर आश्रम से निकल पड़ा। एक गांव से दूसरे गांव घूमता हुआ वह एक नगर में पहुँचा। वहां 'जीवक' नाम का एक आदमी मर गया था। उसके रिश्तेदार उसे जलाने के लिए ले जा रहे थे। 'पापक' ने देखकर पूछा—"इसका क्या नाम था ?"

"इसका नाम 'जीवक था"—किसी आदमी ने उत्तर दिया।

"क्या जीवक भी मरता है ?"

"जीवक भी मरता है, अजीवक भी। नाम पुकारने भर को होता है। मालूम होता है, तू मूर्ख है।"

यह बात सुनकर 'पापक' नाम के प्रति कुछ उदासीन हो गया। वह और आगे बढ़ा। वहां एक दासी को उसके मालिक दरवाजे पर बिठा

१८. नाम-सिद्धि जातक। १. १०. ६७

कर रस्सी से पीट रहे थे। वह काम करके मजदूरी* नहीं ला सक रही थी। उस दासी का नाम था 'धनपाली'। पाथक ने गली में से गुजरते हुए उसे पिटते देखकर पूछा—"इसे क्यों पीट रहे हैं?"

"यह मजदूरी नहीं ला दे सक रही है।"

"इसका नाम क्या है?"

"इसका नाम है धनपाली।"

"नाम से धनपाली है, तो भी मजदूरी मात्र भी नहीं ला दे सक रही है।"

"धनपाली भी दरिद्र होती है, अधनपाली भी। नाम बुलाने भर को होता है। मालूम होता है, तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति कुछ और उदासीन होकर नगर से निकला। रास्ते में उसने एक आदमी को देखा, जो रास्ता भटक गया था। वह रो रहा था। उसने उससे पूछा—"तुम क्यों रो रहे हो?"

"मैं रास्ता भूल गया हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"पन्थक।"

"पन्थक भी रास्ता भूलते हैं?"

"पन्थक भी भूलते हैं, अपन्थक भी भूलते हैं। नाम पुकारने भर के लिए है। मालूम होता है, तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति बिल्कुल उदासीन होकर बोधिसत्व के पास गया। बोधिसत्व ने पूछा—"क्यों तात! अपनी रुचि का नाम ढूंढ़ लाये?"

"आचार्य! जीवक भी मरते हैं, अजीवक भी। धनपाली भी दरिद्र होती है, अधनपाली भी। पन्थक भी रास्ता भूलते हैं, अपन्थक भी। नाम बुलाने भर को होता है। नाम से सिद्धि नहीं होती; कर्म से ही सिद्धि होती है। मुझे दूसरे नाम की जरूरत नहीं है। मेरा जो नाम है, वही रहे।"

* पूर्व समय में लोग दासियों को रखकर उनसे मजदूरी करवाते थे।

: १९ :

हल की फाल

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक महा ऐश्वर्यशाली ब्राह्मण के कुल में पैदा हुए। सयाने होने पर तक्षशिला जाकर सब विद्याएं सीखीं। लौटकर बाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य हुए।

वह आचार्य बाराणसी में पांच सौ शिष्यों को शिल्प सिखाता था। इन शिष्यों में एक जड़-मूर्ख शिष्य था। वह आचार्य-दक्षिणा देने में असमर्थ था, इसलिए आचार्य की सेवा करता हुआ विद्या सीखता था। अपनी जड़ता के कारण वह कुछ न सीख सकता था, लेकिन था आचार्य की बहुत सेवा करनेवाला। 'दास' की तरह सब काम करता था।

एक दिन बोधिसत्व शाम का भोजन करके लेटे थे। वह विद्यार्थी हाथ, पैर, पीठ दबाकर जा रहा था। बोधिसत्व ने कहा—"तात! चारपाई के पावों को सहारा देकर जा।" विद्यार्थी को एक पाए का सहारा मिला; दूसरे का न मिला। सारी रात बिता दी। बोधिसत्व ने प्रातःकाल उठकर उसे देखा। पूछा—"तात! क्यों बैठा है?"

"आचार्य! चारपाई के पाए का सहारा न मिला, इसलिए जांघ में करके बैठा हूं।"

बोधिसत्व का दिल भर आया। वे सोचने लगे—"यह मेरी बहुत सेवा करता है। लेकिन इतने विद्यार्थियों में यही मन्द-मति है, शिल्प नहीं सीख सकता। मैं इसे कैसे पण्डित बनाऊं?" तब उन्हें एक उपाय सूझा—"मैं इस विद्यार्थी को लकड़ियां और पत्ते लेने को भेजूंगा। आने पर पूछूंगा—आज तूने क्या देखा? क्या-क्या किया? तब यह मुझे बतायगा कि आज यह देखा, यह किया। तब मैं इससे पूछूंगा कि जो कुछ तूने आज देखा, किया,

१९. नङ्गलीस जातक। १.१२.१२३

वह कैसा है ? वह मुझे उपमा देकर बातों से समझायगा—ऐसा है, ऐसा नहीं है। इस प्रकार इससे नई-नई उपमाएं, बातें कहलवाकर मैं इसे पण्डित बना दूंगा।"

तब उन्होंने उसे बुलाकर कहा—"तात माणवक ! अब से तू जहाँ लकड़ी या पत्ते लेने जाय, वहां जो देखे, जो सुने, जो खाए-पिये, वह मुझ से आकर कहा कर।" उसने 'अच्छा' कहकर स्वीकार किया।

एक दिन वह विद्यार्थियों के साथ लकड़ी लेने जंगल गया। वहां उसने एक सांप देखा। आकर आचार्य से कहा—"आचार्य ! मैंने साँप देखा।"

"तात ! सांप कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

"तात ! बहुत अच्छा। तूने सुन्दर उपमा दी। सांप हल की फाल की ही तरह होते हैं।"

बोधिसत्व ने सोचा—"विद्यार्थी को अच्छी उपमा सूझी है। मैं इसे पण्डित बना सकूंगा।"

विद्यार्थी ने फिर एक दिन जंगल में हाथी देखकर कहा—"आचार्य ! मैंने हाथी देखा।"

"तात ! हाथी कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

बोधिसत्व सोचने लगे—"हाथी की सूंड़ तो हल के फाल की तरह होती है; लेकिन उसके दांत आदि तो ऐसे-ऐसे होते हैं। मालूम होता है यह अपनी मूर्खता के कारण पृथक-पृथक करके वर्णन नहीं कर सकता।" वे चुप रहे।

एक दिन विद्यार्थी को ऊख मिली। उसने कहा—"आचार्य ! आज ऊख चूसी।"

"ऊख कैसी होती है ?"

"हल की फाल की तरह।"

'थोड़ी सीधी बात कहता है', सोच आचार्य चुप रहे। फिर एक दिन

निमन्त्रण में दही के साथ गुड़ खाया, कुछ ने दूध के साथ। उसने आचार्य से कहा—"आज हमने दही-दूध के साथ गुड़ खाया।"

"दही-दूध कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

आचार्य ने सोचा—"इस विद्यार्थी ने सांप की हल की फाल से उपमा दी, सो तो ठीक रहा। हाथी को हल की फाल से उपमा दी, वह भी सूंड का ख्याल करके कहा होगा, इसलिए कुछ ठीक रहा। ऊख को हल की फाल के सदृश कहा, उसमें भी खैर कुछ ठीक है। लेकिन दूध-दही तो सफेद होते हैं ; जैसा बरतन होता है वैसा ही उनका आकार हो जाता है। यहा तो उपमा सर्वथा गलत है ! इस मूर्ख को मैं न सिखा सकूंगा।"

आचार्य ने खर्चा देकर उसे बिदा किया।

: २० :

बिल्ला-व्रत

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ने चूहे का जन्म ग्रहण किया था। बड़े होने पर वह बढ़कर सूअर के बच्चे की तरह हो गये। अनेक सौ चूहों के साथ जंगल में रहने लगे।

इधर-उधर घूमते हुए एक शृगाल ने उन चूहों के समूह को देखकर सोचा—"इन चूहों को ठगकर खाऊंगा।" यह सोचकर वह सूर्य की तरफ मुँह करके चूहों के बिल से थोड़ी ही दूर पर एक ही पांव पर खड़ा हो रहा। मुँह ऐसे खोल लिया जैसे हवा पी रहा हो।

इधर-उधर भोजन के लिए घूमते हुए बोधिसत्व ने सोचा—यह सदाचारी होगा। इसलिए उसके पास जाकर पूछा—

"भन्ते ! आपका नाम क्या है ?"

---

२०. बिडारवत जातक। १.१३.१२८

"मेरा नाम है धार्मिक।"

"चारों पैर पृथ्वी पर न रख, एक ही पैर से क्यों खड़े हैं?"

"मेरे चारों पैर पृथ्वी पर रखने से पृथ्वी के लिए दूभर होगा; इसलिए एक ही पैर से खड़ा हूं।"

"मुंह खोले क्यों खड़े हैं?"

"हम हवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते।"

"सूर्य की ओर मुँह करके क्यों खड़े हैं?"

"सूर्य को नमस्कार कर रहा हूं।"

बोधिसत्व ने सोचा, यह पक्का सदाचारी है। इसके बाद से वह चूहों के समूह के साथ प्रातः-सायं उसकी सेवा में जाने लगा।

जब वे चूहे उसकी सेवा करके लौटते तो वह शृगाल सबसे पिछले चूहे को पकड़कर खा जाता और मुँह पोंछकर खड़ा हो जाता। इस प्रकार क्रम से खाते-खाते चूहों का दल कमजोर पड़ गया। चूहे सोचने लगे कि पहले हमें यह बिल पर्याप्त नहीं होता था, सट-सटकर खड़े होते थे। अब खुलकर खड़े होते हैं, तब भी बिल नहीं भरता। क्या मामला है?

यह सोचते हुए बोधिसत्व ने शृगाल पर शक किया। उन्होंने इसकी जांच करनी चाही। इसलिए जब चूहे शृगाल की सेवा से लौटने लगे तो बोधिसत्व सब चूहों को आगे कर स्वयं पीछे रहे। शृगाल उस पर उछला। अपने को पकड़ने के लिए शृगाल को उछलता देखकर बोधिसत्व ने कहा— "भो शृगाल! तेरा यह व्रत धार्मिक नहीं है। तू दूसरों की हिंसा करने के लिए ही धर्म को आगे करके रहता है।"

इस प्रकार कहते हुए चूहों का राजा उछलकर उसकी गर्दन पर चढ़ बैठा। ठोडी के नीचे की नाली पकड़कर फाड़ डाली। शेष चूहों ने भी रुक कर मदद की। शृगाल मर गया। सबने उसे मुर-मुर करके खा डाला। उसके बाद से चूहों का दल निर्भय हो गया।

: २१ :

जैसा भोजन वैसा काम

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ब्राह्मणों के एक कुल में पैदा हुए। सयाने होने पर बनारस में प्रसिद्ध आचार्य हुए। प्रायः एक सौ राजधानियों के क्षत्रिय-ब्राह्मण उनके पास विद्या सीखते थे।

एक जनपद्वासी ने बोधिसत्व के पास तीनों वेद और अठारह विद्याएं सीखीं। वह बाराणसी में ही रहता था। दिन में दो-तीन बार बोधिसत्व के पास आता-जाता।

एक बार वह एक सप्ताह के बाद बोधिसत्व के पास पहुँचा। उन्होंने पूछा—"ब्राह्मण! दिखाई नहीं दिया?"

"आचार्य! मेरी ब्राह्मणी के शरीर को वायु बींधती है। सो मैं उसके लिए घी, तेल तथा अच्छे-अच्छे भोजन खोजता हूं। उसका शरीर मोटा हो गया है। चमड़ी निखर आई है। लेकिन वात-रोग का अन्त होता नहीं दिखाई देता। मैं उसकी सेवा में ही लगा रहता हूं। इसीलिए यहां आने का अवकाश नहीं मिलता।"

असल में वह ब्राह्मणी दुश्चरित्रा थी। कुछ काम न करके रोग का बहाना बनाकर बड़बड़ाती हुई लेट रहती।

वह ब्राह्मण उससे पूछता—"भद्रे! तुझे क्या कष्ट है?"

"मुझे वायु बींधती है।"

"तो तुझे क्या-क्या चाहिए?"

"चिकने, मीठे, अच्छे, स्वादिष्ट यवागु-भात तैल आदि।"

जो-जो वह इच्छा करती, ब्राह्मण ला-लाकर देता। दास की तरह सब काम करता। लेकिन वह ब्राह्मण के घर आने के समय लेट रहती, बाहर चले

२१. कोसिय जातक। १.१३.१३०

जाने पर यारों के साथ गुजारा करती।

बोधिसत्व ने समझ लिया कि वह इसे धोखा देकर लेटी रहती है। इसलिए उन्होंने कहा—"तात! अब से तुम उसे दूध, घी, रस आदि मत दो। गोमूत्र में त्रिफला आदि और पांच प्रकार के पत्ते डालकर उनका काढ़ा बनाओ। जब औषधि तांबे के रंग की हो जाय तो उसे नये बर्तन में रखकर रस्सी, जोत या कोई छड़ी ले जाकर कहना—"यह तेरे रोग के लिए उचित दवाई है। या तो इसे पी, नहीं तो जो भोजन तू करती है, उसके मुताबिक काम कर।" और अगर न माने तो रस्सी, जोत या छड़ी से प्रहार करके केशों को पकड़कर खींचना। खींचकर कोहनी से पीटना। उसी समय उठ कर वह काम करने लगेगी।"

वह बोधिसत्व के कथनानुसार दवाई बनाकर ले गया। बोला—"भद्रे! यह औषधि पी।"

"यह औषधि तुम्हें किसने बताई?"

"भद्रे! आचार्य ने!"

"इसे ले जाओ। नहीं पीऊंगी।"

ब्राह्मण ने कहा—"तू स्वेच्छा से नहीं पीएगी।" छड़ी लेकर बोला—"या तो रोग के अनुसार दवाई पी अथवा यवागु-भात के अनुसार काम कर। क्योंकि तेरी वाणी और तेरे भोजन का मेल नहीं बैठता।"

ऐसा कहने पर कोसिय ब्राह्मणी ने सोचा—अब आचार्य का ध्यान आकृष्ट हो गया है। आचार्य ने मेरी दुश्चरित्रता जान ली। अब मैं इसे धोखा नहीं दे सकती। अब मैं उठकर काम करूँ।

वह उठकर काम करने लगी।

: २२ :

मित्र-धर्म

पूर्वकाल में मगध देश के राजगृह नगर में एक राजा राज्य करता था। बोधिसत्व उस समय उस नगर के ही एक सेठ थे। उनके पास अस्सी करोड़ धन था। नाम था संघ सेठ। उसी समय बाराणसी में भी एक पीलिय नामक सेठ था। उसके पास भी अस्सी करोड़ धन था। वे दोनों परस्पर मित्र थे।

एक बार बाराणसी के पीलिय सेठ पर किसी कारण संकट आ पड़ा। तमाम जायदाद नष्ट हो गई। वह दरिद्र हो गया। तब वह बाराणसी से निकलकर पैदल ही अपनी स्त्री के साथ राजगृह में संघ सेठ के घर गया।

उसने उसे देखते ही पहचान लिया—मेरा मित्र आया है। गले मिल कर आदर-सत्कार किया। फिर कुछ दिन बीत जाने पर पूछा—"मित्र! कैसे आये?"

"सौम्य! मुझ पर खतरा आ पड़ा। मेरा सब धन नष्ट हो गया। मुझे सहारा दें।"

"अच्छा मित्र! डरें नहीं" कहकर उसने खजाना खुलवाकर चालीस करोड़ 'हिरण्य' दिलवाया। उसके साथ अपने पास जो कुछ भी वस्त्र आदि तथा जानदार और बेजान वस्तु थी, सभी बांटकर आधी-आधी दी। वह उस धन को लेकर बाराणसी लौट आया।

आगे चलकर संघ सेठ पर भी वैसा ही खतरा आ पड़ा। उसने अपने लिए सहारा ढूंढते हुए सोचा—'मैंने अपने मित्र का बहुत उपकार किया। आधी जायदाद दे दी। वह मुझे देखकर त्यागेगा नहीं। मैं उसके पास चलूं।'

वह अपनी स्त्री के साथ पैदल ही बाराणसी के लिए निकल पड़ा

२२. असम्पदान जातक। १. १४. १३१

नगर में पहुँचकर अपनी भार्या से कहा—"भद्रे ! तेरे लिए यह अच्छा नहीं है कि तू मेरे साथ गली-गली भटके। मैं जाकर सवारी भेजूंगा। तू पीछे बड़े ठाट से उस पर आना।"

उसे एक शाला में बिठा स्वयं नगर में दाखिल हुआ। सेठ के घर पहुँच कर सूचना भिजवाई कि राजगृह से तुम्हारा मित्र आया है। सेठ बोला—"आ जाय।" उसे देखकर न वह आसन से उठा, न स्वागत ही किया; केवल इतना ही पूछा—"क्यों आया है?"

"तुम्हें देखने आया हूं।"

"निवास-स्थान कहां ठीक किया है?"

"अभी कहीं ठीक नहीं हुआ है। सेठानी को शाला में बिठाकर आया हूँ।"

"यहां तुम्हारे ठहरने को जगह नहीं। सीधा लेकर किसी जगह पका-खाकर चले जाओ।" इतना कहकर अपने एक दास को आज्ञा दी कि मित्र के पल्ले में एक तुंबा भर भूसा बांध दो।

उसी दिन उसने एक हजार गाड़ी लाल चावल छुटवाकर कोठे भरे थे। चालीस करोड़ धन लेकर आये अकृतज्ञ महाचोर ने मित्र को केवल एक तुंबा भर भूसा दिलवाया! दास एक टोकरी में तुंबा भर भूसा डाल कर बोधिसत्व के पास गया।

बोधिसत्व ने सोचा—'यह असत्पुरुष मेरे पास से चालीस करोड़ धन पाकर अब तुंबा भर भूसा दे रहा है! इसे लूं अथवा न लूं? उसे विचार हुआ—यह तो अकृतज्ञ है, मित्र-द्रोही है, कृत-उपकार को भूलकर इसने मेरे साथ मैत्री-सम्बन्ध तोड़ डाला है। यदि मैं इसका दिया तुंबा भर भूसा बुरा होने के कारण नहीं ग्रहण करता हूं तो मैं भी मैत्री-सम्बन्ध तोड़नेवाला होता हूं। इसलिए मैं इसके दिये तुंबे भर भूसे को ग्रहण कर अपनी ओर से मैत्री-भाव की प्रतिष्ठा करूंगा।'

उसने तुंबे भर भूसे को अपने पल्ले में बांध लिया और महल से उतर शाला को गया।

स्त्री ने पूछा—"आर्य, तुम्हें क्या मिला ?"

"भद्रे ! हमारे मित्र पीलिय सेठ ने हमें तूंबा भर भूसा देकर आज ही विदा कर दिया है।"

उसने रोना आरम्भ किया—"आर्य ! इसे लिया ही क्यों ? क्या चालीस करोड़ धन का बदला यही है ?"

बोधिसत्व ने कहा—"भद्रे ! रो मत । मैंने अपनी ओर से मैत्री-सम्बन्ध न टूटने देने के लिए, बल्कि बनाये रखने के लिए ही ग्रहण किया है। तू क्यों सोच करती है ?"

ऐसा कहने पर भी वह सेठानी रोती ही रही । उसी समय संघ सेठ द्वारा पीलिय सेठ को दिया गया एक दास शाला के दरवाजे के पास से गुजर रहा था। उसने सेठानी के रोने की आवाज सुनी । अन्दर जाकर जब उसने देखा कि उसके स्वामी हैं तो पैरों पर गिर पड़ा और रोने-चिल्लाने लगा। उसने पूछा—"स्वामी यहां कैसे आये ?"

सेठ ने सब हाल कह दिया। दास बोला—"स्वामी ! देखें, चिन्ता न करें।" इस प्रकार दोनों को दिलासा दे अपने घर ले गया। वहां सुगन्धित जल से नहलाया, खिलाया। फिर अन्य सब दासों को खबर कर दी कि स्वामी आये हैं। कुछ दिन बिताकर सभी दासों को साथ लेकर वह राजा के यहां पहुंचा और शोर किया।

राजा ने बुलाकर पूछा—"यह क्या है ?"

उन्होंने वह सब हाल राजा से कह दिया। राजा ने उनकी बात सुनकर दोनों सेठों को बुलवाया। संघ सेठ से पूछा—"महासेठ ! क्या तूने सचमुच पीलिय सेठ को चालीस करोड़ धन दिया ?"

"महाराज ! मेरी आशा लगा जब मेरा मित्र मेरे पास राजगृह आया तो मैंने उसे न केवल चालीस करोड़ धन ही दिया, बल्कि जितना भी मेरे पास धन था, चाहे जानदार, चाहे बे-जान; सभीके दो बराबर हिस्से करके एक हिस्सा दिया।"

राजा ने पीलिय सेठ से पूछा—"क्या यह सच है ?"

"देव ! ठीक है ।"

"तेरी आशा लगाकर तेरे पास आने पर तूने भी इसका कोई सत्कार-सम्मान किया ?"

वह चुप रहा ।

"तूने तूबा भर भूसा इसके पल्ले में डलवाकर दिया ?"

इसे भी सुनकर वह चुप ही रहा ।

राजा ने मन्त्रियों से सलाह की कि क्या करना चाहिए ? सबने पीलिय सेठ की निन्दा की । राजा ने आज्ञा दी—"जाओ, पीलिय सेठ के घर में जितना धन है, वह सब संघ सेठ को दे दो ।"

बोधिसत्व ने कहा—"महाराज ! मुझे पराया धन नहीं चाहिए । जितना धन मैंने दिया है, उतना ही दिलवा दो ।"

राजा ने बोधिसत्व का धन दिलवा दिया ।

बोधिसत्व ने अपना सारा धन लेकर दास-समूह-सहित राजगृह जाकर अपना कुटुम्ब बसाया ।

: २३ :

सोने के पर

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था । उस समय बोधिसत्व एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए । जब वे बड़े हुए तो उनके समान जाति-कुल से एक भार्या ला दी गई । उससे उन्हें नन्दा, नन्दवती और नन्द-सुन्दरी तीन लड़कियां हुई । उनका विवाह होने से पूर्व ही बोधिसत्व मर गए और स्वर्ण-हंस होकर पैदा हुए ।

२३. सुवण्णहंस जातक । १.१४.१३६

'हंस' ने बड़े होने पर सोने के परों से ढके हुए परम सौभाग्यवान अपने शरीर को देखकर विचार किया कि मैं कहां से मरकर यहां पैदा हुआ हूं ? उसे मालूम हुआ कि मनुष्य-लोक से। फिर विचार किया कि ब्राह्मणी और लड़कियों का जीवन-पालन कैसे होता है ? उसे पता लगा कि दूसरों की मजदूरी करके बड़े कष्ट से जीवन-यापन करती हैं। तब उसने सोचा कि मेरे सोने के पर ठोस* हैं। इनमें से मैं एक-एक पर उन्हें दूं। इससे मेरी भार्या और लड़कियां सुखपूर्वक जीएंगी।

हंस ब्राह्मणी के घर पहुंचकर घर के शहतीर के एक सिरे पर जा बैठा। ब्राह्मण और लड़कियों ने बोधिसत्व को देखकर पूछा—"स्वामी! कहां से आये ?"

"मैं तुम्हारा पिता हूं। तुम्हें देखने के लिए आया हूं। अब तुम्हें दूसरों की मजदूरी करते हुए कष्ट-पूर्वक जीवन-यापन करने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें अपना एक-एक पर दिया करूंगा। उसे बेच-बेचकर सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करना।"

इतना कह वह एक पर देकर उड़ गया। इसी प्रकार बीच-बीच में आकर एक-एक पर देता। ब्राह्मणियां धनी और सुखी हो गईं।

एक दिन उस ब्राह्मणी ने लड़कियों को बुलाकर सलाह की—"अम्म! जानवरों के दिल का पता नहीं। हो सकता है कि कभी तुम्हारा पिता न आये। इसलिए इस बार उसके आने पर हम उसके सभी पर उखाड़ लें।"

उन्होंने अस्वीकार किया। बोलीं—"इस प्रकार हमारे पिता को कष्ट होगा।"

ब्राह्मणी ने लालची होने के कारण फिर एक दिन स्वर्ण-हंस के आने पर कहा—"स्वामी! आयें।"

जब उसने देखा कि वह उसके पास आ गया है तो दोनों हाथों से पकड़कर उसके सब पर नोच लिये। सभी पर बोधिसत्व की इच्छा के

*कूटे और रगड़े जा सकते हैं।

बिना जबर्दस्ती लिये जाने के कारण बगुले के पंख सदृश हो गए।

अब बोधिसत्व पंख पसारकर उड़ न सके। ब्राह्मणी ने उन्हें मटके में रखकर पाला। उनके जो नये पर निकले, श्वेत ही निकले। पंख निकलने पर वह उड़कर अपने स्थान पर चले आये। फिर वहां नहीं गए।

: २४ :

चुहिया और बिल्ली

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक पत्थर-कट के कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वह अपने शिल्प में पारंगत हो गए।

काशी देश के एक कस्बे में एक बड़ा धनवान सेठ था। उसका गड़ा हुआ खजाना ही चालीस करोड़ सोना था।

उसकी स्त्री मरी तो धन के स्नेह से चुहिया होकर पैदा हुई। वह उस खजाने पर रहने लगी। उसका वह कुल नष्ट हो गया। वंश उजड़ गया। वह गांव भी ध्वस्त हो नाम-शेष रह गया।

उन दिनों बोधिसत्व जहां पहले गांव था, उसी जगह के पत्थर उखाड़ कर उन्हें तराशते थे। उस चुहिया ने अपने आस-पास बोधिसत्व को आते-जाते देखा तो उसके मन में स्नेह पैदा हो गया। उसने सोचा—"मेरा बहुत-सा धन निष्प्रयोजन नष्ट हुआ जाता है। मैं और यह पुरुष इकट्ठे मिलकर इस धन को खायेंगे।" एक दिन वह मुँह में कार्षापण पकड़े हुए बोधिसत्व के पास पहुँची। बोधिसत्व ने प्रिय-वाणी का प्रयोग करते हुए पूछा—

"अम्म! कार्षापण लेकर क्यों आई है?"

"तात! इसे लेकर स्वयं भी खायें और मेरे लिए भी मांस लायें।"

२४. बब्बु जातक। १.१४.१३७

बोधिसत्व ने "अच्छा" कह स्वीकार किया। कार्षापण लेकर घर गये। उसमें से एक मासे का मांस लाकर उसे दिया। उसने ले आकर अपने निवासस्थान पर जी भर खाया।

उसके बाद से वह इसी तरह प्रतिदिन बोधिसत्व को कार्षापण लाकर देती। वह भी इससे मांस ला देता।

एक दिन उस चुहिया को एक बिल्ले ने पकड़ा। वह बोली—"स्वामी! मुझे न मारें।"

"क्यों? मुझे भूख लगी है! मैं मांस खाना चाहता हूं। मैं बिना मारे नहीं रह सकता।"

"क्या एक दिन केवल एक ही बार मांस खाना चाहते हैं, अथवा नित्यप्रति?"

"मिले तो नित्य खाना चाहूंगा।"

"यदि ऐसा है तो मुझे छोड़ दें, मैं नित्यप्रति मांस दिया करूंगी।"

"अच्छा तो ध्यान रखना" कहकर बिल्ले ने उसे छोड़ दिया।

उसके बाद से उसके लिए जो मांस आता, उसके वह दो हिस्से करती। एक बिल्ले को देती, एक स्वयं खाती। मगर फिर भी उसे जान का खतरा बराबर लगा रहता। आहार की कमी और बिल्ले के भय के कारण क्लान्त तथा कृष हो गई। उसका मांस और रक्त सूख गया। पत्थर-कट ने उसे देखकर पूछा—"अम्म! म्लान क्यों पड़ गई है?"

"इस कारण से········।"

"इतनी देर तक मुझे क्यों नहीं बताया। मैं जानता हूँ, इसका क्या उपाय करना चाहिए।"

उसे इस प्रकार दिलासा देकर शुद्ध स्फटिक की एक गुफा बनाकर पत्थर-कट ने कहा—"अम्म! तू इस गुफा में प्रवेश कर। तेरे पास जो कोई आए, उसे कठोर वचन से डाँट।"

चुहिया गुफा में पड़कर लेट रही। बिल्ले ने आकर कहा—"मेरा मांस दे।"

चुहिया बोली—"अरे दुष्ट बिलार! क्या मैं तेरी नौकर हूँ कि मांस लाकर दूं? अपने पुत्रों का मांस खा।"

बिल्ला नहीं जानता था कि चुहिया स्फटिक-गुहा के अन्दर है। उसने क्रोध से सहसा आक्रमण किया कि चुहिया को पकड़ूंगा। उसका हृदय स्फटिक-गुहा से टकराया और उसी समय चूर-चूर हो गया। आंखें निकल आईं। वह वहीं गिरकर मर गया।

उसके बाद चुहिया निर्भय हो गई। वह बोधिसत्व को प्रतिदिन दो-तीन कार्षापण देती। इस प्रकार उसने सारा धन बोधिसत्व को ही दे दिया। वे दोनों मित्र-भाव से रह यथा-कर्म परलोक सिधारे।

: २५ :

गोह

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व गोह की योनि में पैदा हुए।

उस समय पाँच अभिञ्ञा प्राप्त एक उग्र तपस्वी एक गाँव के समीप जंगल में पर्णकुटी में रहता था। ग्रामवासी तपस्वी की अच्छी तरह सेवा करते थे। गोह उसके टहलने की जगह के पास एक बिल में रहता था। प्रतिदिन दो-तीन बार आकर तपस्वी के पास धर्म तथा अर्थपूर्ण बातें सुनता। फिर तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवास-स्थान लौट जाता।

कुछ दिनों बाद वह तपस्वी गाँव-वासियों को पूछकर वहां से चला गया। उस शीलव्रत-सम्पन्न तपस्वी के चले जाने पर एक दूसरा कुटिल तपस्वी आकर उसी स्थान पर रहने लगा। गोह उसे भी पहले ही तपस्वी की तरह सदाचारी समझ उसके पास गया।

एक दिन ग्रीष्म-ऋतु में अकाल वर्षा बरसने पर बिलों से मक्खियाँ

---

२५. गोध जातक। १. १४. १३८

निकलीं। उन्हें खाने के लिए गोहें घूमने लगीं। ग्रामवासियों ने बाहर निकलकर बहुत सी गोहें पकड़ीं। चिकनी भोजन-सामग्री के साथ खट्टा-मीठा गोह-मांस तैयार कर उस तपस्वी को दिया।

तपस्वी ने गोह का मांस खाया तो उसे बहुत स्वादिष्ट लगा। उसने पूछा—"यह मांस बड़ा मीठा है। किसका मांस है?" जब उसे पता लगा कि गोह का मांस है तब वह सोचने लगा—"मेरे पास बड़ी गोह आती है। उसे मारकर उसका मांस खाऊँगा।" उसने पकाने के बरतन और उनके साथ घी, नमक आदि मँगवाकर एक ओर रख लिये। स्वयं मुद्गर लेकर, काषाय वस्त्र से ढककर पर्ण-कुटी के सामने शान्तचित्त की तरह बैठ गोह की प्रतीक्षा करने लगा।

गोह शाम को तपस्वी के पास जाने के लिए निकला। समीप पहुचते ही उसकी इन्द्रियों में विकार देखकर सोचने लगा—"यह तपस्वी उस तरह नहीं बैठा है जैसे और दिनों बैठा रहता था। आज यह मेरी ओर दूषितदृष्टि से देख रहा है। इसकी परीक्षा करूँगा।" जिधर से तपस्वी की देह को छूकर हवा आ रही थी, वह उधर खड़ा हुआ। गोह के मांस की गन्ध आई! उसे सूंघकर उसने सोचा—"इस कुटिल तपस्वी ने आज गोह-मांस खाया होगा। इसीसे यह रस-तृष्णा में आसक्त हो गया है। आज मेरे समीप पहुचने पर मुझे मुद्गर से मारकर मांस पकाकर खाना चाहता होगा।" वह उसके पास न जाकर वापिस लौटकर घूमने लगा।

तपस्वी ने गोह को निकट न आता देखकर समझा कि यह जान गया है, मैं इसे मारना चाहता हूँ। इसीसे नहीं आता है। न आने पर भी यह कहाँ बचकर जायगा। उसने मुद्गर निकाल फेंककर मारा। मुद्गर उसकी पूंछ के सिरे में ही लगा।

गोह जल्दी से बिल में प्रविष्ट हो गया। दूसरे छेद से सिर निकाल कर बोला—"कुटिल जटिल! मैं तुझे सदाचारी समझकर तेरे पास आया। लेकिन अब मैंने तेरा कुटिल स्वभाव जान लिया। तेरे जैसे महाचोर को इस प्रव्रजित भेष से क्या? जटाओं और मृगचर्म पहनने से क्या लाभ! अन्दर

से तो तू इतना मैला है और बाहर से इतना धोता है !"

: २६ :

न घर का न घाट का

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए।

उसी समय एक गांव में कुछ मछुए रहते थे। एक मछुआ जाल लेकर अपने छोटे पुत्र के साथ तालाब में मछली पकड़ने गया। उसने पानी में जाल फेंका। जाल पानी से छिपे हुए एक ठूंठ में जा फंसा। मछुए ने जब देखा कि वह निकलता नहीं है तो सोचा—"कोई बड़ी मछली फंसी होगी। क्यों न मैं लड़के को उसकी मां के पास भेजकर पड़ोसी से झगड़ा करा दूं। तब इसमें से कोई हिस्सा पाने की आशा न करेगा।" उसने पुत्र से कहा—"तात ! जा, मां से कह कि हमें बड़ी मछली मिली है और यह भी कह कि वह पड़ोसी से झगड़ा कर ले।'

पुत्र को घर भेजने के बाद वह स्वयं जाल को खींचने लगा। वह नहीं खींच सका। रस्सी टूटने के भय से उसने अपने ऊपर के कपड़े उतारकर जमीन पर रखे और पानी में उतरा। मछली के लोभ में, मछली को ढूंढते हुए, वह ठूंठ से टकरा गया। उसकी दोनों आँखें फूट गईं। जमीन पर रखे कपड़े चोर ले गए।

वह पीड़ा से पागल हो, हाथ से आंखों को दबाए, पानी से बाहर निकला। कांपते हाथों कपड़े खोजने लगा।

इधर उसकी भार्या ने सोचा कि मैं झगड़ा करके ऐसा कर दूं कि कोई कुछ पाने की आशा न रखे। उसने एक कान में ताड़ का पत्ता पहना, एक आंख में हांडी का काजल लगाया और गोद में कुत्ता लेकर पड़ोसी के घर

२६. उभतोभट्ठ जातक। १.१४.१३९

गई। उसकी एक पड़ोसन बोली—"तूने एक ही कान में ताड़ का पत्ता डाला है, एक ही आंख में कज्जल लगाया है और गोद में कुत्ता लेकर घर-घर ऐसे घूम रही है जैसे यह तेरा प्यारा पुत्र हो। क्या तू पगली हो गई है?"

"मैं पगली नहीं हूं। तू मुझे व्यर्थ ही गाली देती है, मजाक करती है। अब मैं मुखिया के पास जाकर तुझ पर आठ कार्षापण जुर्माना करवाऊंगी।"

इस प्रकार परस्पर झगड़कर दोनों मुखिया के पास गईं। मुखिया ने दोषी का पता लगाया। परिणामस्वरूप वही दण्डित हुई।

लोग उसे बांधकर पीटने लगे—जुर्माना दे।

वृक्ष-देवता ने गांव में उसका यह हाल और जंगल में उसके पति की विपत्ति देखकर टहनी पर खड़े होकर कहा—"ओ पुरुष! जल में भी तेरा काम बिगड़ा, स्थल पर भी। तू दोनों ओर से भ्रष्ट हुआ। यह अधिक तृष्णा के ही कारण।"

: २७ :

सेवा का बदला

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उसी समय की यह कथा है। बाराणसी के समीप ही बढ़इयों का ग्राम था। उसमें पांच सौ बढ़ई रहते थे।

वह नौका में बैठकर नदी-स्रोत के ऊपर की तरफ जाते। वहां जंगल में पहुंचकर लकड़ी काटते। उस लकड़ी से एक तल्ला, दो तल्ला मकान बनाते। बन जाने पर उन मकानों को नावों पर लादकर नगर में ले आते। मकान बेच, पैसा ले, नगर से सामान खरीद पुन: जंगल को वापस लौट जाते।

२७. अलीन-चित्त जातक। २.१.१५६

इस प्रकार अपनी जीविका चलाते हुए वे लोग पड़ाव डालकर जंगल में पड़े हुए थे। एक दिन एक हाथी लंगड़ाता हुआ उनके पड़ाव के पास आया। उसके पैर में एक खूंटा चुभ गया था। बड़ी पीड़ा हो रही थी। पैर सूज गया था। उसमें से पीब बहने लगी थी।

हाथी ने लकड़ी काटने का शब्द सुनकर सोचा कि यहां बढ़ई रहते होंगे, उनसे मेरा कल्याण होगा। ऐसा समझकर तीन पैरों से चलकर उनके पास पहुंचा और वहीं नजदीक ही पड़ रहा।

बढ़ई उसका सूजा हुआ पैर देखकर पास गए। उन्हें उसमें खूंटा दिखाई दिया। तेज कुल्हाड़े से खूंटे के चारों ओर गहरा निशान कर, उसमें रस्सी बांधकर खींचा। खूंटा निकालकर पीब निचोड़ी। गरम पानी से धोया। अनुकूल दवा करने से थोड़े ही समय में घाव ठीक हो गया।

नीरोग होकर हाथी ने सोचा—इन बढ़इयों ने मेरी जान बचाई। मुझे इनकी कुछ सेवा करनी चाहिए। उस दिन से वह बढ़इयों के साथ वृक्ष लाने लगा। छीलने के समय उन्हें उलट-पुलटकर सामने करता, कुल्हाड़ी आदि औजार ले आता। सूंड में लपेटकर काले धागे के सिरे को पकड़ लेता। बढ़ई भी भोजन के समय इसे एक-एक पिण्ड देते तो पांच सौ पिंड हो जाते।

उस हाथी का एक बच्चा था। वह एकदम श्वेत वर्ण का था और था मंगल हाथी। हाथी ने सोचा, मैं बूढ़ा हो गया। अब मुझे इन बढ़इयों को काम करने के लिए अपने लड़के को देकर स्वयं जाना चाहिए। वह बढ़इयों को बिना सूचित किये ही जंगल में गया। वहां से लड़के को लाकर बढ़इयों से बोला—"यह मेरा लड़का है। तुमने मुझे जीवन-दान दिया है। मैं डाक्टर की फीस के बदले इसे देता हूं। अब से यह तुम्हारी सेवा किया करेगा।" इतना कहकर पुत्र को आदेश दिया—"पुत्र! जो कुछ मेरा काम है, उस काम को अब से तू करना।" उसे बढ़इयों को सौंप हाथी ने स्वयं जंगल में प्रवेश किया।

उस समय से वह हाथी-बच्चा बढ़इयों के कहने के अनुसार सब काम

करने लगा। वे भी उसे पांच सौ पिण्ड देकर पोसते। काम समाप्तकर नदी में उतरकर वह खेलता। बढ़इयों के बच्चे भी उसकी सूंड पकड़कर जल और स्थल में सभी जगह उससे खेलते। श्रेष्ठ हाथी हों, घोड़े हों अथवा मनुष्य हों, कोई भी पानी में मलमूत्र नहीं त्यागते। वह भी पानी में मल-मूत्र न करके बाहर, नदी के किनारे पर ही करता था।

एक दिन नदी के ऊपरी हिस्से में वर्षा हुई। हाथी की आधी सूखी लेंडी पानी में बहकर नदी के रास्ते, वाराणसी नगर के पत्तन पर एक झाड़ी में आ अटकी।

राजा के हाथीवान पांच सौ हाथियों को नहलाने ले गये। श्रेष्ठ हाथी की लेंडी की गन्ध सूंघकर, एक भी हाथी ने पानी में उतरने की हिम्मत न की। सभी पूछें उठाकर भागने लगे। तब हाथी-सेवकों ने हाथीवानों को खबर दी। उन्होंने सोचा, पानी में कुछ खतरा होगा। खोज करने पर जब उन्होंने झाड़ी में श्रेष्ठ हाथी की लेंडी देखी तो समझ गए कि यही कारण रहा है। उन्होंने चाटी मंगवाई और उसे पानी से भरकर उसमें लेंडी को घोलकर हाथियों के शरीर पर छिड़कवा दिया। जब शरीर सुगन्धित हो गए तब वे हाथी नदी में उतरकर नहाए।

हाथीवानों ने राजा को यह समाचार सुनाकर सलाह दी—"देव ! वह खोजवाकर मँगवाया जाना चाहिए।" राजा नौकाओं के बेड़े से नदी में उतरकर ऊपर जानेवाले बेड़े से बढ़इयों के निवास-स्थान पर पहुँचा। वह हाथी-बच्चा नदी में खेल रहा था। जब उसने भेरी शब्द सुना तो जाकर बढ़इयों के पास खड़ा हो गया। बढ़इयों ने राजा की अगवानी करते हुए कहा—"देव ! यदि लकड़ी की आवश्यकता थी तो कष्ट क्यों किया ? क्या भेजकर मगवाना उचित न होता ?"

"अरे ! मैं लकड़ी के लिए नहीं आया, मैं तो इस हाथी के लिए आया हूँ।"

"देव ! पकड़वाकर ले जाएँ।"

हाथी-बच्चे ने जाना नहीं चाहा।

"अरे, हाथी क्या करता है ?"

"देव ! जिससे बढ़इयों का पोषण हो, वह खाता है।"

राजा ने "अच्छा भाई" कहा और हाथी की सूंड के पास, पूंछ के पास और चारों पैरों के पास एक-एक लाख कार्षापण रखवाए। इतने पर भी हाथी नहीं गया। सब बढ़इयों को दुशाले, उनकी स्त्रियों को पहनने के वस्त्र तथा साथ खेलनेवाले बच्चों के पालन-पोषण का प्रबन्ध होने पर, बढ़इयों को पीछे न आने दे, स्त्रियों और बच्चों को देखता हुआ वह राजा के साथ चला गया।

राजा उसे लेकर नगर पहुंचा। नगर और हस्तिशाला को अलंकृत करवाया। हाथी को नगर की प्रदक्षिणा करवा हस्तिशाला में ले जाया गया। सभी तरह के गहने पहनाकर, अभिषेक कर उसे राजा की सवारी बनाया। फिर उसे अपना मित्र घोषित कर राजा ने आधा राज्य हाथी को दे दिया। राजा ने उसे अपना बराबर का दर्जा दिया।

हाथी के आने के समय से सारे जम्बूद्वीप का राज्य राजा के हाथ में आया जैसा ही हो गया।

कुछ दिनों बाद बोधिसत्व ने उस राजा की पटरानी की कोख में प्रवेश किया। उसके गर्भ के पूरा होते-होते राजा मर गया। लोगों ने सोचा, यदि हाथी को राजा के मरने का पता चलेगा तो उसका हृदय फट जाएगा। इसलिए हाथी से राजा के मरने की बात गुप्त रखकर वे उसकी सेवा करते रहे।

ठीक पड़ोस के कोशल राजा ने जब सुना कि वाराणसी नरेश मर गए तो उसने राज्य को खाली देख, बड़ी सेना ला, नगर घेर लिया। नगर-निवासियों ने नगर के दरवाजे बन्द कर कोशल राजा के पास सन्देश भेजा—

"हमारे राजा की पटरानी गर्भवती हैं। अंगविद्या के जाननेवाले का कहना है कि अब से सातवें दिन पुत्र होगा। यदि वह पुत्र को जन्म देगी तो हम आज से सातवें दिन राज्य न देकर युद्ध करेंगे। इतने दिन प्रतीक्षा करें।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

देवी ने सातवें दिन पुत्र को जन्म दिया। लोगों ने कहा, 'यह हमारे उदास चित्त की उदासी दूर करता हुआ पैदा हुआ है। इसलिए उसका नाम अलीनचित्त कुमार रखा गया।

उसके पैदा होने के ही दिन से नगर-निवासी कोशल-नरेश के साथ युद्ध करने लगे। युद्ध का नेता न होने से बड़ी सेना भी युद्ध करती हुई थोड़ी-थोड़ी पीछे हटने लगी।

अमात्यों ने रानी से वह समाचार कह, पूछा—

"आर्ये! इस प्रकार सेना के पीछे हटने से हमें डर लगता है कि हम हार न जायं। राजा का मित्र मंगल हाथी, न राजा के मरने की बात जानता है, न पुत्र उत्पन्न होने की, और न कोशल-नरेश के युद्ध करने की, हम इसे यह सब कह दें।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। पुत्र को अलंकृत कर कोमल वस्त्र की गद्दी पर लिटा, अमात्यों के साथ वह हस्ति-शाला में गई।

बोधिसत्व को हाथी के पैरों पर रख कर बोली—

"स्वामी! तुम्हारा मित्र तो मर गया। हमने तुम्हारे हृदय के फट जाने के डर से तुमसे नहीं कहा। यह तुम्हारे मित्र का पुत्र है। कोशल-राज नगर को घेरे युद्ध कर रहा है। सेना पीछे हट रही है। या तो तू अपने पुत्र को स्वयं ही मार डाल अथवा राज्य जीत कर इसे दे।"

उसी समय हाथी ने बोधिसत्व को उठा कर सिर पर रखा। रोया-पीटा। बोधिसत्व को देवी के हाथ में लिटाया और कोशल-नरेश को पकड़ने के लिए हस्तिशाला से निकल पड़ा।

हाथी ने नगर से निकल क्रौंचनाद किया। लोगों को डरा कर भगा दिया। सेना की पांत को तोड़ कोशल-राजा को बालों से पकड़, लाकर बोधिसत्व के पैरों पर डाल दिया।

उस समय से सारे जम्बूद्वीप का राज्य एक प्रकार से बोधिसत्व के ही हाथ में आ गया।

: २८ :

बड़ा कौन है ?

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म लिया। नामकरण के दिन उसका नाम ब्रह्मदत्त कुमार ही रखा गया।

क्रम से बढ़ते हुए सोलह वर्ष की आयु में वह तक्षशिला शिल्प सीखने गया। सब शिल्पों में निष्णात हो घर लौटा। पिता के मरने पर राजा बन, धर्म तथा न्याय से राज्य करने लगा। राग आदि के वशीभूत न होकर वह मुकद्दमों का फैसला करता। उसे धर्म से राज्य करते देख अमात्य भी धर्म से ही मुकद्दमों का फैसला करते। मुकद्दमों का धर्म से फैसला होने के कारण झूठे मुकद्दमे करने वाले नहीं रहे। उनके न होने से राजाङ्गण में मुकद्दमे करने वालों का शोर नहीं होता था। अमात्य सारा दिन न्यायालय में बैठे रहकर भी जब किसी को मुकद्दमा पेश करते न देखते तो उठकर चले जाते। न्यायालय खाली पड़ गए।

बोधिसत्व सोचने लगे—मेरे धर्मानुसार राज्य करने के कारण मुकद्दमा करने वाले नहीं आते। शोर नहीं होता। न्यायालय खाली पड़ गए। अब मुझे अपने दुर्गुणों की खोज करनी चाहिए। जब मुझे पता लग जायगा कि मेरे दुर्गुण ये है तो उन्हे छोड़कर गुणवान बनकर ही रहूंगा।

उसके बाद से वह खोजने लगा कि कोई मेरे दोष कहने वाला है? उन्हें महल के अन्दर कोई ऐसा नहीं मिला जो उसके दोष कहता। जो मिला, प्रशंसा करने वाला ही मिला। 'यह मेरे से मेरी प्रशंसा ही करते होंगे, सोच महल के बाहर रहने वालो की परीक्षा की। वहां भी कोई न मिला। नगर के अन्दर खोज की। नगर के बाहर चारों दरवाजों पर स्थित गाँवों में खोजा। वहां भी कोई दोष कहने वाला न मिला। प्रशंसा ही सुनने को मिली।

२८. राजोवाद जातक। २.१.१५१

तब बोधिसत्व ने जनपद में खोजने का निर्णय किया।

अमात्यों को राज्य संभाल, वह रथ पर चढ़ा। केवल सारथी को साथ ले भेष बदलकर नगर से बाहर निकला। जनपद में खोजते हुए वह राज्य की सीमा तक चला गया। जब वहां भी उसे कोई दोष दिखाने वाला नहीं मिला, प्रशंसा ही सुनाने वाले मिले तो प्रत्यन्त देश की सीमा पर आकर महामार्ग से नगर की ओर लौटा।

उसी समय मल्लिक नाम का कोशल-नरेश भी धर्म से राज्य करता हुआ, अपने दोष ढूंढने निकला था। जब उसे महल के अंदर, नगर के अंदर, नगर के बाहर कोई भी दोष कहने वाला नहीं मिला, प्रशंसा ही करने वाले मिले तो वह जनपद में खोजता हुआ उसी स्थान पर पहुँचा वे दोनों एक सँकरे रास्ते पर आमने सामने हुए। रथ को गुजरने के लिये जगह न थी।

"मल्लिक राजा के सारथी ने बाराणसी राजा के सारथी से कहा—अपने रथ को लौटा ले।"

बाराणसी राजा के सारथी ने कहा—तू अपने रथ को लौटा ले। मेरे रथ में बाराणसी राज्य के स्वामी महाराज ब्रह्मदत्त बैठे हैं।"

दूसरे ने भी कहा—'इस रथ में कोशल-राज्य के स्वामी मल्लिक महाराज बैठे हैं। तू अपने रथ को मोड़कर हमारे राजा के रथ को जगह दे।"

बाराणसी राजा का सारथी सोचने लगा—"यह भी राजा है। अब क्या करना चाहिए। उसे एक उपाय सूझा कि राजा की आयु पूछकर जो आयु में छोटा होगा, उसका रथ लौटवाकर, जो बड़ा होगा उसके रथ के लिए जगह करवाऊंगा। ऐसा निश्चय कर दूसरे सारथी से कोशल राजा की आयु पूछी। मिलान करने पर दोनों राजा समान आयु वाले निकले। तब राज्य-विस्तार, सेना, धन, यश, जाति, गोत्र, कुल-भेद आदि के बारे में पूछा। दोनों तीन सौ योजन राज्य के स्वामी निकले। दोनों की सेना, धन, यश, जाति, गोत्र, तथा कुल-भेद सब एक सदृश था। तब सोचा जो अधिक

शीलवान होगा उसे जगह दी जायगी। उसने पूछा—"सारथि! तुम्हारे राजा का सदाचार कैसा है?"

उसने अपने राजा के गुणों को बताते हुए कहा—

"मल्लिक कठोर के साथ कठोरता का व्यवहार करता है, कोमल के साथ कोमलता का। भले आदमी को भलाई से जीतता है, बुरे को बुराई से। सारथि! यह राजा ऐसा है। तू मार्ग छोड़ दे।"

तब बाराणसी राजा के सारथी ने पूछा"—भो! क्या तुमने अपने राजा के गुण कह लिए?"

"हाँ।"

"यदि यही गुण हैं तो अवगुण कैसे होते हैं?"

"अच्छा यह अवगुण ही सही। तुम्हारे राजा में कौन से गुण हैं?"

"अच्छा तो सुनो—"

क्रोधी को अक्रोध से जीतता है। बुरे को भलाई से। कंजूस को दान से। झूठे को सत्य से। यह राजा ऐसा है, इसलिए सारथी तू मार्ग छोड़ दे।"

ऐसा कहने पर मल्लिक राजा तथा उसके सारथी ने उतरकर, घोड़ों को खोला, रथ को हटाया और बाराणसी के राजा को मार्ग दिया।

: २९ :

गिद्ध

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व गृध्र-पर्वत पर गृध्र होकर पैदा हुए थे। बड़े होने पर माता-पिता का पालन-पोषण करने लगे।

२९. गिज्झ-जातक। २.२.१६४

एक बार बड़ा आंधी-पानी आया। गिद्ध आंधी-पानी न सह सकने के कारण शीत से डरकर बाराणसी में एक चहारदीवारी के पास, खाई के निकट सर्दी से कांपते हुए बैठे। बाराणसी-सेठ नगर से निकलकर नहाने जा रहा था। उसने उन गिद्धों को कष्ट में देखकर एक ऐसी जगह पहुंचवा दिया जहां वर्षा नहीं हो रही थी। वहां आग जलवाई। मुर्दा-गौ फेंकने के स्थान से गो-मांस मंगवाकर उन्हें दिलवाया। उनकी रक्षा का प्रबन्ध किया।

आंधी-पानी के बन्द होने पर गिद्ध स्वस्थ शरीर हो पर्वत को ही लौट गए। उन्होंने वहां इकट्ठे होकर इस प्रकार मन्त्रणा की—"बाराणसी-सेठ ने हमारा उपकार किया। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए अब से तुम में से जिस किसी को जो वस्त्र या आभरण मिले, उसे चाहिए कि वह बाराणसी-सेठ के घर में खुले आंगन में गिरा दे।"

उस समय से गिद्ध, आदमियों के धूप में सूखने के लिये डाले हुए वस्त्र उठाकर ले जाते और बाराणसी-सेठ के खुले आंगन में गिरा देते। सेठ को जब यह मालूम हुआ कि यह वस्त्राभूषण गिद्ध ला-लाकर डालते हैं, तो उसने उन्हें एक ओर रखवाया।

राजा के पास खबर पहुँची कि गिद्ध नगर उजाड़ रहे हैं। उसने हुक्म दिया कि किसी एक गिद्ध को पकड़ लाओ। सब माल मंगवा लूंगा। राजा ने जहां-तहां जाल और पाश फैलवाए। माता-पिता का पोषण करने वाला गिद्ध जाल में फंस गया। उसे पकड़कर राजा के पास ले चले।

बाराणसी-सेठ ने राजा की सेवा में जाते समय मनुष्यों को गिद्ध पकड़ कर ले जाते देखा। यह विचारकर कि ये लोग उस गिद्ध को कष्ट न दें, वह उनके साथ हो लिया। गिद्ध को राजा के पास ले गये। राजा ने पूछा—

"तुम नगर पर डाका डालकर वस्त्र आदि ले जाते हो?"

"महाराज! हां।"

"वह किसे देते हो?"

"बाराणसी-सेठ को।"

"क्यों?"

"हमें उसने जीवन-दान दिया था। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए, इसलिए।"

राजा ने पूछा कि गिद्ध तो सौ योजन की दूरी से लाश को देख लेते हैं, तूने अपने लिए फैलाए फंदे को क्यों नहीं देखा?"

गिद्ध ने जवाब दिया—

"जब विनाश का समय आता है, जब जीवन पर संकट आता है, तब प्राणी पास में पड़े हुए जाल और फंदे को भी नहीं देखता।"

गिद्ध की बात सुन राजा ने सेठ से पूछा—

"महासेठ! क्या यह सच है? क्या गिद्ध तुम्हारे घर वस्त्र आदि लाये हैं?"

"देव! सच है।"

"वह कहां हैं?"

"देव मैंने सब पृथक रखे हैं। जो जिसका है वह उसे दूंगा। इस गिद्ध को छोड़ दें।"

गिद्ध को छुड़वाकर सेठ ने जो जिसका था वह उसे दिलवाया।

: ३० :

चाण्डाल का जूठा भोजन

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ने चाण्डाल का जन्म लिया।

एक बार वह किसी काम से कहीं जा रहे थे। रास्ते में खाने के लिए चावल और भात की पोटली हाथ में थी। उसी समय वाराणसी में एक माणवक था। नाम था सतधम्म। उदीच्च गोत्र के महाधनवान कुल में पैदा हुआ था। वह भी किसी काम से निकल पड़ा। किन्तु उसने रास्ते में खाने

३०. सतधम्म जातक। २. ३. १७९

के लिए चावल या भात की पोटली नहीं ली।

महामार्ग में उन दोनों की भेंट हुई। माणवक ने बोधिसत्व से पूछा—"तेरा जात क्या है?" उसने कहा—"मैं चाण्डाल हूं।" और माणवक से पूछा—"तेरी जात क्या है?" "मैं उदीच्य ब्राह्मण हूं।" "अच्छा तो चलें" कह दोनों ने रास्ता पकड़ा।

प्रातःकाल का भोजन करने का समय आया, एक ऐसी जगह जहां पानी की सुविधा थी, बैठकर हाथ धोया। भात की पोटली खोलकर माणवक से पूछा—'भात खाओगे?"

"रे चाण्डाल! मुझे भात की जरूरत नहीं है।"

चाण्डाल बोला—"अच्छा।" फिर भात की पोटली को जूठा किये बिना उसने अपनी आवश्यकता भर भात एक दूसरे पत्तल में डाल लिया। पोटली को बांधकर एक ओर रख दिया। भोजन करके पानी पिया, हाथ-पैर धोया, चावल और शेष भात लेकर माणवक से कहा—"माणवक चलें।" दोनों ने रास्ता पकड़ा।

वे सारा दिन चलकर शाम को पानी की सुविधा की एक जगह पहुँचे। नहाकर बाहर निकले।

बोधिसत्व ने आराम की जगह बैठ कर भात की पोटली खोली। इस बार माणवक को बिना पूछे ही खाना आरम्भ किया। दिन भर चलने से माणवक थक गया था। उसे खूब भूख लगी थी। वह बोधिसत्व की ओर देखने लगा—"यदि यह भात देगा तो खा लूंगा।" लेकिन बोधिसत्व बिना कुछ बोले खाते रहे।

माणवक ने सोचा—"यह चाण्डाल बिना मुझे पूछे ही सब खाये जा रहा है। इससे जबरदस्ती छीनकर भी, ऊपर का जूठा भात हटा कर शेष खाना चाहिए।" उसने वैसा कर, जूठा भात खाया।

भात खाने के ही समय माणवक के मन में बड़े जोर का पश्चात्ताप पैदा हुआ। वह सोचने लगा— "मैंने अपनी जाति, गोत्र तथा प्रदेश के योग्य कार्य नहीं किया। मैंने चाण्डाल का जूठा भात खा लिया।" उसी

समय उसके मुंह से रक्त सहित भात बाहर आया।

इस शोक से शोकाकुल हो वह रोने लगा—

"वह थोड़ा-सा था। जूठा था और वह भी उसने कठिनाई से दिया। ब्राह्मण जाति का होकर मैंने वह खाया। जो खाया सो भी निकल गया।"

इस प्रकार रो-पीट कर 'मैंने ऐसा अनुचित काम किया, अब जीकर क्या करूंगा' सोच माणवक जंगल में चला गया। वहां सबसे छिपे रहकर अनाथ-मरण मरा।

: ३१ :

राजा दधिवाहन

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय काशी-राष्ट्र में चार ब्राह्मण भाई ऋषियों की प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए। वे हिमवन्त प्रदेश में पर्णशालाएं बनवा कर रहने लगे।

कुछ दिनों बाद ज्येष्ठ भाई मरकर शक्र देवता हुआ। वह बीच-बीच में सातवें-आठवें दिन भाइयों की सेवा में आता था। एक दिन उसने ज्येष्ठ तपस्वी को प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—"भन्ते! आपको किस बात की जरूरत है?"

पाण्डु रोग से पीड़ित तपस्वी ने कहा—"मुझे आग की जरूरत है।" उसने उसे छुरी-कुल्हाड़ी दी। यह छुरी-कुल्हाड़ी ऐसी थी कि जैसा दस्ता डाला जाता, उसके अनुसार छुरी भी बन जाती; कुल्हाड़ी भी बन जाती। तपस्वी ने पूछा—"मेरे लिए लकड़ियां कौन लायगा?"

शक्र ने कहा—"भन्ते! जब आपको लकड़ी की जरूरत हो तो इस कुल्हाड़ी को हाथ से रगड़ कर कहें; जाओ मेरे लिए लकड़ियां लाकर आग बना दो। यह लकड़ियां लाकर आग बना देगी।"

३१. दधिवाहन जातक। २.४.१८६

उसे छुरी-कुल्हाड़ी देकर दूसरे भाई से जाकर पूछा—"भन्ते ! आपको क्या चाहिए ?"

"मुझे हाथियों के कारण दुःख होता है। उन्हें भगा दें।"

शक्र ने उसे एक ढोल लाकर दिया और कहा कि इस ओर बजाने से तुम्हारे शत्रु भाग जायंगे और इस ओर बजाने से वे मैत्री-भाव-युक्त हो कर चारों प्रकार की सेना-सहित तुम्हारे पास आ जायंगे।

छोटे भाई से जाकर पूछा—"भन्ते ! आपको क्या चाहिए ?" उसकी पाण्डुरोग की प्रकृति थी। इसलिए उसने दही मांगा। शक्र ने उसे एक दही का घड़ा दिया और कहा—"यदि आपकी कभी राज्य की इच्छा हो तो इसे उलटिए। यह महानदी बहाकर, बाढ़ लाकर आपको राज्य भी लेकर दे सकेगा।"

उस समय से छुरी-कुल्हाड़ी बड़े भाई के लिए आग बना देती। दूसरा जब ढोल बजाता तो हाथी भाग जाते। छोटा दही खाता।

उसी समय किसी उजड़े हुए गांव की जगह पर एक सूअर घूम रहा था। उसने वहां एक दिव्य मणिखण्ड देखा। उसे मुंह से उठा लिया। उसके प्रताप से वह आकाश में ऊंचे उड़ा। वहांसे उड़कर वह समुद्र के बीच में एक द्वीप पर पहुंचा। उसकी इच्छा हुई वहां रहने की। इस-लिए उतरकर एक गूलर के वृक्ष के नीचे सुख-पूर्वक रहने लगा। एक दिन उस मणिखण्ड को अपने सामने रखकर वृक्ष के नीचे सो गया।

काशी राष्ट्र में एक आदमी को उसके माता-पिता ने निकम्मा समझकर घर से निकाल दिया था। वह एक पत्तन गांव पर पहुंचा। वहां उसने नाविकों के पास नौकरी की। नौका पर चढ़कर जा रहा था कि समुद्र के बीच नौका टूट गई। वह एक लकड़ी के तख्ते पर बैठा उस द्वीप में पहुंचा। वहां फल-मूल खोजते हुए उस सूअर को सोते देखा। आहिस्ता से समीप जाकर मणिखण्ड उठा लिया। उसके प्रताप से आकाश में उड़कर गूलर के वृक्ष पर जा बैठा। सोचने लगा—"यह सूअर इसीके प्रताप से आकाश में घूमता हुआ यहां रहता है। पहले इसे ही मारकर मांस खा लेकर

चाहिए, तब जाना चाहिए।"

उसने एक डण्डा तोड़कर उसके सिर पर गिराया। सूअर जागा। कांपते शरीर से मणि को खोजता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा। वृक्ष पर बैठा हुआ आदमी हँसा। सूअर ने उसे देखा तो वृक्ष से सिर दे मारा और वहीं मर गया।

उस आदमी ने उतरकर आग सुलगाई और उसका मांस पकाकर खाया। फिर आकाश में उड़कर हिमालय की ओर चला। हिमालय में स्थित उस ज्येष्ठ तपस्वी के आश्रम को देखकर उतरा। दो-तीन दिन रहकर तपस्वी की सेवा की। वहां उसने छुरी-कुल्हाड़ी की महिमा देखी। उसने उसे लेना चाहा। तपस्वी को मणिखण्ड की महिमा बताकर कहा—"भन्ते ! यह मणिखण्ड लेकर मुझे यह छुरी-कुल्हाड़ी दें।" आकाश में घूमने की इच्छा से उस तपस्वी ने मणिखण्ड लेकर छुरी-कुल्हाड़ी दे दी।

उस आदमी ने थोड़ी दूर जाकर छुरी-कुल्हाड़ी को हाथ से रगड़कर कहा—"छुरी-कुल्हाड़ी ! तपस्वी के सिर को काटकर मेरा मणिखण्ड ले आ।" छुरी-कुल्हाड़ी ने तपस्वी का सिर काटकर मणिखण्ड ला दिया।

छुरी-कुल्हाड़ी को एक जगह छिपाकर वह मझले तपस्वी के पास पहुंचा। कुछ दिन रहकर ढोल की महिमा देखी। मणिखण्ड देकर उससे भेरी ली। पूर्वोक्त प्रकार से उसका भी सिर कटवाकर छोटे तपस्वी के पास पहुंचा। दही की महिमा देखकर पूर्वोक्त प्रकार से उसका भी सिर कटवाकर दही ले लिया। मणिखण्ड, छुरी-कुल्हाड़ी, ढोल तथा दही का घड़ा लेकर आकाश-मार्ग से वाराणसी पहुँचा। वाराणसी-राजा के पास एक पत्र भेजा—युद्ध करें अथवा राज्य दें।

सन्देश सुनते ही विद्रोही को पकड़ने के लिए राजा निकल पड़ा। आदमी ने ढोल के एक तल को बजाया। चारों प्रकार की सेना पहुँच गई। इधर उसने देखा कि राजा ने अपनी सेना पंक्ति-बद्ध कर ली है। दही के घड़े को छोड़ा। बड़ी भारी नदी बह निकली। जन-समूह दही में डूब गया और निकल न सका।

छुरी-कुल्हाड़ी पर हाथ फेरकर आज्ञा दी—"जा, राजा का सिर ले आ।" छुरी-कुल्हाड़ी ने राजा का सिर लाकर उसके पैरों पर रख दिया। एक भी आदमी हथियार न उठा सका।

उसने बड़ी सेना के साथ नगर में प्रवेश किया। अभिषेक करवाकर दधिवाहन नाम से धर्म-पूर्वक राज्य करने लगा।

एक दिन वह महानदी में जाल की टोकरी फेंककर खेल रहा था। कण्णमुण्ड सरोवर से देवताओं के उपयोग में आनेवाला एक पका आम आकर जाल में लगा। जाल उठानेवालों ने लाकर राजा को दिया। वह घड़े के समान बड़ा गोलाकार सुनहरे रंग का था। राजा ने वनचरों से पूछा—"यह किसका फल है?"

"आम्र-फल।"

राजा ने उसे खाकर गुठली उद्यान में लगवाई। उसे दूध-पानी से सिंचवाया। उसने बढ़कर तीसरे वर्ष फल दिया। आम के पेड़ का बहुत सत्कार होने लगा। दूध-पानी से सींचते। सुगन्धित द्रव्यों से पंचांगुली-चिह्न लगाते। मालाओं के जाल फेंकते। सुगन्धित तेल के दीपक जलाते। वह कीमती कपड़े की कनातों से घिरा रहता। इसके फल मधुर तथा सुनहरी रंग के होते।

जब दधिवाहन राजा दूसरे राजाओं के पास आम के फल भेजता तो अंकुर निकलने की जगह को कांटे से बींध देता। वे आम खाकर गुठली रोपते। पेड़ न लगता। जब उनको इसका कारण मालूम हुआ तो वे बड़े क्रुद्ध हुए।

एक राजा ने अपने माली को बुलाकर पूछा कि क्या वह दधिवाहन राजा के आमों के रस को नष्ट कर उन्हें कड़ुवा बना सकेगा? उसने कहा—"देव! हां।" "तो जा" कहकर एक हजार देकर उसे विदा किया।

उसने वाराणसी पहुँचकर राजा के पास खबर भिजवाई कि एक माली आया है। राजा ने उसे बुलाकर कहा—"तू माली है?" उसने प्रणाम कर कहा—"देव! हां।" और अपनी योग्यता का बखान किया। राजा

ने आज्ञा दी—"जा, हमारे माली के साथ रह।"

उस दिन से वह दो जने बाग को संभालने लगे। नए माली ने अकाल फूल फुलाकर, अकाल फल लगाकर उद्यान को रमणीय बना दिया।

राजा ने उस पर प्रसन्न होकर पुराने माली को निकाल दिया। उसने उद्यान को अपने हाथ में जानकर आम के वृक्ष के चारों ओर नीम और कड़वी लताएं लगा दीं। क्रम से नीम के वृक्ष बढे। जड़ों से जड़ें तथा शाखाओं से शाखाएं इकट्ठी हो एक दूसरे में मिल गईं। उनके अमधुर रस के संसर्ग से वैसा मधुर फलवाला आम कड़ुवा हो गया। यह देखकर कि आम के फल कड़ुवे हो गए, माली भाग गया। दधिवाहन ने उद्यान में जाकर आम खाया। मुंह में डाला हुआ आम उसे नीम की तरह कसैला लगा। उसे न सह सकने के कारण खखारकर थूक दिया।

उस समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक थे। राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर पूछा—

"पण्डित! इस वृक्ष की जो सेवा पहले होती थी, वह अब भी होती है। ऐसा होने पर भी इसका फल कड़ुवा हो गया। क्या कारण है?"

बोधिसत्व ने कहा—

"हे दधिवाहन! तेरा आम्र-वृक्ष नीम से घिरा है। उसकी जड़ जड़ से तथा शाखाएं शाखाओं से सटी हैं। कड़ुवे के साथ होने से आम का फल कड़ुवा हो गया।"

राजा ने उसकी बात सुनकर सभी नीम तथा कड़ुवी लताओं की जड़ें उखड़वा दीं। चारों ओर से अमधुर बालू हटवाकर मधुर बालू डलवाया। दुग्ध-जल, शक्कर-जल तथा सुगन्धि-जल से आम की सेवा कराई। मधुर रस के संसर्ग से वह फिर मधुर हो गया।

राजा ने पहले माली को उद्यान सौंप दिया।

: ३२ :

पतिव्रता नारी

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। नामकरण के दिन पदुम-कुमार नाम रखा गया। उसके और छः भाई थे। यह सातों जने क्रम से बड़े हो, विवाह कर राजा के मित्रों की तरह रहने लगे।

एक दिन राजा ने राजाङ्गण में खड़े होकर उन्हें बड़े ठाट-बाट से राजा की सेवा में आते देखा। सोचा—"ये मुझे मारकर राज्य भी ले सकते हैं।" इस शंका से शंकित हो उसने उन्हें बुलाकर कहा—"तात! तुम इस नगर में नहीं रह सकते। दूसरी जगह जाओ। मेरे मरने पर आकर कुल-प्राप्त राज्य ग्रहण करना।"

वे पिता का कहना मान रोते-पीटते घर आए। अपनी-अपनी स्त्रियों को ले नगर से निकल पड़े। रास्ते में एक कान्तार आया। वहां खाना-पीना न मिला। भूख न सह सकने के कारण उन्होंने सोचा—"जीते रहेंगे तो स्त्रियां मिलेंगी।" उन्होंने सबसे छोटे भाई की स्त्री को मारकर उसके तेरह टुकड़े करके मांस खाया।

बोधिसत्व ने अपने और भार्या के लिए मिले दो हिस्सों में से एक रख छोड़ा, एक को दोनों ने खाया। इस प्रकार छः दिनों में छः स्त्रियों का मांस खाया गया, सातवें दिन बोधिसत्व की भार्या को मारने लगे। बोधिसत्व ने उन्हें छः टुकड़े देकर कहा—"आज यह खाओ। कल देखेंगे।"

जिस समय ये मांस खाकर सो रहे थे, बोधिसत्व अपनी भार्या को लेकर निकल भागे। उसने थोड़ी दूर चलकर कहा—"स्वामी! चल नहीं सकती हूँ।" बोधिसत्व उसे कन्धे पर लेकर सूर्योदय के समय कान्तार से निकले। उसने कहा—"स्वामी! प्यास लगी है।"

३२. चुल्लपदुम जातक। २. ४. १९३

"भद्रे ! पानी नहीं है।"

लेकिन बार-बार मांगने पर बोधिसत्व ने अपनी दाहिनी जांघ में प्रहार कर कहा—"भद्रे ! पानी नहीं है। यह मेरी जांघ का लहू पी लो।" उसने वैसा ही किया।

वे क्रम से महानदी पर आए। पानी पी, स्नान कर, फल-मूल खाकर विश्राम किया। फिर गंगा की मोड़ की जगह पर आश्रम बनाकर रहने लगे।

गंगा के ऊपर के हिस्से में किसी राज्यापराधी चोर को हाथ-पांव तथा नाक काटकर बोरे में बन्द कर गंगा में बहा दिया गया था। वह बहुत चिल्लाता हुआ उस जगह आ निकला। बोधिसत्व ने उसकी करुणापूर्ण रोने-पीटने की आवाज सुनकर सोचा—"मेरे रहते कोई दुःख-प्राप्त प्राणी नष्ट न हो।" उसे आश्रम पर लाकर वस्त्र से जखमों को धोकर चिकित्सा की। उसकी भार्या घृणा से उस पर थूकती हुई फिरती थी—इस प्रकार के लुञ्जे को गंगा से लाकर उसकी सेवा करते हैं !

जखम ठीक होने पर उसे और अपनी भार्या को आश्रम पर छोड़कर बोधिसत्व जंगल से फल-मूल लाकर उनका पालन करने लगे।

उनके इस प्रकार रहते हुए वह स्त्री उस लुञ्जे से आकृष्ट हो गई। उसने उसके साथ अनाचार किया। उसने सोचा—"किसी उपाय से बोधिसत्व को मार डालना चाहिए।" बोली—"स्वामी ! मैंने तुम्हारे कन्धे पर बैठे हुए कान्तार से निकलते समय इस पर्वत को देखते हुए मिन्नत मानी थी—"हे पर्वत-निवासी देवता ! यदि मैं और मेरे स्वामी सकुशल निकल जायंगे तो मैं तुम्हारी बलि चढ़ाऊंगी। सो वह देवता, जिसकी मिन्नत मानी थी, तंग करता है। उसकी बलि दें।"

बोधिसत्व उसकी माया नहीं जानते थे। उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया और बलि-कर्म तैयार कर उससे बलि-पात्र उठवा पर्वत पर चढे।

उस स्त्री ने बोधिसत्व से कहा—"स्वामी ! देवता से भी बढ़कर तुम ही उत्तम देवता हो। इसलिए पहले तुम्हें ही वन-पुष्पों से पूज, प्रदक्षिणा कर बन्दना करूंगी। पीछे देवता को बलि दूंगी।" उसने बोधिसत्व को

प्रपात की ओर कर वन-पुष्पों से पूजा की। फिर प्रदक्षिणा करते हुए पीठ में धक्का दे, प्रपात से गिरा दिया। वह 'शत्रु की पीठ देख ली' सोच सन्तुष्ट हुई। पर्वत से उतरकर लुञ्जे के पास गई। बोधिसत्व पर्वत से गिरते हुए, प्रपात के किनारे, पत्तों से ढके कण्टक-रहित गुल्म में एक गूलर के वृक्ष से जा लगे। पर्वत से नीचे उतरने में असमर्थ थे। गूलर खाकर शाखाओं के बीच में बैठे रहे।

एक गोह उस गूलर पर चढ़कर फल खाया करता था। उस दिन बोधिसत्व को देखकर भाग गया। अगले दिन आया और एक ओर से फल खाकर चला गया। इस प्रकार बार-बार आने से जब वह बोधिसत्व का विश्वासी हो गया तो उसने पूछा—"तू इस जगह कैसे आया ?" "इस कारण से" बताने पर उसने कहा—"तो मत डर।" उसने बोधिसत्व को अपनी पीठ पर लिटा, उतारकर जंगल पार कराया। महामार्ग पर ले जा कर कहा—"इस मार्ग से जा।"

बोधिसत्व एक ग्राम में जाकर रहने लगे। वहां रहते हुए पिता के मरने का समाचार मिला। बाराणसी पहुंचकर पदुमराजा नाम से राज्य करने लगे।

वह पापी स्त्री लुञ्जे को कन्धे पर बिठा जंगल से निकलकर बस्तियों में भिक्षा मांगकर उस लुञ्जे को पोसती थी। उससे यदि कोई पूछता कि यह तेरा क्या लगता है तो वह उत्तर देती—"मैं इसके मामा की लड़की हूँ और यह मेरी बुआ का लड़का। मैं इसीको दी गई, सो मैं अपने स्वामी को—जो इस तरह दण्डित भी किया गया है—उठाए लिये फिरती हूँ। भीख मांगकर पालती हूँ।"

मनुष्यों ने समझा, यह पतिव्रता है। उसके बाद और भी यवागु-भात देने लगे। दूसरों ने कहा—"तू इस तरह मत घूम। पदुमराजा बाराणसी में राज्य करता है। सारे जम्बू द्वीप को उद्वेलित कर दान देता है। वह तुझे देखकर प्रसन्न होगा। बहुत धन देगा।"

उन्होंने उसे एक बेंत की टोकरी दी और कहा कि अपने स्वामी को

इसमें बिठाकर ले जा। वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को बेंत की टोकरी में बिठाकर बाराणसी पहुँची। वहाँ दानशालाओं में खाती हुई घूमने लगी।

बोधिसत्व अलंकृत हाथी पर बैठकर दानशाला में जाते। वहां आठ-दस को अपने हाथ से दान देते। वह स्त्री उस लुञ्जे को टोकरी में सिर पर उठाए राजा के रास्ते में खड़ी हुई। राजा ने देखकर पूछा—"यह क्या है?"

"देव! एक पतिव्रता है।"

राजा ने उसे बुलाकर, पहचानकर, लुञ्जे को टोकरी से निकलवाया।

"यह तेरा क्या लगता है?"

"देव! यह मेरी बुआ का लड़का है। कुलवालों ने मुझे इसे सौंपा है। यह मेरा स्वामी है।"

लोग उनके बीच के भेद को न जानते थे। वे उसकी प्रशंसा करने लगे—"ओह! पतिदेवता!"

राजा ने फिर उससे पूछा—"तुझे कुलवालों ने इसे सौंपा है? यह तेरा स्वामी है?"

उसने राजा को न पहचानते हुए वीर बनकर कहा—"देव! हां।"

तब राजा ने पूछा—"क्या यह बाराणसी-राजा का पुत्र है? क्या तू अमुक राजा की अमुक नाम की लड़की और पदुमकुमार की भार्या नहीं है? मेरी जांघ का लहू पीकर इस लुञ्जे के प्रति आसक्त हो मुझे प्रपात मे गिरा दिया। वही तू, अब अपने सिर पर मृत्यु लेकर मुझे मरा समझ यहां आई है? मैं जीता हूं।"

"अमात्यो! क्या मैंने तुम लोगों के पूछने पर यह नहीं कहा था कि मेरे छः छोटे भाइयों ने छः स्त्रियों को मारकर मांस खाया। लेकिन मैंने अपनी स्त्री को सकुशल गंगा-किनारे लाकर एक आश्रम में रहते हुए एक दण्ड-प्राप्त लुञ्जे को पानी से निकाल सेवा की। उस स्त्री ने उस आदमी के प्रति आसक्त हो मुझे पर्वत से गिरा दिया। यह वही दोनों हैं। जाओ,

इस पराई स्त्री का सेवन करनेवाले को मूसल से मार डालो। इस पापी पतिव्रता का नाक-कान काट डालो।"

बोधिसत्व ने क्रोध न संभाल सकने के कारण ऐसे दण्ड की आज्ञा दी थी; लेकिन वैसा करवाया नहीं। क्रोध को कम करके उसने टोकरी को उसके सिर पर ऐसे कसकर बंधवाया कि वह उतार न सके। उस कुब्जे को उसमें डलवाकर अपने राज्य से निकलवा दिया।

: ३३ :
पत्नी-प्रेम

पूर्व काल में काशी राष्ट्र के पोतली नाम के नगर में अस्सक नामक राजा राज्य करता था। उसकी उब्बरी नाम की पटरानी थी। वह प्रिया थी, मनोज्ञ थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी और थी मानुषिक और दिव्य वर्णों के बीच के वर्ण की। वह मर गई। उसकी मृत्यु से राजा शोकाभिभूत हुआ। उसे दुःख हुआ और वह दौर्मनस्य को प्राप्त हुआ। उसने रानी का शरीर द्रोणी में, तेल की कढ़ाई में रखवा उसे अपनी चारपाई के नीचे रखवाया। स्वयं बिना कुछ खाये-पिये, रोता-पीटता, चारपाई पर पड़ा रहा।

माता-पिता, नातेदार, मित्र, अमात्य, ब्राह्मण, गृहपति, सभी समझाते —"महाराज! संस्कार अनित्य हैं.......।" आदि। तो भी वे न समझा सके। उसके रोते-पीटते सात दिन बीत गये।

उस समय बोधिसत्व पांच अभिज्ञा तथा आठ समापत्तियां प्राप्त करके तपस्वी होकर हिमवन्त प्रदेश में विचरते थे। उन्होंने दिव्य चक्षु से जम्बू-द्वीप को देखते हुए राजा को इस प्रकार रोते देखा। "मुझे इसकी सहायता करनी चाहिए" सोच ऋद्धि-बल से आकाश में उड़कर राजा के बाग में उतरे। शिलापट पर सोने की प्रतिमा की तरह बैठे।

३३. अस्सक जातक। २.६.२०७

पोतली नगरवासी एक ब्राह्मण माणवक उद्यान में गया। बोधिसत्व को देखकर प्रणाम किया। बोधिसत्व ने उससे बातचीत कर पूछा—"माणवक! क्या राजा धार्मिक है?"

"भन्ते! हां, राजा धार्मिक है। लेकिन उसकी भार्या मर गई है। वह उसके शरीर को द्रोणी में रखवाकर रोता-पीटता लेटा है। आज उसे सातवां दिन हो गया। आप राजा को इस प्रकार के दुःख से क्यों नहीं मुक्त करते? आप जैसे शीलवान् के रहते क्या यह ठीक है कि राजा इस प्रकार का दुःख अनुभव करे?"

"माणवक! मैं राजा को नहीं जानता। लेकिन यदि वह आकर मुझसे पूछे तो मैं उसकी भार्या के जन्म-ग्रहण करने का स्थान बताकर, राजा की उससे बातचीत करवाऊं।"

"भन्ते! तो मैं जबतक राजा को लेकर यहां आऊं तबतक आप यहीं बैठें।"

माणवक बोधिसत्व से वचन ले राजा के पास गया। सारी बात सुनाकर कहा—"उस दिव्य चक्षुधारी के पास चलना चाहिए।"

राजा यह सोचकर सन्तुष्ट हो रथ पर चढ़कर वहां गया कि उब्बरी को देख सकेगा। बोधिसत्व को प्रणाम कर उसने पूछा—"क्या तुम सचमुच देवी के जन्म-ग्रहण करने की जगह जानते हो?"

"महाराज! हां।"

"वह कहां पैदा हुई है?"

"महाराज! रूप में मत्त होने के कारण प्रमादवश उसने कोई अच्छा काम नहीं किया। इसलिए वह इसी उद्यान में गोबर के कीड़े की योनि में पैदा हुई।"

"मैं विश्वास नहीं करता।"

"तो तुझे दिखाकर उससे वार्तालाप करवाता हूँ।"

"अच्छा, करवाएं।"

बोधिसत्व ने अपने प्रताप से ऐसा किया कि दो गोबर-पिण्ड लुढ़कते

हुए राजा के सामने आए। बोधिसत्व ने उसे दिखाते हुए कहा—"महाराज !" यह तेरी उब्बरीदेवी तुझे छोड़ गोबर के कीड़े के पीछे-पीछे आती है।"

"भन्ते ! मैं विश्वास नहीं करता कि उब्बरी गोबर के कीड़े की योनि में जन्म ग्रहण करेगी।"

"महाराज ! तो सुनें।" बोधिसत्व ने अपने प्रताप से बुलाते हुए पूछा—"उब्बरी !" उसने मानुषी वाणी में कहा—"भन्ते ! क्या ?"

"पूर्व जन्म में तेरा क्या नाम था ?"

"भन्ते ! मैं अस्सक राजा की उब्बरी नाम की पटरानी थी।"

"इस समय तुझे अस्सक राजा प्रिय है या गोबर का कीड़ा ?"

"भन्ते ! वह मेरा पूर्व जन्म था। उस समय मैं उसके साथ इस बाग में रूप, शब्द, गन्ध, रस तथा स्पर्श का आनन्द लेती हुई विचरती थी। लेकिन अब जब से मेरा नया जन्म हुआ है, वह मेरा क्या लगता है ? उसकी अपेक्षा यह कीड़ा ही मेरा अधिक प्रिय है। मैं अब अस्सक राजा को मारकर उसकी गर्दन के खून से अपने स्वामी गोबर के कीड़े के पैर धो सकती हूं।"

इसे सुन अस्सक राजा को पश्चात्ताप हुआ। उसने लाश बाहर निकलवा दी। फिर दूसरी पटरानी बना धर्म से राज्य करने लगा।

: ३४ :

बन्दर और मगरमच्छ

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में बन्दर की योनि में पैदा हुए। वह हाथी-सदृश बल वाले, शक्ति-सम्पन्न, महान शरीरधारी, अति सुन्दर थे। गंगा के

३४. संसुमार जातक। २.६.२०८

मोड़ पर जंगल में रहते थे।

उस समय गंगा में एक मगरमच्छ रहता था। उसकी भार्या ने बोधिसत्व को देखा। उसके मन में उसका मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने मगरमच्छ से कहा—"स्वामी! इस कपिराज का कलेजा खाना चाहती हूं।"

"भद्रे! हम जलचर, वह स्थलचर; क्या हम उसे पकड़ सकेंगे?"

"जिस किसी भी तरह हो, पकड़ो। यदि नहीं मिला तो मैं मर जाऊंगी।"

"तो डर मत, एक उपाय है। मैं तुझे उसका कलेजा खिलाऊंगा।"

उसे आश्वासन देकर मगरमच्छ, जिस समय बोधिसत्व गंगा का पानी पीकर गंगा-तट पर बैठा था, उसके पास गया और बोला—"वानर-राज! इन अस्वादिष्ट फलों को खाते हुए तू अभ्यस्त स्थान में ही चरता है। गंगा पार आम, कटहल के मधुर फल-वृक्षों की सीमा नहीं। क्या तुझे गंगा पार जाकर फल-मूल नहीं खाने चाहिएं?"

"मगरराज! गंगा में पानी बहुत है। वह विस्तृत है। मैं उधर कैसे जाऊं?"

"यदि चले तो मैं तुझे अपनी पीठ पर चढ़ाकर ले जाऊंगा।"

उसने उसका विश्वास कर "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। "तो आ, मेरी पीठ पर चढ़"—मगरमच्छ ने कहा। बन्दर उसकी पीठ पर चढ़ गया! थोड़ी दूर जा मगरमच्छ उसे डुबाने लगा।

"दोस्त यह क्या, मुझे पानी में डुबा रहा है?"

"मैं तुझे धर्म-भाव से नहीं ले जा रहा हूं। मेरी भार्या के मन में तेरे कलेजे के लिए दोहद उत्पन्न हुआ है। मैं उसे तेरा कलेजा खिलाना चाहता हूं।"

"दोस्त! तूने अच्छा किया, कह दिया। यदि कलेजा हमारे पेट में हो तो एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमते हुए चूर्ण-विचूर्ण हो जायं।"

"तो तुम कलेजा कहां रखते हो?"

उसने पास ही फलों से लदा हुआ एक गूलर का पेड़ दिखाकर कहा—

"देख, मेरा कलेजा इस गूलर के पेड़ पर लटकता है।"

"यदि मुझे कलेजा दे तो मैं तुझे नहीं मारूंगा।"

"तो आ, मुझे वहां ले चल।"

वह उसे लेकर वहां गया। बन्दर ने मगरमच्छ की पीठ पर से छलांग मारी। गूलर की शाखा पर बैठकर कहा—"सौम्य मगरमच्छ! वह जो तू नदी पार आम, जामुन और कटहल बताता है, मुझे वह नहीं चाहिएं। मुझे गूलर ही अच्छा है। तू जा।"

: ३५ :

ब्राह्मण की बैल-याचना

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व काशी-देश में एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जाकर विद्या सीखी। घर लौट कर देखा कि माता-पिता बहुत दरिद्र हैं। उसने संकल्प किया कि दुर्गति को प्राप्त माता-पिता की अवस्था सुधारूंगा। माता-पिता की आज्ञा लेकर बाराणसी पहुंच, राज्य की सेवा में रहने लगा। वह राजा का प्रिय हुआ। उसके मन को अच्छा लगनेवाला हुआ।

उसका बाप दो बैलों से खेती कर पेट पालता था। एक बैल मर गया। उसने बोधिसत्व से कहा—"तात! एक बैल मर गया। खेती नहीं होती। राजा से एक बैल माँग।"

"तात! राजा की सेवा में रहते थोड़े ही दिन हुए हैं। अभी बैल माँगना ठीक नहीं। आप ही मांगें।"

"तात! तू नहीं जानता कि मैं कितना लज्जाशील हूं! मैं दो-तीन जनों के सामने बोल नहीं सकता। यदि मैं राजा के सामने बैल माँगने जाऊंगा तो यह भी देकर आऊँगा।"

३५ सोमदत्त जातक। २. ७. २११

"तात ! जो होना है सो हो । मैं राजा से नहीं माँग सकता । लेकिन मैं आपको बोलने का अभ्यास करा दूँगा ।"

"तात ! अच्छा । मुझे अभ्यास करा ।"

बोधिसत्व उसे ऐसे श्मशान में ले गए, जहाँ बीरण घास के झुण्ड थे । वहाँ घास के पूले बाँधकर 'यह राजा है', 'यह उपराजा है', 'यह सेनापति है', आदि नाम रखकर पिता को दिखाकर कहा—"तात ! अब राजा के पास जाकर 'राजा की जय हो' कहें । तब यह गाथा कहकर बैल माँगें ।"

द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्तं कसामसे ।
तेसु एको मतो देव, दुतियं देहि खत्तिय ॥

(महाराज ! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी । देव ! उनमें से एक मर गया । हे क्षत्रिय ! दूसरा दें ।)

ब्राह्मण ने एक वर्ष में गाथा का अभ्यास कर बोधिसत्व से कहा—"तात सोमदत्त ! मुझे गाथा कहने का अभ्यास हो गया । अब मैं इसे चाहे जिस के सामने कह सकता हूँ । मुझे राजा के पास ले चल ।"

उसने कहा "तात ! अच्छा" और योग्य भेंट लिवा राजा के पास गया । ब्राह्मण ने "महाराज की जय हो" कहकर भेंट की । राजा ने पूछा—"सोमदत्त ! यह ब्राह्मण तेरा क्या लगता है ?"

"महाराज ! मेरा पिता है ।"

"किस मतलब से आया है ?"

उसी समय ब्राह्मण ने बैल माँगने के लिए याद की हुई गाथा कही—

द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्तं कसामसे ।
तेसु ऐको मतो देव दुतियं गण्ह खत्तिय ॥

(महाराज ! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी । देव ! उनमें से एक मर गया । हे क्षत्रिय ! दूसरा लें ।)

राजा ब्राह्मण से विमुख हो गया । उसके कहने का भाव जानकर मुसकराया और बोला—"सोमदत्त ! मालूम होता है, तुम्हारे घर में बहुत बैल हैं ।"

"महाराज ! आप देंगे तो हो जायंगे।"

राजा बोधिसत्व पर प्रसन्न हुआ। उसने ब्राह्मण को सोलह अलंकृत बैल और उसके रहने का गाँव ब्रह्मदान दिया तथा बहुत से धन के साथ विदा किया।

: ३६ :

कुटिल व्यापारी

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व अमात्य-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर राजा के न्याय-मन्त्री बने।

उस समय एक ग्राम-वासी तथा एक नगर-वासी, दो बनियों की आपस में मित्रता थी। ग्राम-वासी ने नगरवासी के पास पाँच सौ फाल रखे। उसने उन फालों को बेचकर दाम खरे कर लिये और जिस जगह फाल रखे थे, वहां मेंगनी फैला दीं। समय बीतने पर ग्रामवासी ने आकर कहा—"मेरे फाल दे।" कुटिल बनिये ने चूहे की मेंगनी दिखाकर कहा कि तेरे फालों को चूहे खा गए।

दूसरे ने कहा—"अच्छा, खाए सो खाए। जब चूहे खा गए तो अब क्या किया जा सकता है ?" थोड़ी देर बाद दूसरा जब नहाने जाने लगा तो पहले के पुत्र को साथ ले गया। उसने उसे अपने एक मित्र के घर में बैठा कर कहा कि इसे कहीं न जाने दें। स्वयं नहाकर कुटिल बनिये के घर गया।

उसने पूछा— "मेरा पुत्र कहां है ?"

"मैं तेरे पुत्र को बैठाकर पानी में डुबकी लगा रहा था कि इतने में एक चिड़िया आई और तेरे पुत्र को पंजों से पकड़कर आकाश में उड़ गई। मैंने हाथ पीटे, चिल्लाया, कोशिश की; लेकिन तब भी उसे न छुड़ा सका।"

"तू झूठ बोलता है। चिड़िया बच्चों को लेकर नहीं जा सकती।"

---

३६. कूट वाणिज जातक। २. ३. २१८

"मित्र ! कुछ भी हो, असम्भव होने पर भी मैं क्या करूं ? तेरे पुत्र को चिड़िया ही ले गई है ।"

"अरे मनुष्यघातक, दुष्ट, चोर ! अभी अदालत में जाकर निकलवाता हूं ।"

"जो तुझे अच्छा लगे, कर ।"

कुटिल व्यापारी ने अदालत में पहुँचकर बोधिसत्व से निवेदन किया—"स्वामी ! यह मेरे पुत्र को लेकर नहाने गया । लौटने पर मैंने पूछा कि मेरा पुत्र कहां है ? उस पर यह कहता है कि उसे चिड़िया ले गई । इस मुकद्दमे का फैसला करें ।"

बोधिसत्व ने दूसरे से पूछा—"क्या यह सच है ?"

"स्वामी ! मैं इसके लड़के को ले गया, यह सच है और चिड़िया उसे ले गई, यह भी सच है ।"

"क्या चिड़ियां बच्चों को ले जाती हैं ?"

"स्वामी ! मैं भी आपसे पूछना चाहता हूं कि चिड़ियां तो बच्चों को आकाश में लेकर नहीं उड़ सकतीं तो क्या चूहे लोहे के फाल खा सकते हैं ?"

"इसका क्या मतलब ?"

"स्वामी ! मैंने इसके घर में पांच सौ फाल रखे । यह कहता है कि तेरे फालों को चूहे खा गए और उनकी जगह मेंगनी दिखलाता है । स्वामी ! यदि चूहे फाल खाते हैं तो चिड़ियां भी बच्चे ले जाती हैं ।"

बोधिसत्व समझ गए कि इसने शठ के प्रति शठता का बर्ताव किया है । बोले—"तुम ठीक कहते हो । यदि चूहे फाल खा जायंगे तो चिड़िया बच्चे को क्यों नहीं ले जायगी ? अरे पुत्र-नष्ट ! जिसकी फाल खोई है, उसकी फाल दे यदि तू अपने बच्चे को चाहता है ।"

"स्वामी ! मैं इसकी फाल देता हूँ यदि यह मेरा पुत्र दे ।"

"स्वामी ! मैं देता हूँ यदि यह मेरे फाल दे ।"

इस प्रकार जिसका पुत्र खोया था, उसने पुत्र पाया । जिसकी फाल खोई थी, उसने फाल पाई ।

: ३७ :
मनुष्यों की करनी

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व हिमालय में वानर की योनि में पैदा हुए।

एक बार एक वनचर ने उस बन्दर को पकड़ा। उसने लाकर राजा को दिया। बन्दर चिरकाल तक राज-भवन में रहकर सभ्यता सीख गया। राजा उसके सभ्य व्यवहार से प्रसन्न हुआ। उसने वनचर को बुलाकर आज्ञा दी—"इस वानर को जहांसे पकड़ा है, वहीं छोड़ आओ।" उसने वैसा ही किया।

वानरों ने जब सुना बोधिसत्व आया है तो उसे देखने के लिए महान् शिला-तल पर इकट्ठे हुए। उन्होंने बोधिसत्व से कुशल-समाचार पूछा।

"मित्र! इतने दिन कहाँ रहे?"

"वाराणसी में राजभवन में।"

"कैसे छूटे?"

"राजा ने मुझे खेल करनेवाला बन्दर बनाया। उसने मेरे करतबों से प्रसन्न होकर मुझे छोड़ दिया।"

"आप मनुष्य लोगों का बरताव जानते हैं। हमें भी कहें। हम सुनना चाहते हैं।"

"मनुष्यों की करनी मुझसे मत पूछो।

"कहिये-कहिये। हम सुनना चाहते हैं।"

"मनुष्य चाहे क्षत्रिय हों, चाहे ब्राह्मण; सभी मेरा-मेरा करते हैं। वे मूर्ख श्रेष्ठ धर्म को भूलकर रात-दिन यही बातचीत करते रहते हैं—मेरी चाँदी, मेरा सोना।"

"घर में दो-दो जने रहते हैं। एक की मूंछ नहीं होती। उसके लम्बे स्तन होते हैं, वेणि होती है और कानों में छेद होते हैं। उसे बहुत धन से

३७. गरहित जातक । २.७.२१९

खरीदा जाता है। वह सब जनों को कष्ट देता है।"

यह सुन सभी बन्दरों ने दोनों हाथों से अपने कान जोर से बन्द कर लिये और कहा—"मत कहें, मत कहें। न सुनने योग्य बात हमने सुनी! इस स्थान पर हमने अनुचित बात सुनी, इसलिए इस स्थान को छोड़ देना चाहिए।" वे उस स्थान की निन्दा कर अन्यत्र चले गये। उस पाषाण-शिला का नाम निन्दित पाषाण-शिला हो गया।

: ३८ :
धम्मद्ध

पूर्व काल में बाराणसी में पाणिसपाणि नाम का राजा राज्य करता था। कालक नामका उसका सेनापति था। बोधिसत्व पुरोहित थे। नाम था धम्मध्वज। राजा के सिर को अलंकृत करनेवाले नाई का नाम था छत्तपाणि।

राजा धर्मपूर्वक राज्य करता था; किन्तु उसका सेनापति मुकद्दमों का फैसला करता हुआ रिश्वत खाता था। घूस-खोर घूस लेकर स्वामी को अस्वामी बना देता था।

एक दिन एक आदमी मुकद्दमे में हार गया। अदालत से निकलकर जिस समय रोता-पीटता बाहर जा रहा था, उसने बोधिसत्व को देखा। बोधिसत्व के पाँव पर गिरकर कहा—"स्वामी! तुम्हारे सदृश राज-पुरोहित के अर्थधर्मानुशासक होते हुए कालक सेनापति रिश्वत लेकर अस्वामी को स्वामी बना देता है।"

बोधिसत्व के हृदय में करुणा उत्पन्न हो गई। "आ, तेरे मुकद्दमे का फैसला करूंगा", कहते हुए उसे लेकर मुकद्दमे की जगह गये। जन-समूह इकट्ठा हो गया। बोधिसत्व ने उस फैसले को उलटते हुए, फिर स्वामी

३८. धम्मद्ध जातक। २.७.२२०

को ही स्वामी बना दिया। जन-समूह ने 'वाह-वाह' की। बड़ा शोर हुआ। राजा ने सुनकर पूछा—"यह कैसी आवाज है ?"

"देव ! धम्मध्वज पण्डित ने एक ऐसे मुकद्दमे का फैसला किया है, जिसका ठीक फैसला नहीं हुआ था। उसीमें यह 'वाह-वाह' हो रही है।"

राजा ने सन्तुष्ट हो बोधिसत्व को बुलाकर पूछा—"आचार्य ! तुमने मुकद्दमे का फैसला किया ?"

"हाँ महाराज ! कालक ने जिस मुकद्दमे का ठीक फैसला नहीं किया था, उसका फैसला किया।"

"अब से तुम ही मुकद्दमे का फैसला किया करो। मेरे कानोंको सुख मिलेगा। जनता की उन्नति होगी।"

❀ ❀ ❀

उसके बाद रिश्वत न मिलने के कारण कालक को हानि होने लगी। उसने राजा को भड़काया—"महाराज ! धम्मध्वज पण्डित आपका राज्य चाहता है।"

"ऐसा मत कहो।"

"देव ! यदि विश्वास नहीं है तो उसके आने के समय झरोखे से देखें। आप देखेंगे कि इसने सारे नगर को अपने हाथ में कर लिया है।"

राजा को विश्वास हो चला। उसने पूछा—

"सेनापति ! क्या करें ?"

"देव ! इसे मार डालना चाहिए।"

"कोई बड़ा दोष दिखाई दिये बिना कैसे मारें ?"

"एक उपाय है ?"

"कौन-सा उपाय ?"

"इसे कोई असम्भव कार्य करने के लिए कहिये। न कर सके तो दोषी ठहराकर मारेंगे।"

"कौन-सा असम्भव कार्य ?"

"महाराज ! अच्छे भूमि में लगाने पर, देख-भाल करने पर साधारण-

तथा उद्यान दो साल में फल देता है। आप उसे बुलाकर कहें कि हमें कल ही उद्यान तैयार चाहिए। कल हम उसमें खेलेंगे। वह न बना सकेगा। तब उसे इस अपराध के कारण मार देंगे।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा—"पण्डित ! पुराने उद्यान में हम बहुत खेले । अब नये उद्यान में क्रीड़ा करने की इच्छा है । कल क्रीड़ा करेंगे। हमारे लिए उद्यान बनाओ । यदि न बना सकोगे तो तुम्हारी जान नहीं बचेगी।"

बोधिसत्व समझ गये कि कालक को रिश्वत न मिलने के कारण उसने राजा को फोड़ा होगा। "महाराज ! कर सका तो देखूंगा" कहकर वे घर चले गये। प्रणीताहार ग्रहण कर चारपाई पर लेटकर सोचने लगे। शक्र-भवन गरम हो गया। शक्र ने ध्यान लगाकर देखा। बोधिसत्व की पीड़ा जानकर जल्दी से आया। सोने के कमरे में प्रवेश कर आकाश में खड़े होकर पूछा—

"पण्डित ! क्या चिन्ता कर रहे हो ?"

"तू कौन है ?"

"मैं शक्र हूँ।"

"राजाने मुझे उद्यान बनाने को कहा है। उसको चिन्ता कर रहा हूँ।"

"पण्डित ! चिन्ता न कर। मैं तेरे लिए नन्दनवन चित्रलतावन-सदृश उद्यान बना दूंगा। किस जगह पर बनाऊं ?"

"अमुक स्थान पर।"

उद्यान बनाकर शक्र देवपुर चला गया । बोधिसत्व ने अगले दिन राजा से जाकर निवेदन किया।

राजा ने जाकर देखा, अठारह हाथ की मनोशिलावर्ण की दीवार से घिरा, द्वार-अट्टालिका-सहित, फूल-फल के भार से लदा हुआ, नाना प्रकार के वृक्षों से सजा हुआ उद्यान है । उसने कालक से पूछा—"पण्डित ने हमारा कहना किया। अब क्या करें ?"

"महाराज ! जो एक रात में उद्यान बना सकता है, वह राज्य ले स ता

है या नहीं ?"

"अब क्या करें ?"

"उससे दूसरा असम्भव कार्य करायें।"

"कौन-सा कार्य ?"

"सात रत्नोंवाली पुष्करिणी बनवाओ।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर पूछा—"आचार्य ! तुमने उद्यान तो बना दिया। अब इसके योग्य सात रत्नोंवाली पुष्करिणी बनाओ। यदि नहीं बना सकोगे तो तुम्हारी जान जायेगी।"

"महाराज ! अच्छा, बना सकेंगे तो बनायेंगे।"

शक्र ने सुन्दर, सौ तीर्थोंवाली, हजार जगह से मुड़ी, पांच प्रकार के कमलों से ढकी, नन्दनपुष्करिणी-सदृश पुष्करिणी बना दी।

राजा ने उसे देख कालक से पूछा—"अब क्या करें ?"

"देव ! उद्यान के योग्य घर बनाने को कहें।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा—"आचार्य ! इस उद्यान और पुष्करिणी के अनुकूल एक ऐसा घर बनाओ जो सारा-का-सारा हाथी दांत का हो, यदि नहीं बनाओगे तो तुम्हारी जान न रहेगी।"

शक्र ने उसका घर भी बना दिया। राजा ने उसे भी देख कालक से पूछा—"अब क्या करें ?"

"महाराज ! घर के योग्य मणि बनाने को कहें।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा—"पण्डित ! इस हाथी दांत के अनुकूल मणि बनाओ। मणि के प्रकाश में घूमेंगे। नहीं बना सकोगे तो तुम्हारी जान जायेगी।"

शक्र ने उसकी मणि भी बना दी। अगले दिन राजा ने उसे भी प्रत्यक्ष देखकर पूछा—"अब क्या करें ?"

"महाराज ! मालूम होता है कि ऐसा देवता है जो धम्मद्धज ब्राह्मण को जो-जो चाहता है, देता है। अब ऐसी आज्ञा दें, जिसे देवता भी न बना सकें। चारों अंगों से युक्त मनुष्य को देवता भी नहीं बना सकता। इस-

लिए उसे कहें कि मुझे चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल बनाकर दे।"

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर कहा—"आचार्य! तुमने हमारे लिए उद्यान, पुष्करिणी, हाथी दांत का प्रासाद, उसमें प्रकाश करने के लिए मणि-रत्न बनाया। अब मेरे उद्यान की रक्षा करनेवाला, चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल बनाओ। नहीं बनाओगे तो तुम्हारी जान न बचेगी।"

"मिलने पर देखूंगा" कहकर बोधिसत्व घर गए। प्रणीत भोजन खा, शय्या पर सोकर सवेरे उठ सोचने लगे—देवराज शक्र ने जो स्वयं बना सकता था, बनाया। वह चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल नहीं बना सकता। इसलिए दूसरों के हाथ से मरने की अपेक्षा जंगल में अनाथ की तरह मरना ही अच्छा है।

वह बिना किसीसे कहे, प्रासाद से उतर, मुख्यद्वार से ही नगर से निकल, जंगल में प्रवेश कर, एक वृक्ष के नीचे बैठ, सत्पुरुषों के धर्म का ध्यान करने लगा। शक्र को जब यह पता लगा तो उसने एक वनचर की शक्ल बना बोधिसत्व के पास जाकर पूछा—"ब्राह्मण! तू सुकुमार है। तूने पहले दुःख नहीं देखा। तू इस अरण्य में दाखिल होकर बैठा क्या कर रहा है?"

"राजा चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल मँगवाता है। वैसा नहीं मिल सकता। सो मैंने यह सोचा कि किसीके हाथ से मरने से क्या लाभ, जंगल में प्रविष्ट हो अनाथ की तरह मरूंगा। इसलिए श्रेष्ठ पुरुषों के धर्म का मरण करता हुआ ध्यान लगा रहा हूं।"

"ब्राह्मण! मैं देवराज शक्र हूं। मैंने तेरे लिए उद्यान आदि बनाये। चारों अंगों से युक्त उद्यानपाल नहीं बना सकता। तुम्हारे राजा के बालों को सजानेवाला छत्तपाणि नाम का नाई है। चारों अगों से युक्त उद्यानपाल की आवश्यकता हो तो उसे उद्यानपाल बनाने के लिए कहना।"

इतना कहकर शक्र देवनगर चला गया। बोधिसत्व प्रातःकाल का भोजन कर राजद्वार गये। वहीं छत्तपाणि को देख, हाथ से पकड़कर पूछा—"मित्र! तू चारों अंगों से युक्त है?"

"तुझे किसने कहा कि मैं चारों अगों से युक्त हूं?"

"देवराज शक्र ने।"

"किस कारण से कहा ?"

"इस कारण से।"

"हां, मैं चारों अंगों से युक्त हूं।"

बोधिसत्व उसे हाथ से पकड़े ही राजा के पास ले जाकर बोले—"महाराज ! यह छत्तपाणि चारों अंगों से युक्त है। उद्यानपाल की आवश्यकता होने पर इसे उद्यानपाल बनावें।"

राजा ने उससे पूछा—"क्या तू चारों अंगों से युक्त है ?"

"हां महाराज।"

"किन चारों अंगों से ?"

"महाराज ! मुझमें ईर्षा नहीं है। मैंने कभी शराब नहीं पी। दूसरों के प्रति मुझमें न स्नेह है न क्रोध। इन चारों अंगों से युक्त हूं।"

"छत्तपाणि ! तू अपने आपको ईर्षा-रहित कहता है ?"

"हां देव ! मैं ईर्षा-रहित हूं।"

"किस बात को देखकर ईर्षा-रहित हुआ ?"

"देव ! सुनें। पहले मैं इसी वाराणसी में आपके जैसा ही राजा था। उस समय मेरी रानी ने नौकर के साथ अनाचार किया। तब मैं सोचने लगा—"मैं सोलह हजार स्त्रियां छोड़कर इस अकेली के साथ रहता हूं तो भी इसे संतुष्ट नहीं कर सका। स्त्रियां बड़ी कठिनाई से संतुष्ट की जा सकने वाली होती हैं। इसलिए उनके प्रति क्रोध करना वैसा ही निरर्थक है, जैसा कपड़े पहनने पर उनके मैले होने पर। मैंने दृढ़ संकल्प किया कि अब से काम-भोग के प्रति ईर्षा न करूंगा।"

"छत्तपाणि ! किस बात को देखकर तू अमद्यप हो गया ?"

"महाराज ! पूर्व काल में मैं आपकी ही तरह वाराणसी का राजा था। शराब के बिना न रह सकता था। बिना मांस के भोजन न कर सकता था। एक बार उपोसथ व्रत के दिन रसोइये को मांस न मिला। उसने देवी के पास आकर पूछा—"देवी ! आज मांस नहीं मिला। क्या करूं ?"

"तात! मेरा पुत्र राजा को अत्यन्त प्रिय है। पुत्र को देखकर राजा उसे चूमता हुआ लाड़-प्यार करता हुआ अपना अस्तित्व ही भूल जाता है। मैं पुत्र को सजाकर राजा की गोद में बिठा दूंगी। जब वह पुत्र के साथ खेल रहा हो तब तुम भोजन लाना।"

रसोइया निर्दिष्ट समय पर भोजन लाया। शराब के नशे में बेहोश राजा ने पका मांस न देखकर पूछा—"मांस कहां है?" "देव! आज पशु-हत्या बन्द रहने से मांस नहीं मिला।"

"मुझे मांस नहीं मिलेगा। ले, जल्दी से पकाकर ला", कहते हुए राजा ने गोद में बैठे प्रिय पुत्र की गर्दन मरोड़कर रसोइये के सामने फेंकी। रसोइये ने वैसा किया। राजा ने पुत्र-मांस के साथ भोजन किया। राजा के भय से न कोई रो-पीट सका, न कुछ कह ही सका।

प्रातःकाल नशा उतरने पर राजा ने कहा—"मेरे पुत्र को लाओ।" उस समय देवी रोती हुई चरणों पर गिर पड़ी। राजा ने पूछा—"भद्रे! क्या हुआ?"

"देव! कल आपने पुत्र को मारकर पुत्र-मांस के साथ भोजन किया!"

तब से मैंने प्रतिज्ञा की कि ऐसी विनाशकारिणी सुरा को कभी नहीं पीऊंगा।"

"क्या देखकर तू स्नेह-हीन हो गया?"

"महाराज! पहले मैं वाराणसी में कितवास नाम का राजा था। मुझे पुत्र हुआ। लक्षण जाननेवालों ने उसे देखकर कहा कि इसकी मृत्यु पानी न मिलने से होगी। उसका नाम दुष्टकुमार रखा गया।

राजा दुष्टकुमार को सदैव अपने आगे-पीछे रखता। पानी के अभाव में कुमार मर न जाय, इस भय से चारों दरवाजों और नगर के भीतर जहां-तहां पुष्करिणियां बनवा दीं। चौरस्तों आदि पर मण्डप बनवा, पानी की चाटियां रखवाईं।

एक दिन कुमार सज-धजकर अकेले उद्यान गया। रास्ते में उसने प्रत्येक-बुद्ध को देखा। जनता उन्हींको प्रणाम करती, हाथ जोड़ती थी; राजकुमार

को नहीं। उसने सोचा—"मुझे छोड़कर लोग इस सिर-मुण्डे को प्रणाम करते हैं, प्रशंसा करते हैं, हाथ जोड़ते हैं।" उसने क्रोधित हो, हाथी से उतर कर प्रत्येकबुद्ध के पास आकर पूछा—"श्रमण! तुझे भोजन मिला?"

"हां राजकुमार, मिला।"

उसने प्रत्येकबुद्ध के हाथ से पात्र ले, उसे ज़मीन पर पटक, भोजन-सहित पांव से मर्दन कर, पांव की ठोकर से चूर-चूर कर दिया! प्रत्येकबुद्ध उसके मुंह की ओर देखने लगे—"अब यह प्राणी नष्ट हुआ।"

कुमार बोला—"श्रमण! मैं कितवास राजा का पुत्र हूं। मेरा नाम है दुष्टकुमार। तू मुझ पर क्रोधित हो, आंख फाड़-फाड़कर देखने से मेरा क्या करेगा?"

प्रत्येकबुद्ध का भोजन नष्ट हो गया। वे आकाश में उठकर उत्तर हिमालय में नन्दमूल पब्भार पर चले गये। राजकुमार के पाप-कर्म ने उसी क्षण फल दिया। "जल रहा हूं" कहता हुआ वह वहीं गिर पड़ा। उतना पानी भी सब समाप्त हो गया। वहीं उसका प्राणान्त हो गया। वह अवीचि नरक में पैदा हुआ।

राजा ने वह समाचार सुन पुत्र-शोक से अभिभूत हो सोचा—"मेरा यह शोक प्रिय वस्तु से उत्पन्न हुआ। यदि मैं स्नेह न करता तो शोक न होता।" तब से निश्चय किया कि चाहे जानदार चीज हो, चाहे बेजान; किसी चीज से स्नेह नहीं करूंगा।"

"मित्र! किस बात को देखकर तू क्रोध-रहित हो गया?"

"महाराज! मैं अरक नामक तपस्वी हो सात वर्ष तक मैत्री चित्त की भावना करते हुए सात संवर्त- विवर्त-कल्पों तक ब्रह्मलोक में रहा। इसलिए दीर्घ काल तक मैत्री भावना का अभ्यास करने से क्रोध-रहित हो गया।"

इस प्रकार छत्तपाणि ने अपने चारों अंगों को कह दिया। राजा ने परिषद् को इशारा किया। उसी क्षण अमात्य, ब्राह्मण, गृहपति आदि यह कहने लगे—"अरे! रिश्वतखोर! दुष्ट! चोर! तू रिश्वत न मिलने से पण्डित की निन्दा करके उसे मरवाना चाहता था।" उन्होंने सेनापति कालक के हाथ-

पाँव पकड़कर, राजमहल से उतारकर, जो-जो हाथ में आया—पत्थर, मुद्गर आदि से प्रहार करके उसे मार डाला।

: ३९ :

भात की पोटली

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व अमात्य-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए।

राजा ने अपने पुत्र पर षड्यन्त्र का सन्देह कर उसे निकाल दिया। वह अपनी भार्या-सहित नगर से निकल काशी के एक गामड़े में रहने लगा।

आगे चलकर जब उसने पिता के मरने का समाचार सुना तो कुलागत राज्य को लेने के लिए वापिस बनारस आया। रास्ते में उन दोनों को खाने के लिए भात की पोटली मिली। उसने भार्या को न देकर भात अकेले खाया। उसकी इस प्रकार की कठोर-हृदयता देख भार्या बड़ी दुःखी हुई।

वाराणसी पहुँचकर वह राजा बना। भार्या को पटरानी बनाकर उसे बहुत थोड़ी-सी सुविधा दी कि इतना इसे पर्याप्त होगा। उसका और कुछ भी सम्मान न करता। "कैसे दिन कटते हैं"—तक न पूछता। बोधिसत्व ने सोचा—"यह देवी राजा का बहुत उपकार करनेवाली है, उसके प्रति स्नेह रखती है; लेकिन राजा इसे कुछ नहीं मानता। इसका सत्कार-सम्मान करवाऊंगा।"

बोधिसत्व देवी के पास जाकर आदरपूर्वक एक ओर खड़े हो गये। देवी ने पूछा—"तात! क्या है?"

"देवी! हम तुम्हारी सेवा करते हैं। क्या बड़े-बूढ़ों को वस्त्र-खण्ड या भात नहीं देना चाहिए?"

३९. पुटभत्त जातक। २.८.२२३

"तात ! मैं स्वयं कुछ नहीं पाती । तुम्हें क्या दूंगी । जब मिलता था, दिया । अब राजा मुझे कुछ नहीं देता । दूसरी किसी चीज की बातें जाने दें । राज्य ग्रहण करने के लिए जब हम आ रहे थे तो रास्ते में भात की पोटली पाकर मुझे भात तक नहीं दिया । अपने-आप ही खाया ।"

"अम्म ! क्या राजा के सामने ऐसा कह सकोगी ?"

"तात ! कह सकूंगी ।"

"तो आज ही जब मैं राजा के सामने खड़ा होकर पूछूं तो ऐसा कहना । मैं आज ही तुम्हारे गुण प्रकट करूंगा ।"

बोधिसत्व पहले से आकर राजा के सामने खड़े हुए, वह भी आकर राजा के सामने खड़ी हुई ।

बोधिसत्व ने कहा—"अम्म ! तुम अति कठोर-हृदया हो । क्या बड़े-बूढ़ों को वस्त्र या भात नहीं देना चाहिए ?"

"तात ! मुझे ही राजा से कुछ नहीं मिलता । तुम्हें क्या दूंगी ।"

"क्या पटरानी नहीं हो ?"

"तात ! सम्मान न मिलने से पटरानी होने से क्या होगा ? अब मुझे तुम्हारा राजा क्या देगा । उसने रास्ते में भात की पोटली पाकर भात तक नहीं दिया । स्वयं खाया ।"

बोधिसत्व ने पूछा—"महाराज ! क्या ऐसी बात है ?"

राजा ने स्वीकार किया । तब बोधिसत्व ने देवी से कहा—

"देवी ! राजा की अप्रिय होने पर तुम्हें यहां रहने से क्या लाभ ? संसार में अप्रिय का साथ दुःखदायी होता है । तुम्हारे यहां रहने से राजा को अप्रिय के साथ रहने का दुःख होगा । प्राणी मिलनेवाले के साथ मिलते हैं, न मिलनेवाले के साथ नहीं मिलते । यह जानकर दूसरी जगह चले जाना चाहिए । दुनिया बहुत बड़ी है ।"

यह सुनकर वाराणसी-राजा ने देवी को सब ऐश्वर्य दिये ।

: ४० :

मरे राजा से भी भय

पूर्व समय में बाराणसी में महापिंगल नाम का राजा अधर्म से अनुचित तौर पर राज्य करता था। लोभ के वशीभूत हो पापकर्म करता था। जनता को ऐसे पीड़ता था, जैसे ऊख-यन्त्र ऊख को। वह रौद्र स्वभाव का था। कठोर था और दुस्साहसी था। उसमें दूसरों के लिए तनिक भी दया नहीं थी। घर में स्त्रियों का, लड़के-लड़कियों का, अमात्य-ब्राह्मणों का तथा गृहपति आदि का भी अप्रिय था। वह ऐसा था मानो आँख में धूल हो, भात के कौर में कंकर हो अथवा एड़ी को बींधकर कांटा घुस गया हो।"

उस समय बोधिसत्व महापिंगल के पुत्र होकर पैदा हुए। महापिंगल चिर-काल तक राज्य करके मर गया। उसके मरने पर सभी बाराणसी-वासी हर्षित और सन्तुष्ट हुए। खूब प्रसन्न हो, एक हजार गाड़ी लकड़ी से महापिंगल को जलाकर अनेक सहस्र घड़ों से आग बुझाई। फिर बोधिसत्व को राज्य पर अभिषिक्त किया। "हमें धार्मिक राजा मिला है" सोचकर लोगों ने नगर में उत्सव-भेरी बजवाई, ऊंची ध्वजाओं तथा पताकाओं से नगर को अलंकृत किया, दरवाजे-दरवाजे पर मण्डप बनवाये, खील-पुष्प बिखेर सजे हुए मण्डपों में बैठकर खाने-पीने लगे।

बोधिसत्व अलंकृत महातल पर बिछे श्रेष्ठ आसन पर, जिस पर श्वेत छत्र छाया हुआ था, बैठे। अमात्य, ब्राह्मण, गृहपति, राष्ट्रिक तथा द्वारपाल आदि राजा को घेरकर खड़े थे। एक द्वारपाल थोड़ी ही दूर पर हिचकियां लेता हुआ रो रहा था। बोधिसत्व ने उसे देखकर पूछा—"सौम्य! मेरे पिता के मरने पर सभी प्रसन्न हो उत्सव मना रहे हैं। लेकिन तू खड़ा रो रहा है। क्या मेरा पिता तुझे ही प्रिय था?"

"मैं इस शोक से नहीं रोता हूं कि महापिंगल मर गया। मेरे सिर को

४०. महापिंगल जातक। २.६.२४०

तो सुख हुआ है। पिंगल राजा प्रासाद से उतरते और चढ़ते हुए हथौड़ी से चोट लगाने की तरह मेरे सिर पर आठ-आठ ठोके लगाता था। उसी तरह वह परलोक में यमराज के सिर में भी ठोके लगायेगा। "यह हमें बहुत कष्ट देता है" सोच वे उसे फिर यहां छोड़ जा सकते हैं। वह फिर मेरे सिर में ठोके मारेगा। मैं इस भय के कारण रोता हूं।"

बोधिसत्व ने उसे आश्वासन दिया—"राजा लकड़ीके हजार भारों से जला दिया गया है। हजारों घड़ों से चिता बुझा दी गई है। जिस जगह जलाया गया, वह जगह खन दी गई है। जो परलोक जाते हैं; उनका यह स्वभाव होता है कि वे दूसरी जगह जन्म ग्रहण करते हैं। फिर उसी शरीर मेंन हीं आते। इसलिए तू मत डर।"

: ४१ :

कला की प्रतियोगिता

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व गन्धर्व-कुल में पैदा हुए। नाम हुआ गुत्तिलकुमार। बड़े होने पर वह गन्धर्व-कला में ऐसे पारंगत हुए कि सारे जम्बू द्वीप में गुत्तिल गन्धर्व ही सब गन्धर्वों से बढ़ गया।

❀ ❀ ❀

उस समय बाराणसी-निवासी बनिये उज्जेनी गये हुए थे। वहां उत्सव की घोषणा हुई। उन्होंने चन्दा करके, बहुत-सी माला, गन्ध, विलेपन आदि तथा खाद्य भोज्य लेकर क्रीड़ा-स्थान पर इकट्ठे होकर कहा—"वेतन देकर एक गन्धर्व लाओ।"

उस समय उज्जेनी में मूसिल नामक ज्येष्ठ गन्धर्व था। उन्होंने उसे

४१. गुत्तिल जातक। २.१०.२४३

बुलाकर अपना गन्धर्व बनाया। मूसिल ने वीणा को स्वर चढ़ाकर बजाया। गुत्तिल गन्धर्व के परिचित उन लोगों को मूसिल का बजाना चटाई खुजलाने जैसा प्रतीत हुआ। कोई भी कुछ न बोला। उन्होंने अपनी प्रसन्नता न प्रकट की। मूसिल ने उनकी प्रसन्नता न देखी तो सोचा—"मालूम होता है, मैं बहुत तीखा बजाता हूँ।" उसने मध्यम स्वर चढ़ा मध्यम स्वर बजाया। वे तब भी उपेक्षावान ही रहे। उसने सोचा—"मालूम होता है, ये कुछ नहीं जानते।" स्वयं भी कुछ न जाननेवाला बन उसने वीणा के तारों को ढीला कर बजाया। उन्होंने तब भी कुछ न कहा।

मूसिल बोला—"भो व्यापारियो! क्या आप लोग मेरे वीणा-वादन से प्रसन्न नहीं होते?"

"क्या तू वीणा बजाता था? हम तो समझते रहे कि तू वीणा को कस रहा है।"

"क्या तुम मुझसे बढ़कर आचार्य को जानते हो? अथवा अपने अज्ञान के कारण प्रसन्न नहीं होते हो?"

"वाराणसी में जिन्होंने गुत्तिल गन्धर्व का वीणा-वादन सुना है, उन्हें तुम्हारा वीणा बजाना ऐसा ही लगता है, जैसे स्त्रियाँ बच्चों को सन्तुष्ट कर रही हों।"

"अच्छा, तो आपने जो खर्चा दिया है उसे वापिस लें। मुझे यह नहीं चाहिए। लेकिन हाँ, वाराणसी जाते समय मुझे साथ लेकर जायें।"

उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया। जाते समय उसे साथ वाराणसी ले गये। वहां गुत्तिल का निवास-स्थान बताकर वे अपने-अपने घर चले गये।

मूसिल ने बोधिसत्व के घर में प्रवेश किया। वहां टंगी हुई बोधिसत्व की बहुत ही अच्छी वीणा देखकर बजाई। बोधिसत्व के माता-पिता अन्धे थे। बोधिसत्व उन्हींकी सेवा करते हुए अकेले जीवन व्यतीत करते थे। अन्धे होने के कारण बोधिसत्व के माता-पिता मूसिल को न देख सके। उन्होंने समझा, चूहे वीणा खा रहे हैं। इसलिए उन्होंने कहा—"सू..सू... चूहे वीणा खा रहे हैं।"

उस समय मूसिल ने वीणा रखकर बोधिसत्व के माता-पिता को प्रणाम किया। उन्होंने पूछा—"कहां से आया ?"

"उज्जेनी से आचार्य के पास शिल्प सीखने आया हूं।"

"अच्छा।"

"आचार्य कहां हैं ?"

"तात ! बाहर गया है। आज आ जायगा।"

यह सुन मूसिल वहीं बैठ गया। बोधिसत्व आये। कुशल-समाचार पूछे जा चुकने पर उसने अपने आने का कारण बताया। बोधिसत्व अंग-विद्या के जानकार थे। वे जान गये कि यह सत्पुरुष नहीं है। उन्होंने अस्वीकार किया—"तात ! जा, तेरे लिए शिल्प नहीं है।"

मूसिल ने बोधिसत्व के माता-पिता के चरण पकड़े। उसने उन्हें अपनी याचना से सन्तुष्ट कर याचना की कि मुझे शिल्प सिखा दें। बोधिसत्व ने बार-बार कहे जाने पर उनकी आज्ञा उल्लंघन न कर सकने के कारण उसे शिल्प सिखा दिया।

वह बोधिसत्व के साथ राजदरबार जाता। राजा ने उसे देखकर पूछा—"आचार्य ! यह कौन है ?"

"महाराज ! मेरा शिष्य है।"

वह शनैः शनैः राजा का विश्वासी हो गया। बोधिसत्व ने बिना कुछ छिपाये अपना जाना हुआ सारा शिल्प उसे सिखा दिया। बोले—"तात ! शिल्प समाप्त हो गया।" उसने सोचा—"मैंने शिल्प सीख लिया। यह वाराणसी नगर सारे जम्बू द्वीप में श्रेष्ठ नगर है। आचार्य भी बूढ़े हो गये हैं। मुझे यहीं रहना चाहिए।" उसने आचार्य से कहा—"आचार्य ! मैं राजा की सेवा करूंगा।"

"अच्छा तात ! मैं राजा से कहूंगा।"

आचार्य राजा से बोले—"महाराज ! हमारा शिष्य देव की सेवा में रहना चाहता है। उसको जो देना हो, वह आप जानें।"

राजा बोला—"आपको जितना मिलता है, आपके शिष्य को उसका

आधा मिलेगा।" उन्होंने मूसिल को वह बात कही। मूसिल बोला—"मुझे आपके बराबर ही मिलेगा तो सेवा करूंगा, नहीं मिलेगा तो नहीं।"

"क्यों?"

"क्या आप जितना शिल्प जानते हैं, वह सब मैं नहीं जानता?"

"हां, जानते हो।"

"यदि ऐसा है तो मुझे आधा क्यों देता है?"

बोधिसत्व ने राजा से कहा। राजा बोला—"यदि आपके समानशिल्प दिखा सकेगा तो बराबर मिलेगा।" बोधिसत्व ने राजा की बात उसे सुनाई। वह बोला—"अच्छा, दिखाऊंगा।" राजा को कहा गया। उसने कहा—"दिखाओ।" सातवें दिन मुकाबला होना निश्चित हुआ।

राजा ने मूसिल को बुलवाकर पूछा—"क्या तू सचमुच आचार्य के साथ मुकाबला करेगा?"

"देव! सचमुच।"

"आचार्य के साथ मुकाबला करना उचित नहीं। मत कर।"

"महाराज! आज से सातवें दिन मेरा और आचार्य का मुकाबला होने ही दें। आप एक दूसरे के ज्ञान को देखेंगे।"

राजा ने 'अच्छा' कहकर स्वीकार किया। उसने शहर में मुनादी करवा दी—"आज से सातवें दिन आचार्य गुत्तिल तथा उनका शिष्य मूसिल राज-दरबार में एक-दूसरे के मुकाबले में अपना-अपना शिल्प दिखायेंगे। नगर-निवासी इकट्ठे होकर शिल्प देखें।"

बोधिसत्व सोचने लगे—"यह मूसिल आयु में कम है, जवान है। मैं बूढ़ा हो गया हूं। शक्ति घट गई है। बूढ़े आदमी से काम नहीं हो सकता। शिष्य हार गया तो इसमें मेरी कुछ विशेषता नहीं, लेकिन शिष्य जीत गया तो उस लज्जा से तो अच्छा है जंगल में जाकर मर जाना।"

वह जंगल में जाते, लेकिन मृत्यु-भय से लौट आते। फिर लज्जा के मारे जंगल में जाते। इस प्रकार उन्हें आना-जाना करते ही छः दिन बीत गए। तृण मर गए। उन पर रास्ता चलने का निशान बन गया। उस समय

शक्र का आसन गरम हुआ। उसने ध्यान लगाकर देखा तो उसे मालूम हुआ कि गुत्तिल गन्धर्व शिष्य के भय से जंगल में महादुःख भोग रहा है। मुझे इसका सहायक होना चाहिए। वह जल्दी से आकर बोधिसत्व के सामने खड़ा हुआ। पूछा—"आचार्य! जंगल में क्यों दाखिल हुआ?"

"तू कौन है?"

"मैं शक्र हूँ।"

"हे देवराज! मैंने मूसिल नाम के शिष्य को सात तारोंवाली सुमधुर रमणीक वीणा जितना जानता था, सिखाई। अब वह मुझे रंगमंच पर ललकारता है। हे इन्द्र! तू मुझे शरण दे।"

"सौम्य! डरो मत। मैं तम्हारा त्राण करूंगा। शिष्य तुझे नहीं जीतेगा। आचार्य ही शिष्य को जीतेगा। तुम वीणा बजाते हुए एक तार तोड़कर छः बजाना। वीणा से स्वाभाविक स्वर निकलेगा। मूसिल भी तार तोड़ देगा। उसकी वीणा से स्वर न निकलेगा। फिर दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा, सातवां तार भी तोड़कर केवल वीणा-दण्ड ही बजाना। तार-रहित खूंटियों से स्वर निकलकर सारी बारह योजन की वाराणसी को ढक लेगा। ये हैं तीन गोटियां। सारे नगर पर वीणा-शब्द छा जाने पर इनमें से एक गोटी आकाश में फेंकना। तुम्हारे सामने तीन सौ अप्सराएं उतरकर नाचने लगेंगी। तब दूसरी फेंकना। दूसरी तीन सौ उतरकर वीणा के सिरे पर नाचने लगेंगी। तीसरी भी फेंकना। और तीन सौ उतरकर रंगमण्डप में नाचेगी। मूसिल बुरी तरह हार जायेगा। मैं भी तुम्हारे पास आऊंगा। जाओ। डरो मत।"

बोधिसत्व पूर्वाह्न समय घर गये। राज-दरबार में मण्डप बनाकर राजासन तैयार कर दिया गया। राजा प्रासाद से उतरकर सजे मण्डप में बैठा। दस हजार अलंकृत स्त्रियों तथा अमात्य, ब्राह्मण, राष्ट्रिक आदि ने राजा को घेर लिया। सभी नगरवासी इकट्ठे हो गये। राजांगण में चक्कों के साथ चक्के तथा मंचों के साथ मंच बंध गये। बोधिसत्व भी स्नान करके, लेपकर, नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खाकर अपने लिए बिछे आसन

पर वीणा लेकर बैठे। शक्र गुप्त रूप से आकाश में आकर ठहरा। केवल बोधिसत्व ही उसे देख सकते थे। मूसिल भी आकर अपने आसन पर बैठा। जनता घेरकर खड़ी हुई। आरम्भ में दोनों ने बराबर-बराबर बजाया। जनता ने दोनों के बजाने से संतुष्ट होकर हजारों हर्ष-नाद किये।

शक्र ने आकाश में ठहरे ही बोधिसत्व को कहा—"एक तार तोड़ दें।" बोधिसत्व ने भ्रमर तार तोड़ दिया। उसके टूटने पर भी वीणा स्वर देती थी। देव-गन्धर्व का सा स्वर निकलता था। मूसिल ने भी तार तोड़ दिया। उसमें से स्वर न निकला। आचार्य ने दूसरा-तीसरा करके सातों तार तोड़ दिये। केवल दण्ड को बजाने से जो स्वर निकला, उसने सारे नगर को छा लिया। हजारों वस्त्र फेंके गए तथा हजारों हर्षनाद हुए। बोधिसत्व ने एक गोटी आकाश में फेंकी। तीन सौ अप्सराएं उतरकर नाचने लगीं। इस प्रकार दूसरी और तीसरी गोटी फेंकने पर जैसे कहा गया उसी तरह नौ सौ अप्सराएं उतरकर नाचने लगीं।

उस समय राजा ने जनता को इशारा किया। जनता ने उठकर कहा—"तू आचार्य से विरोध कर उनकी बराबरी करता है। अपनी सामर्थ्य नहीं देखता।"

जनता ने मूसिल को डरा-धमकाकर जो-जो हाथ में आया, पत्थर, डण्डे आदि मारकर उसकी जान ले ली।

: ४२ :

मांगनेवाला अप्रिय होता है

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व महाधनवान कुल में पैदा हुए। जब बालक इधर-उधर दौड़ने योग्य हो गया तब एक दूसरा भी पुण्यवान प्राणी उसकी माता की कोख

४२. मणिकण्ठ जातक ३.१.२५३

में आया। बच्चों के बड़े होने पर माता-पिता मर गये। इससे उनको वैराग्य प्राप्त हुआ और वे ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए। दोनों भाई गंगा-तट पर पर्णशाला बनाकर रहने लगे। ज्येष्ठ भाई की पर्णशाला गंगा के ऊपर की तरफ थी, छोटे भाई की नीचे की तरफ।

एक दिन मणिकण्ठ नाम का नागराजा अपने भवन से निकलकर गंगा के किनारे ब्रह्मचारी के रूप में घूमता हुआ छोटे भाई के आश्रम पर पहुँचा। प्रणाम करके एक ओर बैठा। परस्पर कुशल-क्षेम पूछकर वे दोनों धीरे-धीरे एक दूसरे के विश्वासी हो गये। अकेले न रह सकते थे। मणिकण्ठ नित्य तपस्वी के पास आता। बैठकर बातचीत करता। तपस्वी के प्रति स्नेह होने के कारण घर जाते समय अपना रूप छोड़कर फन से तपस्वी को घेरते हुए लिपट जाता। उसके सिर पर बड़ा-सा फन निकालकर थोड़ी देर विश्राम करता, फिर स्नेह त्याग, शरीर को लपेटकर तपस्वी को प्रणाम करता और अपने भवन को चला जाता। तपस्वी उसके भय से कृश हो गया। सूख गया। दुर्वर्ण हो गया। पांडुवर्ण हो गया। धमनियां गात्र से जा लगीं।

वह एक दिन भाई के पास गया। उसने इससे पूछा—"क्या कारण है, तू कृश हो गया है? सूख गया है? दुर्वर्ण हो गया है? पांडुवर्ण हो गया है? धमनियां गात्र से जा लगी हैं?" उसने भाई से वह हाल कहा। भाई ने पूछा—"तू उस नाग का आना पसन्द करता है या नहीं?"

"नहीं।"

"जब वह नागराजा तेरे पास आता है तो क्या गहने पहनकर आता है?"

"मणि-रत्न।"

"तो अगली बार जब नागराजा तेरे पास आये तो उसके बैठने से पहले ही मांगना—"मुझे मणि दे।" वह नाग तुझे बिना फन से लपेटे ही चला जायगा। दूसरे दिन आश्रम के द्वार पर आते ही मांगना। तीसरे दिन गंगा के किनारे खड़े होकर उसके पानी से निकलते ही मांगना। इस प्रकार वह फिर तेरे पास नहीं आयेगा।

तपस्वी ने "अच्छा" कहा और अपनी पर्णकुटी में चला गया। दूसरे दिन नागराजा के आकर खड़े होते ही याचना की—"यह अपने पहनने की मणि मुझे दे।" वह बिना बैठे ही चला गया। दूसरे दिन उसने आश्रम-द्वार पर ही खड़े होकर उसके आते ही मांगा—"कल भी मुझे मणिरत्न नहीं दिया, आज तो मिलना ही चाहिए।" नाग बिना आश्रम में घुसे ही चला गया। तीसरे दिन उसके पानी से निकलते ही कहा—"आज मुझे मांगते-मांगते तीसरा दिन हो गया। आज मुझे यह मणिरत्न दे।" नागराजा ने पानी में खड़े-ही-खड़े कहा—

"इस मणि के कारण मुझे बहुत अन्न-पान की प्राप्ति होती है। तू अति याचक है। जैसे कोई तरुण पत्थर पर तेज की हुई तलवार लेकर किसीको डराये, उसी तरह तू मुझे यह मणि मांगकर त्रास देता है। मैं यह तुझे न दूंगा और मैं तेरे आश्रम में भी नहीं आऊंगा।"

इतना कहकर वह नागराजा पानी में डुबकी मार अपने नाग-भवन चला गया। फिर वापस नहीं आया।

ज्येष्ठ तपस्वी छोटे भाई का हाल-चाल जानने के लिए उसके पास आया। उसने यह सारा वृत्तान्त सुन और छोटे तपस्वी को स्वस्थ, प्रसन्न देखकर कहा—

"जो चीज मालूम हो कि किसीको प्रिय है, वह उससे न मांगे। अति याचना करनेवाले के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है। सात रत्नों से परिपूर्ण नाग-भवन में रहनेवाले नागों को भी याचना अप्रिय होती है।"

: ४३ :

परोपकार का बदला

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय

४३. तिरीटवच्छ जातक। ३.१.२५६

बोधिसत्व काशी राष्ट्र में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। नामकरण के दिन तिरीट-वच्छकुमार नाम रखा गया। क्रमशः आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीखा। आगे चलकर उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई। इससे उसके मन में वैराग्य पैदा हुआ। उसने ऋषि-प्रव्रज्या ले ली। अरण्य में फल-मूल आदि खाकर रहने लगा।

उस समय बाराणसी राष्ट्र के प्रत्यन्त देश में बलवा मचा। वहां जाकर राजा युद्ध में पराजित हुआ। मरने के भय से हाथी के कन्धे पर चढ़कर एक ओर भागा। अरण्य में विचरता हुआ पूर्वाह्न समय में वह तिरीटवच्छ के आश्रम पर पहुंचा। उस समय वह फल-मूल लेने के लिए बाहर गया हुआ था। तपस्वियों का आश्रम है, जान राजा हाथी से उतरा। हवा-धूप से क्लान्त हो गया था। प्यास के मारे इधर-उधर पानी खोजने लगा। कहीं कुछ भी दिखाई न दिया। चंक्रमण के स्थान पर जलाशय दिखाई दिया, लेकिन पानी निकालने के लिए रस्सी-घड़ा कुछ न था। वह प्यास रोकने में असमर्थ था। हाथी को जलाशय के पास खड़ा कर उसके पेट में बंधे जोत को पैर में बांध कर उसके सहारे जलाशय में उतरा। जोत पानी तक न पहुंची। बाहर निकलकर चादर को जोत के सिरे पर बांधकर फिर उतरा। तब भी नहीं हुआ। उसने अगले पैर से पानी का स्पर्श करके थोड़ी प्यास बुझाई। अत्यन्त प्यास होने के कारण सोचा—"मरना ही हो तो अच्छी तरह मरना ठीक है।" उसने जलाशय में कूदकर इच्छा भर पानी पिया। निकलने में असमर्थ होने के कारण वहीं पड़ा रहा। हाथी सुशिक्षित था। वह कहीं न जाकर राजा का इन्तजार करता हुआ वहीं खड़ा रहा।

बोधिसत्व शाम के समय फल आदि लेकर आये। हाथी को देखकर सोचा, "राजा आया होगा। हाथी कसाकसाया मालूम पड़ता है। क्या कारण है?" वे हाथी के समीप गये। हाथी उनका आना जानकर एक ओर खड़ा हो गया।

बोधिसत्व ने राजा को जलाशय में देखकर कहा—"महाराज! मत डरें।" आश्वासन देकर सीढ़ी बांधकर राजा को निकाला। उसके शरीर को दबा

कर, तेल मलकर, स्नान करके फल आदि खिलाये, तब हाथी का बन्धन खोला। राजा ने दो-तीन दिन तक विश्राम किया और बोधिसत्व से अपने यहाँ आने की प्रतिज्ञा कराके चला गया।

बोधिसत्व भी महीने-आधे महीने बाद बाराणसी गये। उद्यान में रह कर दूसरे दिन भिक्षा के लिए घूमते हुए राज-द्वार पर पहुचे। बड़ी खिड़की खोलकर राजाङ्गण में देखते हुए राजा ने बोधिसत्व को देखा। पहचानकर प्रासाद से उतर, प्रणाम कर, महाप्रासाद पर लाकर, ऊंचे किये हुए श्वेत छत्र के नीचे राजसिंहासन पर बैठाया। अपने लिए बने आहार का भोजन कराया। उद्यान में लाकर उसके लिए चक्रमणादि से घिरा हुआ निवासस्थान तैयार कराया। प्रव्रजितों की सभी आवश्यक चीजें देकर* उद्यानपाल को सौंपकर प्रणाम करके गया।

तब से बोधिसत्व राज-दरबार में भोजन करने लगे। बहुत आदर-सत्कार हुआ। उस आदर को न सह सकनेवाले अमात्यों ने सोचा—"कोई योद्धा इस प्रकार का सत्कार पाता हुआ क्या नहीं कर सकता ?" उन्होंने उपराज के पास जाकर कहा—"देव ! हमारा राजा एक तपस्वी से बहुत ममत्व रखता है। उसने उसमें क्या गुण देखे ? आप भी राजा के साथ मन्त्रणा करें।" उसने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। अमात्यों के साथ राजा के पास जाकर वह बोला—

"यह कुछ विद्या नही जानता। न आपका बन्धु है, न मित्र है। तो किस कारण से हे तिरीटवच्छ ! यह त्रिदण्डी श्रेष्ठ भोजन पाता है ?"

यह सुनकर राजा ने पुत्र को आमन्त्रित किया—"तात ! क्या तुमको याद है कि जब मैं सीमा के बाहर जाकर युद्ध में पराजित होकर दो-तीन दिन तक नहीं आया था ?"

"याद है।"

"तो इसीके कारण मुझे जीवन मिला। अपने जीवन-दाता के अपने

* तीन चीवर, भिक्षापात्र आदि।

पास आने पर मैं राज्य देकर भी उसका बदला नहीं चुका सकता।"

तब से लेकर उपराज, अमात्य या और कोई राजा से कुछ न कह सका।

: ४४ :

पेट का दूत

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसका पुत्र होकर पैदा हुआ। आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला जाकर शिल्प सीखा। पिता के मरने पर राजा बना।

वह भोजन के बारे में बहुत शुद्धाशुद्ध विचार करनेवाला था। इस-लिए उसका नाम भोजन-शुद्धिक राजा पड़ा। वह ऐसा भोजन करता था कि उसकी एक थाली का मूल्य एक लाख होता। खाते समय घर के अन्दर बैठकर नहीं खाता था। अपने भोजन-विधान को देखनेवाली जनता को पुण्य देने की इच्छा से वह राज्य-द्वार पर रत्न-मण्डप बनवाकर, भोजन के समय उसे अलंकृत करवा ऊंचे उठे हुए स्वर्णमय श्वेतछत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बैठकर क्षत्रिय कन्याओं से घिरा एक लाख की सोने की थाली में सात प्रकार का भोजन करता।

एक अति लोभी मनुष्य के मन में उस भोजन के खाने की इच्छा हुई। वह इच्छा को न रोक सकता था। उसे एक उपाय सूझा। उसने वस्त्रों को कसकर पहना। हाथ उठाकर "भो! मैं दूत हूं, दूत हूं," चिल्लाता हुआ राजा के पास पहुँचा।

उस समय उस जनपद में "दूत हूँ" कहनेवाले को कोई नहीं रोकता था। इसलिए जनता ने दो हिस्सों में विभक्त हो उसे रास्ता दे दिया। उसने जल्दी से आकर झपटकर राजा की थाली से भात का एक कौर लेकर मुँह में डाल लिया। अंग-रक्षक ने उसका सिर काटने के लिए तलवार

४४. दूत जातक। ३.१.२६०

उठाई। राजा ने मना किया। "मत करो, भोजन करो।" कहकर राजा ने अपना हाथ खींच लिया और हाथ धोकर बैठा। उसके भोजन कर चुकने पर अपने पीने का पानी तथा पान देकर पूछा—"हे पुरुष! तू अपने को दूत कहता है; तू किसका दूत है?"

"महाराज, मैं तृष्णा का दूत हूँ, पेट का दूत हूँ। तृष्णा ने मुझे आज्ञा देकर दूत बनाकर भेजा है—तू जा।

"मैं उस पेट का दूत हू जिसके वशीभूत हो लोग अपने शत्रु के यहाँ भी माँगने जाते हैं। राजन्! मुझ पर क्रोध न करें।"

राजा उसकी बात सुनकर सोचने लगा—"सचमुच प्राणी पेट के दूत हैं, तृष्णा के वशीभूत विचरते हैं। तृष्णा ही प्राणियों को चलाती है। इस व्यक्ति ने ठीक कहा है।" राजा ने इसका जवाब दिया—

"हे ब्राह्मण! तुझे बैलों के साथ हजार लाल गौवें देता हूँ। दूत दूत को कैसे न दे? हम भी उसी तृष्णा के दूत हैं।"

: ४५ :

स्त्री का आकर्षण

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। वह पुत्र-विहीन था। उसने अपनी स्त्रियों को पुत्र-प्रार्थना के लिए कहा। वे पुत्र के लिए प्रार्थना करती थीं। इस प्रकार समय बीतते हुए बोधिसत्व ब्रह्मलोक से च्युत होकर पटरानी की कोख में पैदा हुआ। उसे पैदा होते ही नहलाकर स्तन पिलाने के लिए दाई को दिया। वह दूध पिलाये जाने पर रोता था। तब उसे दूसरी को दिया। स्त्रियों के हाथ में वह चुप ही नहीं होता था। तब उसे एक नौकर को सौंपा। उसके हाथ में लेते ही चुप हो गया। तब से उसे पुरुष ही लिये रहते। स्तन पिलाना होता तो दुहकर

४५. चुल्लपलोभन जातक। ३.२.२६३

पिलाते अथवा पर्दे की ओट से स्तन मुँह में डालते। वह क्रमशः बड़ा होता गया, किन्तु स्त्रियों को देखना उसने पसन्द नहीं किया। इसलिए राजाने उसके बैठने-सोने का स्थान अलग बनवाया।

राजकुमार सोलह वर्ष का हुआ। राजा सोचने लगा—"मेरे दूसरा पुत्र नहीं है। यह काम-भोग में रस नहीं लेता। राज्य की भी इच्छा नहीं करता। मुझे पुत्र मुश्किल से मिला है।" तब उसने पुरुषों की परिचर्या कर उनको वश में करनेवाली, नाच, गीत और बजाने में पटु, एक नटी को बुलवाकर कहा—

"अगर स्त्री की गन्ध से अपरिचित मेरे कुमार को लुभा सकेगी तो वह राजा होगा और तू पटरानी।"

"देव! इसकी जिम्मेवारी मेरी। आप चिन्ता न करें।"

वह पहरेदारों के पास जाकर बोली—

"मैं प्रातःकाल आकर आर्यपुत्र के शयनगृह से बाहर खड़ी होकर गाऊंगी। अगर वह क्रोधित हो तो मुझसे कहना। मैं चली जाऊंगी। अगर सुने तो मेरी तारीफ करना।"

उन्होंने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। वह प्रातःकाल उस जगह खड़ी होकर, वीणा के स्वर से गीत का स्वर और गीत के स्वर से वीणा का स्वर मिलाकर, मधुर स्वर में गाने लगी। कुमार सुनता हुआ लेटा रहा। दूसरे दिन कुमार ने नजदीक आकर गाने की आज्ञा दी। अगले दिन अपने शयनागार के पास आकर गाने की आज्ञा दी। अगले दिन अपने पास आकर। इस प्रकार क्रमशः तृष्णा उत्पन्न करके, लोकधर्म सेवन करके, वह काम-रस से परिचित हो गया। "स्त्री दूसरे को नहीं दूंगा" कहता हुआ, तलवार लेकर, गली में निकल, पुरुषों के पीछे-पीछे दौड़ने लगा।

राजा ने उसे पकड़वाकर उस नटी के साथ नगर से बाहर निकलवा दिया। दोनों अरण्य में प्रविष्ट हुए। गंगा के नीचे, समुद्र के ऊपर, आश्रम बनाकर रहने लगे। नटी पर्णशाला में बैठकर कन्द-मूल आदि पकाती थी। बोधिसत्व अरण्य से फल-मूल लाता।

एक दिन जब वह फल-मूल लेने गया तो एक समुद्र-द्वीपवासी तपस्वी भिक्षा के लिए आकाश-मार्ग से जाता हुआ, धुआं देखकर आश्रम पर उतरा। नटी ने उससे कहा कि जबतक पके तबतक बैठो। उसने तपस्वी को बैठाकर स्त्री-हाव-भाव से मोहित कर, ध्यान से च्युत कर, उसका ब्रह्मचर्य अन्तर्धान कर दिया। वह पख कटे कौवे के समान हो गया। उसे छोड़ कर नहीं जा सकता था। उस दिन वहीं रहा। फिर बोधिसत्व को आता देखकर समुद्र की ओर भागा। बोधिसत्व ने अपना शत्रु समझकर उसका पीछा किया। तपस्वी आकाश में उड़ने का प्रयत्न करता हुआ समुद्र में गिर पड़ा। बोधिसत्व ने सोचा—"यह तपस्वी आकाश-मार्ग से आया होगा। ध्यान के नष्ट होने से समुद्र में गिरा। मुझे अब इसकी सहायता करनी चाहिए।" उसने समुद्र के किनारे खड़े होकर कहा—

"ऋद्धि-बल से आकाश-मार्ग से आकर अब स्त्री के संसर्ग के कारण समुद्र में डूबता है। ठगनेवाली महामाया, ब्रह्मचर्य को प्रकुपित करनेवाली स्त्रियाँ, पुरुष को डुबा देती हैं। जिस पुरुष से यह सम्बन्ध करती हैं, चाहे राग से, चाहे धन-लोभ से, उसे वैसे ही शीघ्र जला देती हैं, जैसे आग अपने स्थान को। यह जानकर स्त्रियों से दूर रहे।"

इस प्रकार बोधिसत्व के वचन सुनकर तपस्वी समुद्र में खड़े-ही-खड़े फिर ध्यान को प्राप्त कर आकाश से अपने निवासस्थान को गया।

बोधिसत्व ने सोचा—"यह तपस्वी इस प्रकार भारी शरीरवाला है, सो सेमर की रुई के समान आकाश-मार्ग से उड़ गया। मुझे भी इसकी तरह ध्यान उत्पन्न कर आकाश में विचरना चाहिए।" वह आश्रम लौटकर उस स्त्री को बस्ती ले जाकर छोड़ आया—"तू जा।"

स्वयं अरण्य में प्रविष्ट हो, सुन्दर स्थान में आश्रम बना, ऋषि-प्रव्रज्या ले, ध्यान कर, अभिज्ञा तथा समापत्तियां प्राप्त कर ब्रह्मलोक गया।

: ४६ :

बन्दरों के भरोसे बाग

पूर्व समय में बाराणसी में राजा विश्वसेन राज्य करता था। उस समय उत्सव की घोषणा हुई। माली ने सोचा—"उत्सव में शामिल होना चाहिए।" उसने उद्यान में रहनेवाले बन्दरों से कहा—"यह बाग आप लोगों के लिए बहुत उपयोगी है। मैं एक सप्ताह उत्सव मनाऊंगा। सात दिन तक आप रोपे हुए पौधों में पानी दें।" उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया। वह उन्हें मशकें देकर चला गया।

बन्दर पानी सींचने लगे। उनके मुखिया ने कहा—"जरा सब्र करो। पानी का हमेशा मिलना कठिन है। उसकी रक्षा होनी चाहिए। पहले पौधों को उखाड़कर उनकी लम्बाई नापनी चाहिए। तब बड़ी जड़ में अधिक पानी और छोटी जड़ में थोड़ा पानी डालना चाहिए।" उन्होंने "अच्छा" कह स्वीकार किया। कुछ बन्दर पौधों को उखाड़ते जाते थे, कुछ उन्हें फिर गाड़ कर पानी देते जाते।

उस समय बोधिसत्व बाराणसी के एक कुल में पैदा हुए थे। वह किसी काम से कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन बन्दरों को वैसा करते देखा। पूछा—

"किसने कहा तुमको ऐसा करने को?"

"मुखिया बन्दर ने।"

"भला जब तुम्हारे मुखिया की, जो सब में श्रेष्ठ है, ऐसी बुद्धि है तो तुम्हारी कैसी होगी?"

यह बात सुनकर बन्दर गुस्से हो गए। उन्होंने कहा—

"हे पुरुष! तुम बिना जाने निन्दा कर रहे हो। भला जड़ को देखे बिना हम कैसे जानें कि पौधा जम गया है?"

यह सुनकर बोधिसत्व ने कहा—"मैं आप लोगों की निन्दा नहीं कर

४६. आराम दूसक जातक। ३.२.२६७

रहा हूं और न उन दूसरे वानरों की, जो वन में हैं। विश्वसेन ही निन्दनीय है जिसके लिए आप वृक्ष लगा रहे हैं।"

: ४७ :

उल्लू और कौआ

पूर्व समय में, सृष्टि के प्रथम कल्प में, सभी मनुष्यों ने इकट्ठे होकर एक सुन्दर, शोभाशाली, आज्ञा-सम्पन्न, सब प्रकार परिपूर्ण पुरुष को चुनकर अपना राजा बनाया। चतुष्पादों ने भी इकट्ठे होकर एक सिंह को राजा बनाया। महासमुद्र में मछलियों ने आनन्द नाम की मछली को अपना राजा बनाया।

तब पक्षियों ने हिमालय प्रदेश में एक चट्टान पर इकट्ठे होकर विचार किया—"मनुष्यों में राजा दिखाई देता है, वैसे ही चतुष्पादों और मछलियों में भी। हमारे बीच राजा नहीं है। अराजकता की अवस्था में रहना उचित नहीं जंचता। हमारा भी राजा होना चाहिए। किसी एक को राजा के स्थान पर रखना है।" उन्होंने उपयुक्त पक्षी की तजवीज करते हुए एक उल्लू को चुनकर कहा—"यह हमको अच्छा लगता है।"

एक पक्षी ने सबकी सम्मति जानने के लिए तीन बार घोषणा की। जब तीसरी बार घोषणा हो चुकी तो एक कौवे ने सामने आकर कहा—"जरा ठहरो। अभी सभी सम्बन्धियों ने मिलकर उल्लू को राजा बनाया है। यदि मुझे आज्ञा दें तो मुझे भी एक बात कहनी है।"

उसको आज्ञा देते हुए सभी पक्षियों ने कहा—"हे सौम्य! तुझे आज्ञा है। केवल मतलब की बात कह, क्योंकि छोटे पक्षियों में भी प्रज्ञावान और ज्ञानी होते ही हैं।"

कौवे ने ऐसी अनुज्ञा पाकर कहा—

४७. उलूक जातक। ३.२.२७०

"भद्रो ! उल्लू का अभिषेक मुझे अच्छा नहीं लगता। अभी क्रुद्ध नहीं है तब इसका मुख ऐसा है, क्रुद्ध होने पर भला कैसा लगेगा ?"

इतना कह "मुझे अच्छा नहीं लगता, मुझे अच्छा नहीं लगता" कहता हुआ आकाश में उड़ा। उल्लू ने उठकर उसका पीछा किया। तब से उन दोनों का परस्पर वैर बंधा।

पक्षी स्वर्ण-हंस को राजा बनाकर अपने-अपने वासस्थान चले गये।

: ४८ :

कुरुधर्म जातक

पूर्व समय में कुरु राष्ट्र के इन्द्रप्रस्थ नगर में धनञ्जय राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म लिया। क्रमशः बड़े होने पर तक्षशिला जाकर शिल्प सीखा। आगे चलकर पिता के मरने पर राज्य प्राप्त किया। दस राजधर्मों के अनुकूल चलते हुए कुरुधर्मानुसार आचरण किया। कुरुधर्म कहते हैं पांच शीलों को। बोधिसत्व ने उनका पवित्रता से पालन किया। नगर के चारों द्वारों पर, नगर के बीच में और निवास-गृह के द्वार पर छः दानशालाएं बनवा प्रतिदिन छः लाख का दान करते हुए सारे जम्बू-द्वीप को उन्नादित कर दिया।

उस समय कलिङ्ग राष्ट्र के दन्तपुर नगर में कालिङ्ग राजा राज्य करता था। उसके राष्ट्र में वर्षा न हुई। सारे राष्ट्र में अकाल पड़ गया। बीमारी फैल गई। मनुष्य अकिंचन हो बच्चों को हाथों पर लेकर जहां-तहां घूमते थे। सारे राष्ट्र के निवासियों ने इकट्ठे होकर दन्तपुर पहुंचकर राजद्वार पर शोर मचाया। राजा ने खिड़की के पास खड़े होकर उनका शोर सुनकर पूछा—

---

४८. कुरुधम्म जातक। ३.३.२७६

"यह क्यों चिल्लाते हैं ?"

"महाराज ! वर्षा नहीं होती । खेत नष्ट हो गये हैं । अकाल पड़ गया है। बीमारी फैल गई है । मनुष्य सब-कुछ छोड़कर केवल बच्चों को हाथों पर उठाये घूमते हैं ।"

"पहले के राजा वर्षा न होने पर क्या करते थे ?"

"महाराज ! पहले के राजा दान देते थे। शील का पालन करते थे। एक सप्ताह तक दूब के बिछौने पर लेटे रहते थे। तब वर्षा होती थी ।"

"अच्छा" कहकर राजा ने वैसा ही किया। तो भी वर्षा न हुई। राजा ने अमात्यों से पूछा—"अब क्या करूं ?"

"महाराज ! इन्द्रप्रस्थ नगर में धनञ्जय नामक कुरु-नरेश का अंजन-वसभ नाम का हाथी है, उसे लायें। उसके लाने से वर्षा होगी।"

"वह राजा दुर्जय है। उसका हाथी कैसे लायें ?"

"महाराज ! उसके साथ युद्ध करने की आवश्यकता नहीं। राजा दानी है। मांगने पर शीश भी काटकर दे सकता है। सुन्दर आंखें निकालकर दे सकता है। सारा राज्य भी त्याग सकता है। हाथी का तो कहना ही क्या ! मांगने पर अवश्य ही दे देगा।"

राजा ने ब्राह्मण-ग्राम से आठ ब्राह्मण बुला, खर्चा देकर उन्हें हाथी मांगने के लिए भेजा। वे राही का भेस बनाकर चल दिये। सभी जगह एक ही रात ठहरते हुए जल्दी ही नगर-द्वार पर जा पहुंचे। नगर-द्वार पर दानशाला में भोजन कर थकावट उतारकर पूछा—

"राजा दान-शाला में कब आता है ?"

आदमियों ने उत्तर दिया—"पक्ष में तीन दिन—चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अष्टमी को। कल पूर्णिमा है, इसलिए कल आयेगा।"

अगले दिन ब्राह्मण प्रातःकाल ही जाकर पूर्व द्वार पर खड़े हो गये। बोधिसत्व भी प्रातःकाल स्नान कर, चन्दन आदि का लेप कर, सब अलंकारों से अलंकृत हो, सजे हुए श्रेष्ठ हाथी के कन्धे पर चढ़कर, बहुत से अनुयायियों के साथ पूर्व-द्वार की दानशाला में पहुँचा। उतरकर सात-

आठ जनों को अपने हाथ से भोजन दिया और मनुष्यों को कहा कि इसी तरह से दो। स्वयं हाथी पर चढ़कर दक्षिण-द्वार को चला। पूर्व-द्वार पर सिपाहियों की अधिकता के कारण ब्राह्मणों को मौका न मिला। वे दक्षिण-द्वार पर पहुँचे। राजा को आते देखकर द्वार से थोड़ी ही दूर कुछ ऊंचे स्थान पर खड़े हो गये। जब राजा पास आया तो उन्होंने हाथ उठाकर राजा का जय-जयकार किया। वज्र-अंकुश से हाथी को रोककर राजा उनके पास पहुंचा। पूछा—"ब्राह्मणो! क्या चाहते हो?" उन्होंने राजा का गुणानुवाद करते हुए कहा—

"हे जनाधिप! आपकी श्रद्धा और शील की बड़ी कीर्ति फैली हुई है। उसीके कारण आपके राष्ट्र में खूब वर्षा होती है। हमारे कलिङ्ग-देश में वर्षा नहीं हो रही है। अकाल पड़ा है। हम आपका अंजन-वर्ण हाथी लेने आये हैं कि शायद इससे वर्षा हो जाय। क्यों न हम हाथी का सोने से विनिमय करें?"

यह सुनकर राजा ने कहा—"हे ब्राह्मणो! मैं तुम्हें यह राजाओं के योग्य, राज्य परिभोग्य, यशस्वी, अलकृत तथा स्वर्ण-जाली से ढका हाथी देता हूँ। जहां चाहो ले जाओ।"

हाथी लेकर ब्राह्मण दन्तपुर नगर पहुँचे। हाथी के आने पर भी वर्षा न हुई। राजा ने पूछा—"अब क्या कारण है?"

"कुरुराज धनञ्जय कुरु-धर्म पालता है। इसलिए उसके राष्ट्र में पन्द्रहवें दिन, दसवें दिन वर्षा होती है। यह राजा के गुणों का ही प्रताप है। इस पशु में गुण होने पर भी आखिर कितने गुण हो सकते हैं?"

"तो अनुयायियों सहित इस सजे-सजाये हाथी को वापिस ले जाकर राजा को दो। वह राजा जिस धर्म का पालन करता है, वह सोने की तख्ती पर लिखवाकर लाओ।"

ब्राह्मणों और अमात्यों ने जाकर राजा को हाथी सौंपकर निवेदन किया—"देव! इस हाथी के आने पर भी हमारे देश में वर्षा नहीं हुई।

आप कुरु-धर्म का पालन करते हैं। हमारा राजा भी कुरु-धर्म का पालन करना चाहता है। उसने हमें सोने की तख्ती पर लिखवाकर लाने के लिए भेजा है। हमें कुरु-धर्म दें।"

"तात! मैंने सचमुच कुरु-धर्म का पालन किया है, लेकिन अब मेरे मन में उसके बारे में सन्देह है। उससे स्वयं मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। इसलिए तुम्हें नहीं दे सकता।"

राजा का शील उसके चित्त को प्रसन्नता क्यों नहीं देता था? उस समय प्रति तीसरे वर्ष कार्तिक मास में कार्तिकोत्सव नाम का उत्सव होता था। उस उत्सव को मनाने के लिए राजागण सब अलंकारों से सजकर देवताओं का भेष बनाते थे। चित्रराज नामक यक्ष के पास खड़े होकर चारों ओर फूलों से सजे चित्रित बाण फेंकते थे। इस राजा ने भी वह उत्सव मनाते समय एक तालाब के किनारे खड़े होकर चारों ओर चित्रित बाण फेंके। तीन ओर फेंके बाण दिखाई दिये। तालाब के तल पर फेंका बाण दिखाई न दिया। राजा के मन में अनुताप हुआ कि कहीं मेरा फेंका हुआ बाण मछली के शरीर में तो नहीं जा लगा। प्राणी को हिंसा से शील टूट गया। इसी सन्देह के कारण शील राजा के मन को प्रसन्न नहीं करता था।

उसने कहा—"तात! मुझे कुरु-धर्म के बारे में अनुताप है, लेकिन मेरी माता ने उसे अच्छी तरह पालन किया है। उससे ग्रहण करो।"

"महाराज! 'मैं जीव-हिंसा करूंगा' यह आपकी चेतना नहीं थी। बिना चित्त के जीवहिंसा नहीं होती। आपने जिस कुरु-धर्म का पालन किया है, वह हमें दें।

"तो लिखो" कहकर सोने की तख्ती पर लिखवाया—"जीवहिंसा नहीं करनी चाहिए। चोरी नहीं करनी चाहिए। काम-भोग सम्बन्धी मिथ्याचार नहीं करना चाहिए। झूठ नहीं बोलना चाहिए। मद्य-पान नहीं करना चाहिए।"

दूतों ने राजा को प्रणाम कर उनकी माता के पास जाकर कहा—

"देवी ! आप कुरुधर्म की रक्षा करती हैं। उसका उपदेश हमें दें।"

"तात ! मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करती हूँ; लेकिन अब मेरे मन में सन्देह पैदा हो गया है। इसलिए उस धर्म-पालन से मुझे प्रसन्नता नहीं होती। मैं तुम्हें नहीं दे सकती।"

उसके दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र राजा, कनिष्ठ उपराज। एक राजा ने बोधिसत्व के पास लाख के मूल्य का चन्दनसार और हजार के मूल्य की सोने की माला भेजी। उसने उससे माता की पूजा की। मां ने सोचा—"न मैं चन्दन का लेप करती हूँ न माला पहनती हूँ, इसलिए इन्हें पतोहू को दूंगी।" फिर उसे ख्याल हुआ "कि ज्येष्ठ पतोहू ऐश्वर्यवान है, पटरानी है, इसलिए उसे सोने की माला दूंगी और कनिष्ठ पतोहू दरिद्र है, इसलिए उसे चन्दनसार दूंगी।" उसने राजा की रानी को सोने की माला और उपराज की भार्या को चन्दनसार दिया। लेकिन दे चुकने पर उसे ख्याल आया—"मैं तो कुरुधर्म का पालन करनेवाली हूँ। इन दोनों में कौन दरिद्र है, कौन अदरिद्र, इससे मुझे क्या ? मुझे तो जो अधिक बड़ी हो, उसी का आदर करना योग्य है। कहीं उसके न करने के कारण मेरा शील भंग तो नहीं हो गया ?" उसके मन में इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हुआ।

दूतों ने उत्तर दिया—"अपनी वस्तु जैसे रुचे, वैसे देनी चाहिए। तुम ऐसी बात में भी सन्देह करती हो तो तुमसे दूसरा क्या पाप-कर्म हो सकता है ! शील इस तरह भंग नहीं होता। हमें कुरुधर्म दें।" उससे भी कुरुधर्म लेकर सोने की तख्ती पर लिखा।

"तात ! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। मेरी पतोहू कुरुधर्म का पालन अच्छी तरह करती है। उससे कुरुधर्म ग्रहण करें।"

उन्होंने पटरानी के पास जाकर कुरुधर्म की याचना की। उसने भी कहा कि उसके मन में सन्देह हो गया है, वह नहीं दे सकती।

एक दिन राजा हाथी की पीठ पर बैठकर नगर की प्रदक्षिणा कर रहा था। उपराज उसके पीछे बैठा था। रानी ने झरोखे से उसे देखा, लोभायमान होकर सोचा—"यदि मैं इसके साथ सहवास करूं तो भाई

के मरने पर राज्य पर प्रतिष्ठित होकर यह मेरी खातिर करेगा।" तब उसे ध्यान आया—"मैंने कुरुधर्म का पालन करनेवाली होकर स्वामी के रहते दूसरे पुरुष की ओर बुरी दृष्टि से देखा। मेरा शील भंग हो गया होगा।" उसके मन में यह संदेह पैदा हुआ।

दूतों ने उत्तर दिया—"आर्ये! चित्त में ख्याल आने मात्र से दुराचार नहीं होता। तुम ऐसी बात में भी सन्देह करती हो तो तुमसे उल्लंघन कैसे हो सकता है? इतने से शील भग नहीं होता। हमें कुरुधर्म दें।"

उससे भी कुरुधर्म ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

"तात! ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। उपराज अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने उपराज के पास जाकर कुरुधर्म की याचना की।

वह सन्ध्या समय रथ पर बैठकर राजा की सेवा में जाता था। यदि राजा के पास खाकर वहीं सो रहना चाहता तो रस्सी और चाबुक को धुरी के अन्दर रख देता था। उस इशारे को समझकर आदमी दूसरे दिन आकर प्रतीक्षा करते। यदि उसी समय लौटने की इच्छा होती तो रस्सी और चाबुक को रथ में ही छोड़कर राजा से भेंट करने जाता। उपराज अभी लौटेगा, ऐसा समझकर आदमी राज-द्वार पर ही खड़े रहते।

रस्सी और चाबुक को रथ में ही छोड़कर एक दिन वह राजमहल में गया। उसके जाते ही वर्षा होने लगी। वर्षा होने के कारण राजा ने उसे लौटने नहीं दिया। वह वहीं खाकर सो गया। "अब निकलेगा-अब निकलेगा" सोचकर लोग प्रतीक्षा करते हुए सारी रात भीगते खड़े रहे। उपराज ने दूसरे दिन निकलकर लोगों को भीगे वस्त्र खड़े देखा। सोचने लगा—"मैं तो कुरुधर्म का पालन करता हूं और मैंने इतने लोगों को कष्ट दिया। मेरा शील भंग हो गया होगा।" इस सन्देह के कारण उसने दूतों से कहा—"मैं सचमुच कुरुधर्म का पालन करता हूँ; लेकिन इस समय मेरे मन में सन्देह पैदा हो गया है। मैं कुरुधर्म का उपदेश नहीं दे सकता।"

"देव! हम लोगों को कष्ट हो, यह आपकी मंशा नहीं रही है। बिना इरादे के कर्म नहीं होता। इतनी-सी बात में भी जब आप सन्देह करते हैं तो आपसे उल्लंघन कैसे हो सकता है?"

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर उसे सोने की पट्टी पर लिखा।

"ऐसा होने पर भी मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। पुरोहित अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने पुरोहित से जाकर याचना की।

वह एक दिन राजा की सेवा में जा रहा था। रास्ते में उसने मध्याह्न सूर्य की तरह लाल रथ आते देखा। पूछा—"यह रथ किसका है?" उत्तर मिला—"राजा के लिए लाया गया है।" पुरोहित के मन में विचार पैदा हुआ—"मैं बूढ़ा हूं। यदि राजा यह रथ मुझे दे दे तो मैं इस पर चढ़कर सुखपूर्वक घूमूं।" यही सोचता हुआ वह राजा की सेवा में पहुँचा।

उसी समय वह रथ राजा के सामने लाया गया। राजा ने कहा कि "रथ बहुत सुन्दर है। इसे आचार्य को दे दो।" पुरोहित ने लेना स्वीकार नहीं किया। बार-बार कहने पर भी अस्वीकार ही किया। वह सोचने लगा—"मैं कुरुधर्म का पालन करनेवाला हूं। मैंने दूसरे की वस्तु के प्रति लोभ पैदा किया। मेरा शील भंग हो गया होगा।" उसने यह बात सुनाकर कहा—"तात! कुरुधर्म के प्रति मेरे मन में सन्देह है। मैं नहीं दे सकता।"

"आर्य! केवल मन में लोभ उत्पन्न होने मात्र से शील भंग नहीं होता। आप इतनी-सी बात में भी सन्देह करते हैं तो आपसे कैसे उल्लंघन हो सकेगा?"

दूतों ने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

पुरोहित ने कहा—"लेकिन मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है। रस्सी पकड़ने वाला अमात्य अच्छी तरह पालन करता है, उससे ग्रहण करें।"

दूतों ने उसके पास भी पहुँचकर याचना की।

एक दिन वह जनपद में खेत की गिनती कर रहा था। डण्डे में बंधी

रस्सी का एक सिरा खेत के मालिक के पास था, एक उसके पास। जिस सिरे को उसने पकड़ रक्खा था, उस सिरे की रस्सी से बंधा डण्डा एक केकड़े के बिल पर आ पहुँचा। वह सोचने लगा, "अगर डण्डे को बिल में उतारूं तो बिल के अन्दर का केकड़ा मर जायगा। पीछे की ओर उतारूं तो गृहस्थ का हक मारा जायगा।" तब उसे ऐसा सूझा कि "यदि बिल में केकड़ा होगा तो प्रकट होगा। डण्डे को बिल में ही उतारूंगा।" उसने डण्डा उतार दिया। केकड़े ने 'किरि' आवाज की। तब उसे चिन्ता हुई कि डण्डा केकड़े की पीठ में घुस गया होगा और केकड़ा मर गया होगा। उसने यह बात दूतों को सुनाकर कहा कि "इस कारण कुरुधर्म के प्रति मेरे मन में सन्देह है। इसलिए तुम्हें नहीं दे सकता।"

दूतों ने कहा कि "आपकी यह मंशा नहीं थी कि केकड़ा मरे। बिना इरादे के कर्म नहीं होता। इतनी बात में भी आप सन्देह करते हैं तो आप से उल्लंघन कैसे हो सकता है?"

अमात्य ने कहा—"ऐसा होने पर भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है। सारथी अच्छी तरह रक्षा करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने उसके पास भी पहुँचकर याचना की।

सारथी एक दिन राजा को रथ में उद्यान ले गया। राजा दिन-भर क्रीड़ा करके शाम को निकला। रथ पर चढ़कर नगर की ओर चला कि आकाश में बादल घिर आये। सारथी ने राजा के भीगने के डर से घोड़ों को चाबुक दिखाया। सिन्धव घोड़े तेजी से दौड़े। तब से उद्यान जाते और लौटते समय भी घोड़े उस स्थान पर तेजी से दौड़ने लगते। उनको ख्याल हो गया कि "इस स्थान पर खतरा होगा, इसलिए सारथी ने हमें इस स्थानपर चाबुक दिखाया था।" सारथी को चिन्ता हुई—"राजाके भीगने या न भीगने से मुझ पर दोष नहीं आता; लेकिन मैंने सुशिक्षित सिन्धव घोड़ों को चाबुक दिखाने की गलती की। इसलिए अब आते-जाते घोड़े भागने का कष्ट उठाते हैं। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह भंग हो गया होगा।"

उसने यह बात दूतों को सुनाकर कहा—"इस कारण मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। मैं नहीं दे सकता।"

दूतों ने कहा—"आपकी यह मन्शा नहीं थी कि सिन्धव घोड़े कष्ट पायें। बिना इरादे के कर्म नहीं होता। जब इतनी बात में भी आप मन मैला करते हैं तो आपसे उसका उल्लंघन कैसे होगा?" उन्होंने उससे शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

सारथी ने कहा—"ऐसा होने पर भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है। सेठ अच्छी तरह रक्षा करता है। उससे ग्रहण करें।"

उन्होंने सेठ के पास पहुंचकर याचना की।

एक दिन जब धान की बल्ली निकल आई थी, सेठ अपने धान के खेत में पहुंचा। देखकर उसने सोचा कि "धान को बँधवाऊंगा" और धान की एक मुट्ठी पकड़कर खम्बे से बँधवा दी। तब उसे ख्याल आया कि "खेत में राजा का हिस्सा देना बाकी है। बिना राजा का हिस्सा दिये ही खेत में से मैंने धान की मुट्ठी ली। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूं। वह भंग हो गया होगा।" उसने यह बात दूतों को सुनाकर कहा—"इस कारण मेरे मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। मैं नहीं दे सकता। हां, द्रोणमापक अमात्य अच्छी तरह पालता है। उससे ग्रहण करें।"

दूतों ने कहा—"आपकी चोरी की नीयत नहीं थी। बिना उसके चोरी का दोष लागू नहीं किया जा सकता। इतनी-सी बात में भी सन्देह करने वाले आप किसीकी क्या चीज ले सकेंगे?"

उन्होंने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

तब उन्होंने द्रोणमापक अमात्य के पास जाकर याचना की।

एक दिन वह कोठी के द्वार पर बैठा राजा के हिस्से के धान को मपवा रहा था। बिना मापे हुए धान के ढेर में से धान लेकर उसने चिह्न रख दिया। उसी समय वर्षा आ गई।

अमात्य ने चिह्न को गिनकर चिह्न के धान को मापे गये धान में डाल दिया। फिर जल्दी से कोठी के द्वार पर पहुंचकर खड़ा हो गया। वह सोचने

लगा--"मैंने चिह्न के धान मापे गये ढेर में फेंके या बिना मापे गये ढेर में ? यदि मापे गये ढेर में फेंके तो अकारथ ही राजा के हिस्से को बढ़ा दिया और किसानों के हिस्से की हानि की। मैं कुरुधर्म का पालन करता हूँ। वह भंग हो गया होगा।"

यह बात सुनाकर उसने कहा—"इस कारण से मन में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। मैं नहीं दे सकता। हां, द्वारपाल अच्छी तरह पालन करता है। उससे ग्रहण करें।"

दूत बोले—"आपकी चोरी की नीयत नहीं थी। बिना उसके चोरी का दोष लागू नहीं किया जा सकता। इतनी-सी बात में भी सन्देह करनेवाले आप किसीकी क्या चीज ले सकेंगे ?"

उन्होंने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा। तब द्वारपाल के पास जाकर याचना की।

द्वारपाल ने एक दिन नगर-द्वार बन्द करते समय तीन बार घोषणा की। एक दरिद्र आदमी अपनी छोटी बहन के साथ लकड़ी-पत्ते लेने जंगल गया था। लौटते समय द्वारपाल की आवाज सुनकर बहन को लेकर शीघ्रता से अन्दर आया। द्वारपाल बोला—"तू नहीं जानता कि नगर में राजा है ? तू नहीं जानता कि समय रहते ही इस नगर का द्वार बन्द हो जाता है ? अपनी स्त्री को ले जंगल में रति-क्रीड़ा करता घूमता है ?"

उसने उत्तर दिया—"स्वामी, यह मेरी भार्या नहीं है। बहन है।" तब द्वारपाल चिन्तित हुआ—"मैं कुरुधर्म का पालन करता हूं। वह भंग हो गया होगा।"

यह बात सुनाकर उसने दूतों से कहा—"इस बात से मेरे दिल में कुरुधर्म के प्रति सन्देह है। हां, वेश्या अच्छी तरह पालन करती है। उससे ग्रहण करें।"

दूतों ने कहा—"आपने जैसा समझा, वैसा कहा। इससे शील भंग नहीं होता। इतनी-सी बात के लिए आप अनुताप करते हैं तो जान-बूझकर झूठ क्या बोलेंगे !"

उन्होंने उससे भी शील ग्रहण किया।

अन्त में उन्होंने वेश्या के पास जाकर याचना की। उसने भी कहा—"मेरे मन में सन्देह है। मैं नहीं दे सकती।"

एक बार उसके पास एक तरुण आया। एक हजार रुपया देकर कहा कि "मैं तुम्हारे पास आऊंगा।" इतना कहकर वह चला गया और तीन वर्ष तक नहीं लौटा। अपना शील भंग होने के डर से वेश्या ने किसी दूसरे आदमी से पान तक नहीं लिया। क्रमशः दरिद्र हो गई। तब उसने न्यायालय में जाकर निवेदन किया—"स्वामी! जो आदमी मुझे खर्चा देकर गया, वह तीन वर्ष से नहीं लौटा। यह भी नहीं जानती, वह जीता है कि मर गया। मैं अब जीवन-यापन नहीं कर सकती। क्या करूं?"

न्यायालय ने फैसला दिया "अब से खर्च लिया कर।" न्यायालय से निकलते ही एक आदमी ने उसकी ओर एक हजार की थैली बढ़ाई। उसे लेने के लिए उसने ज्यों ही हाथ पसारा कि इन्द्र प्रकट हुआ। वह एक हजार देनेवाला तरुण इन्द्र ही था। वेश्या ने उसे देखते ही हाथ खींच लिया। उस नये आदमी से बोली—"तीन साल पहले जिसने मुझे एक हजार कार्षापण दिया था, वह अब आ गया है। मुझे तुम्हारे कार्षापणों की जरूरत नहीं है।"

उस समय इन्द्र अपने असली रूप में प्रकट हुआ। सारा नगर इकट्ठा हो गया। शक्र ने जनता को सम्बोधित कर कहा—"मैंने इसकी परीक्षा लेने के लिए तीन वर्ष पहले इसे एक हजार कार्षापण दिये थे। शील की रक्षा करनी हो तो इसकी तरह करनी चाहिए।"

यह बात सुनकर वेश्या ने कहा—"मैंने लिये खर्च को बिना भुगताये दूसरे के धन के लिए हाथ पसारा। इसलिए इस शील से मुझे प्रसन्नता नहीं होती।"

दूतों ने कहा कि "हाथ पसारने मात्र से शील भंग नहीं होता। आपका शील परम परिशुद्ध शील है।" उन्होंने उससे भी शील ग्रहण कर सोने की पट्टी पर लिखा।

इस प्रकार इन ग्यारह जनों द्वारा पालन किया गया शील सोने की पट्टी पर लिखकर दन्तपुर लाया गया। कलिङ्ग-नरेश ने भी उस कुरुधर्म में स्थित हो पांच शीलों को पूर्ण किया। उस समय सारे कलिंग राष्ट्र में वर्षा हुई। तीनों भय शान्त हो गये। राष्ट्र का कल्याण हुआ। पैदावार खूब हुई।

: ४९ :

संघ में शक्ति है

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व जंगल में वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए।

उसी समय बाराणसी के पास बढ़इयों का एक गांव था। उनमें से एक बढ़ई एक दिन जंगल गया। वहां उसने गढ़े में एक सूअर के बच्चे को देखा। लाकर पोसा। बड़ा होकर वह महान शरीरवाला, टेढ़ी दाढ़ोंवाला, किन्तु बड़ा सदाचारी हुआ। जब बढ़ई वृक्ष छीलते तो वह थूथनी से वृक्ष को उलटता-पलटता। फरसा, रुखानी, मोगरा आदि औजार मुँह से उठाकर ला देता। काले डोरे का सिरा पकड़ लेता।

यह सोचकर कि कोई उसे खा न जाय, बढ़ई सूअर को जगल में छोड़ आया। सूअर ने जंगल में सुरक्षित स्थान खोजते हुए पर्वत की ओट में एक महान कन्दरा देखी। वहां कन्द-मूल खूब थे और सुख से रहा जा सकता था। उसे देखकर सैकड़ों सूअर उसके पास पहुंचे। उसने उनसे कहा—"मैं तुम लोगो को ही ढूढता था। तुम यहां मिल गये। यह स्थान रमणीय है। मैं अब यहीं रहूंगा।"

"सचमुच यह स्थान रमणीय है, लेकिन यहां खतरा है।"—सूअरों ने उत्तर दिया।

---

४९. बड्ढकी सूकर जातक। ३.४.२८३

"मैंने भी तुम्हें देखकर यही जाना। चरने के लिए ऐसी अच्छा जगह रहते हुए भी शरीर में मांस-रक्त नहीं है। यहां क्या खतरा है?"

"एक व्याघ्र आकर जिसे देखता है, उठा ले जाता है।"

"लगातार ले जाता है या कभी-कभी ?

"लगातार।"

"व्याघ्र कितने हैं ?"

"एक ही।"

"तुम इतने हो और एक से पार नहीं पा सकते ?"

"नहीं।"

"मैं उसे पकड़ूंगा, तुम मेरा कहना करना। वह व्याघ्र कहां रहता है ? "

"इसी पर्वत में।"

उसने रात को ही सूअरों को चर लेने के लिए कहा। युद्ध-संचालन का विचार करते हुए उसने व्यूह रचने का निश्चय किया। पाडुरों और उनकी माताओं को बीच में रखा। उनके गिर्द बांझ सूअरियों को। उनके गिर्द बच्चे सूअरों को। उनके गिर्द लम्बी दाढ़वाले सूअरों को और उनके गिर्द युद्ध करने में समर्थ, बलवान, दस-दस बीस-बीस सूअरों के झुण्ड जहां-तहां स्थापित किये। अपने खड़े होने के स्थान के आगे एक गोल गढ़ा खुदवाया। एक पीछे से, छाज की तरह क्रमानुसार होता हुआ ढलवां भूमि के सदृश। साठ योद्धा सूअरों को जहां-तहां इसलिए नियुक्त किया कि "मत डरें, मत डरें" कहकर ढाढ़स बंधायें। इतने में अरुणोदय हो गया।

व्याघ्र ने उठकर देखा कि समय हो गया। उसने सामने के पर्वत-तल पर खड़े हो आंखें खोलकर सूअरों को देखा। बढ़ई-सूअर ने सूअरों को इशारा किया कि वे भी उसकी ओर घूरकर देखें। उन्होंने वैसे ही किया। व्याघ्र ने मुँह खोलकर सांस ली। सूअरों ने भी वैसा ही किया। व्याघ्र ने पेशाब किया। सूअरों ने भी किया। इस प्रकार जो उसने किया, वही उन्होंने

भी किया। वह सोचने लगा—"पहले सूअर मेरे देखने पर भागने का प्रयत्न करते हुए भाग भी न पाते थे। आज बिना भागे, मेरे प्रति शत्रु बनकर जो मैं करता हूं, वही वे करते हैं। एक ऊंचे-से स्थल पर खड़ा हुआ उनका नेता भी है। आज मैं गया तो जीतने की सम्भावना नहीं है।"

वह रुककर अपने निवास-स्थान को लौट गया। वहां एक कुटिल जटाधारी तपस्वी रहता था, जो उसके लाये मांस को खाता था। उसने इसे खाली आते देखा तो बोला—

"पहले तू इस प्रदेश के सूअरों को अभिभूत कर उनमें से अच्छे-अच्छे सूअर मारकर खाता था। अब एक ओर अकेला होकर ध्यान कर रहा है। हे व्याघ्र! आज तुझमें बल नहीं है?"

यह सुनकर व्याघ्र ने उत्तर दिया—

"पहले ये डर के मारे अपनी-अपनी गुफाओं को खोजते हुए जिस-तिस दिशा में भाग जाते थे। अब एक-एक जगह इकट्ठे होकर आवाज लगाते हैं। आज इनका मर्दन करना मेरे लिए दुष्कर है।"

तब उसे उत्साहित करके कुटिल तपस्वी ने कहा—"जा, ज्यों ही तू चिंघाड़कर छलांग मारेगा, त्योंही सब डरकर तितर-बितर हो भाग जायेंगे।" इसके उत्साह दिलाने पर व्याघ्र बहादुर बन फिर जाकर पर्वत-शिखर पर खड़ा हुआ। देखकर सूअरों ने बढ़ई-सूअर से कहा—"स्वामी! महाचोर फिर आ गया।"

"मत डरो। अब उसे पकड़ूंगा।"

बढ़ई-सूअर दोनों गढ़ों के बीच में खड़ा था। व्याघ्र ने गरजकर उस-पर आक्रमण किया। सूअर जल्दी से पलटकर सीधे खने गढ़े में जा पड़ा। व्याघ्र वेग को न रोक सकने के कारण ऊपर-ऊपर जाकर छाज की तरह के टेढ़े खने गढ़े में अत्यन्त तंग जगह गिरकर ढेर-सा हो गया। सूअर गढ़े से निकला। बिजली की तेजी से जाकर व्याघ्र की जांघों में अपनी कापों से प्रहार कर नाभि तक चीर डाला।

लेकिन सूअरों को अभी सन्तोष नहीं था। बढ़ई-सूअर ने उनकी

आकृति देखकर पूछा—"क्या अभी सन्तुष्ट नहीं हो ?"

"स्वामी ! इस एक व्याघ्र के मर जाने से क्या हुआ। दूसरे दस व्याघ्र ले आनेवाला कुटिल तपस्वी जीता ही है।"

"यह कौन है ?"

"एक दुराचारी तपस्वी।"

"उसकी क्या सामर्थ्य है जब व्याघ्र ही मैंने मार डाला।"

उसे पकड़ने के लिए वह सूअर-समूह के साथ चला।

कुटिल तपस्वी ने जब देखा कि व्याघ्र को देर हो रही है तो सोचने लगा कि कहीं सूअरों ने उसे पकड़ तो नहीं लिया है। वह जिधर से सूअर आ रहे थे, उधर ही चला। सूअरों को आता देखकर अपना सामान लेकर भागा। सूअरों ने पीछा किया। वह सामान छोड़कर जल्दी से गूलर के पेड़ पर चढ़ गया। सूअर बोले—"स्वामी ! हम मारे गये। तपस्वी भागकर वृक्ष पर चढ़ गया।"

बढ़ई-सूअर ने सूअरियों को आज्ञा दी कि वे पानी लायें, सूअर बच्चों को आज्ञा दी कि वे खोदें और बड़े दांतोंवाले सूअरों से कहा कि वे जड़ें काटें। स्वयं गूलर की सीधी मोटी जड़ को फर्से से काटने की तरह एक प्रहार से ही गूलर के वृक्ष को गिरा दिया। घेरकर खड़े सूअरों ने कुटिल तपस्वी को जमीन पर गिराकर, टुकड़े-टुकड़े कर हड्डियां मात्र छोड़कर खा डाला। फिर बढ़ई-सूअर को गूलर की जड़ में ही बिठाकर कुटिल तपस्वी के शङ्ख में ही पानी मंगवाकर अभिषिक्त कर राजा बनाया। एक तरुण सूअरी का अभिषेक कर उसकी पटरानी बनाया।

उस वन-खण्ड में रहनेवाले देवता ने यह आश्चर्य देखकर सूअरों के सामने खड़े होकर कहा—

"आये हुए सूअरों के संघ को मेरा नमस्कार है। धन्य है यह अद्‌भुत एकता, जिससे दांतोंवाले सूअरों ने व्याघ्र को जीत लिया। सूअरों में एकता होने से ही वे मुक्त हुए।"

: ५० :

दरिद्र का दरिद्र

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व सेठ-कुल में पैदा हुए। माता पिता के मरने पर सारी संपत्ति के मालिक हुए।

उसके पास चालीस करोड़ धन तो केवल जमीन में गड़ा था। पुत्र उसका एक ही था। बोधिसत्व ने बहुत दानादि पुण्य-कर्म किया। मरने पर देवराज शक्र होकर पैदा हुए।

लेकिन उसका पुत्र नालायक निकला। उसने गली घेरकर मण्डप बनवाया और लोगों को साथ लेकर सुरा पीने बैठा। छलांग मारना, दौड़ना, गाना, नाचना आदि करनेवालों को हजार-हजार रुपये इनाम देता। उसे स्त्री की लत, सुरा की लत, मांस की लत लग गई। वह ढूंढता हुआ फिरता था कि गाना कहां है, नाचना कहां है, बजाना कहां है? तमाशे का अत्यधिक अभिलाषी होकर भटकता फिरता था। इस प्रकार थोड़े ही समय में अपना चालीस करोड़ धन और काम में आने लायक सामान नष्ट कर दिया। स्वयं दरिद्र होकर चीथड़े पहने घूमने लगा।

शक्र ने ध्यान लगाकर उसके दरिद्र होने की बात जानी। पुत्र-प्रेम के वशीभूत होकर वह उसके पास आया और सब कामनाओं की पूर्त्ति करने वाला घड़ा देकर कहा—"इस घड़े को संभालकर रखना, जिससे टूटने न पाये। यह तेरे पास रहेगा तो धन की सीमा नहीं रहेगी। अप्रमादी होकर रहना।"

उसने इन्द्र की बात न मानी और उसी समय से सुरापान करने लगा। बदमस्त होकर वह उस घड़े को आकाश में फेंकता और फिर वापिस रोकता। एक बार वह चूक गया। घड़ा जमीन पर गिरा और टूट गया। फिर दरिद्र हो गया। फिर चीथड़े लपेट, हाथ में खप्पर लेकर भीख

५०. भद्रघट जातक। ३.४.२९१

मांगता हुआ घूमने लगा। इसी प्रकार घूमते हुए एक दिन वह दूसरे की दीवार के नीचे दबकर मर गया।

: ५१ :

राज-भक्ति

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व कौवे की योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर अस्सी हजार कौओं में प्रधान सुपत्त नामक काकराज हुए। पटरानी का नाम था सुफस्सा। सेनापति का नाम था सुमुख।

एक दिन सुफस्सा के साथ वह बाराणसी-राज के घर के ऊपर से चुगने जा रहा था। रसोइये ने राजा के लिए नाना प्रकार का मत्स्य-मांसयुक्त भोजन तैयार किया था। वह बर्तनों को उघाड़कर भात निकाल रहा था। सुफस्सा को मत्स्य-मांस की गंध आई और राज-भोजन खाने की इच्छा हुई। उस दिन वह कुछ न बोली। दूसरे दिन काकराज ने कहा—"भद्रे! आ, चुगने चलें," तो उसने कहा—"मुझे एक दोहद पैदा हुआ है।"

"कैसा दोहद?"

"बाराणसी-नरेश का भोजन खाने की इच्छा है।"

"पर उसे मैं नहीं ला सकता।"

"तो देव! मैं जान दे दूंगी।"

बोधिसत्व बैठकर सोचने लगा। सुमुख ने आकर पूछा—"महाराज, असन्तुष्ट क्यों हैं?" काकराज ने वह बात कही। सेनापति बोला—"महाराज, चिन्ता न करें। आप यहीं रहें, हम भात लायेंगे।"

उसने कौवों को इकट्ठा करके वह बात सुनाई और कहा—"आओ,

---

५१. सुपत्त जातक। ३.४.२९२

भात खायें।" वह कौओं के साथ बाराणसी में प्रविष्ट हुआ। रसोईघर के समीप कौओं की टोलियां बनाकर उन्हें जहां-तहां सुरक्षा के लिए खड़ा किया। स्वयं आठ कौओं के साथ राजा का भोजन ले जाने की प्रतीक्षा करता हुआ रसोईघर की छत पर बैठा। उसने उन कौओं से कहा—"राजा का भात ले जाते समय मैं बर्तनों को गिरा दूंगा। बर्तनों के गिरते ही मेरी जान नहीं बचेगी। तुम में से चार जने भात से मुँह भरकर और चार जने मत्स्य-मांस से मुंह भरकर ले जाकर पटरानी सहित काकराज को खिलाना। अगर वह पूछे कि सेनापति कहां है तो कहना, पीछे आता है।"

रसोइये ने भोजन तैयार किया और बहंगी पर रखकर राजकुल ले चला। जब वह राजाङ्गण में पहुँचा तो काक सेनापति ने कौओं को इशारा किया। स्वयं उछलकर भात ले जानेवाले के कन्धे पर बैठकर नाखूनों से प्रहार किया। बर्छी की नोक जैसी चोट के समान अपनी चोंच से उसकी नाक पर चोट की और उड़कर दोनों परों से उसका मुँह ढक लिया। महान तल्ले पर घूमते हुए राजा ने उस कौवे की वह करतूत देखी। उसने भात लानेवाले को कहा—"अरे भात लानेवाले! बर्तन को छोड़, कौवे को ही पकड़।" उसने बर्तन छोड़ कौवे को ही जोर से पकड़ लिया। राजा बोला—"यहां आ।"

उस समय कौवे आये और जितना स्वयं खा सकते थे, खाकर जैसे कहा गया था, वैसे लेकर गये। तब बाकी कौवों ने आकर शेष भोजन किया। इन आठ जनों ने जाकर रानी सहित काकराज को खिलाया। सुफस्सा का दोहद शान्त हो गया।

भात लानेवाला, कौवे को राजा के पास ले गया। राजा ने उससे पूछा—"अरे काक! तूने मेरा भय नहीं किया। भात लानेवाले की नाक तोड़ दी। भात के बर्तन फोड़ डाले। अपनी जान खतरे में डाली। ऐसा काम क्यों किया?"

"महाराज! हमारा राजा बाराणसी के पास रहता है। मैं उसका सेनापति हूँ। उसकी सुफस्सा नामक भार्या को तुम्हारा भोजन खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उस राजा का भेजा हुआ मैं यहाँ आया। मैंने अपने स्वामी

की आज्ञा का पालन किया और इसीलिए नाक पर चोट की।"

राजा ने उसकी बात सुनकर सोचा—"हम मनुष्यों को बहुत-सा धन देकर भी अपना सुहृद नहीं बना सकते। ग्रामादि देकर भी हमें ऐसे आदमी नहीं मिलते जो हमारे लिए जीवन बलिदान कर सकें। यह कौआ होकर भी अपने राजा के लिए जान देता है। बड़ा सत्यवादी है, मधुरभाषी है तथा धार्मिक है।"

उसके इन गुणों से प्रसन्न होकर राजा ने श्वेत छत्र से उसकी पूजा की। श्वेत छत्र से पूजित होने पर उसने अपने राजा सुपत्त का ही गुणानुवाद किया।

: ५२ :

पराक्रम की विजय

पूर्व समय में कलिङ्ग राष्ट्र के दन्तपुर नगर में कलिङ्गराज राज्य करता था। उस समय अस्सक राज्य के पोतिल नगर में अस्सक नाम का राजा राज्य करता था। कलिङ्गराज के पास सैन्य बल था। स्वयं भी वह हाथी-बलवाला था। उसे कोई भी ऐसा नहीं दिखाई देता था, जो उससे लड़ सके। उसने युद्धेच्छा के वशीभूत हो अमात्यों से कहा—"मेरी युद्ध करने की इच्छा है। प्रतिपक्षी नहीं दिखाई देता। क्या करूं?"

"महाराज, एक उपाय है। आपकी चारों लड़कियां सुन्दर रूपवाली हैं। उन्हें अलंकृत कराके, पर्देवाले रथ में बैठा कर, सेना के साथ ग्राम-निगम तथा राजधानियों में चक्कर लगवायें। जो राजा उन्हें अपने घर में रखना चाहेगा, उससे युद्ध करेंगे।"

राजा ने वैसा ही कराया। जहां-जहां राजकुमारियां जातीं, राजा लोग भय

५२. चुल्लकालिंग। ४.१.३०१

से उन्हें नगर में न आने देते। भेंट भेजकर उन्हें बाहर ही रखते। इस प्रकार सारे जम्बुद्वीप में घूमकर अस्सक राज के पोतलि नगर पहुँचीं। अस्सक-राज ने भी नगर-द्वार बन्द करवा लिये और भेंट भेजी। उसका नन्दिसेन नामक अमात्य पंडित था, बुद्धिमान था और था उपाय-कुशल। उसने सोचा—"इन राज-कन्याओं को सारे जम्बूद्वीप में घूम आने पर भी कोई प्रतिस्पर्द्धी नहीं मिला। ऐसा होने पर तो सारा जम्बूद्वीप तुच्छ-सा हो जाता है। मैं कलिङ्गराज के साथ युद्ध करूंगा।" नगर-द्वार पर पहुँचकर उसने द्वार-पालों को नगर-द्वार खोल देने के लिए कहा और आज्ञा दी कि उन्हें नगर में प्रवेश करने दो।

उसने उन लड़कियों को अस्सक-राजा को दिखाकर कहा—"आप डरें नहीं। ये सुन्दर, रूपवाली कन्याएं हैं। इन्हें अपनी रानियां बना लें।" उसने उन्हे अभिषिक्त करा, उनके साथ आये आदमियों को विदा किया—"जाओ, अपने राजा से कहो कि अस्सक-राज ने राज-कन्याओं को रानी बना लिया।" उन्होंने जाकर कहा। कलिङ्ग-राज उसी समय बड़ी भारी सेना लेकर निकल पड़ा। उसने कहा—"अस्सक-राज मेरी सामर्थ्य से अभी परिचित नहीं है।"

नन्दिसेन ने जब उसका आगमन सुना तो सन्देश भिजवाया—"अपनी ही सीमा में रहे। हमारी सीमा में न आयें। दोनों राजाओं की सीमाओं के बीच ही युद्ध होगा।" उसने लेख सुना तो अपनी राज्य-सीमा पर रुका। अस्सक-नरेश भी अपनी राज्य-सीमा पर रुका।

उस समय बोधिसत्व ऋषि-प्रव्रज्या ले उन दोनों राज्यों के बीच पर्ण-कुटी बना रहते थे। कलिङ्ग-नरेश ने सोचा—"श्रमण कुछ जाननेवाले होते हैं। कौन कह सकता है, क्या हो। किसकी जीत हो, किसकी हार हो। तपस्वी को पूछूंगा।"

वह भेस बदलकर बोधिसत्व के पास गया। प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—"भन्ते! कलिङ्ग-नरेश तथा अस्सकराज युद्ध करने की इच्छा से अपनी-अपनी सीमा में तैयार खड़े हैं।

इनमें किसकी जय होगी और किसकी पराजय ?"

"महापुण्यवान ! मैं नहीं जानता, किसकी जीत होगी, किसकी हार। हाँ, देवराज शक्र यहाँ आता है। उससे पूछकर कहूंगा। कल आना।"

शक्र बोधिसत्व की सेवा में आ विराजमान हुआ। बोधिसत्व ने उससे यह बात पूछी। उसने कहा—"भन्ते, कलिङ्ग विजयी होगा। अस्सक पराजित होगा। इसके पूर्व लक्षण दिखाई देंगे।"

कालिङ्ग ने अगले दिन आकर पूछा। बोधिसत्व ने कह दिया। बिना यह जाने कि पूर्व लक्षण क्या होंगे, खुशी से फूला हुआ वह चला गया। यह बात फैल गई। इसे सुन अस्सकराज ने नन्दिसेन को बुलवाकर पूछा—"कलिङ्ग विजयी होगा। हम हारेंगे। अब क्या करना चाहिए ?"

"महाराज, इसे कौन जानता है कि किसकी जीत होगी, किसकी हार होगी ? आप चिन्ता न करें। वह राजा को आश्वासन देकर बोधिसत्व के पास पहुँचा। उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ पूछा—"भन्ते ! किसकी विजय होगी ? कौन पराजित होगा ?"

"कलिङ्ग जीतेगा। अस्सक हारेगा।"

"भन्ते ! विजयी का क्या पूर्व लक्षण होगा और पराजित होनेवाले का क्या ?"

"महापुण्यवान ! विजयी का रक्षक देवता सर्वश्वेत बृषभ होगा। दूसरे का एकदम काला। दोनों के रक्षक देवता जीत-हार का निर्णय करेंगे।"

यह सुनकर नन्दिसेन राजा के एक हजार महायोद्धा मित्रों को एकत्र कर पास के पर्वत पर ले गया। पूछा—

"भो ! अपने राजा के लिए जीवन-परित्याग कर सकोगे ?"

"हां, कर सकेंगे।"

"तो इस प्रपात से गिरो।"

वे गिरने लगे। उन्हें रोका—"बस, गिरो मत। अपने राजा के लिए जीवन-परित्याग किया है, समझकर डटकर लड़ो।" उन्होंने स्वीकार किया।

संग्राम उपस्थित होने पर 'मेरी विजय होगी ही' सोचकर कलिङ्ग ढीला पड़ गया। उसकी सेना भी यही सोचकर ढीली पड़ गई। सैनिक कवच उतारकर यथारुचि पृथक-पृथक हो घूमने लगे। जोर लगाने के समय जोर नहीं लगाया। दोनों राजा घोड़े पर चढ़कर युद्ध करने के लिए एक दूसरे के पास आये। दोनों के रक्षक-देवता भी पहले ही पहुँचे। वे परस्पर युद्ध करने के लिए तैयार हुए। लेकिन वे बैल केवल दोनों राजाओं को ही दिखाई देते थे, और किसी को नहीं। नन्दिसेन ने अस्सकराज से पूछा—

"महाराज! आपको देवता दिखाई देता है?"

"हाँ, दिखाई देता है।"

"कैसा आकार है?"

कलिङ्ग का रक्षक-देवता सर्वश्वेत वृषभ के रूप में दिखाई दे रहा है, हमारा रक्षक-देवता एकदम काला थका हुआ-सा।"

"महाराज! आप भयभीत न हों। हम जीतेंगे। कलिङ्ग की हार होगी। आप घोड़े की पीठ से उतरकर यह शक्ति-आयुध लें, सुशिक्षित सैन्धव घोड़े को पेट के पास बाये हाथ से दबायें। इन एक सहस्र आदमियों के साथ तेजी से जायें। जाकर कलिङ्ग के रक्षक-देवता को शक्ति-प्रहार से गिरा दें। तब हम हजार जने हजार शक्तियों से प्रहार करेंगे। इस प्रकार कलिङ्ग का रक्षक-देवता नष्ट हो जायगा। तब कलिङ्ग की हार होगी और हम जीत जायेंगे।"

राजाने "अच्छा" कहकर नन्दिसेन के सुझाव के अनुसार जाकर शक्ति से प्रहार किया। रक्षक-देवता का वहीं प्राणान्त हो गया। उसी समय कलिङ्ग हारकर भागा। कलिङ्ग ने भागते समय उस तपस्वी के पास जाकर पूछा—

"हे ब्रह्मचारी! तूने कहा था कि कालिङ्गों की विजय होगी और अस्सक वासियों की पराजय। महात्मा लोग भी झूठ बोलते हैं?"

तपस्वी ने उत्तर दिया—"महाराज! पराक्रमी पुरुष से देवता भी

हार मानते हैं। संयम, एकाग्रता तथा पुरुष-पराक्रम के कारण ही अस्सकों की विजय हुई है।"

: ५३ :

सदाचार की परीक्षा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर वहीं वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य के पास पांच सौ विद्यार्थियों के साथ विद्या सीखने लगे। आचार्य की एक आयु-प्राप्त लड़की थी। आचार्य ने सोचा कि "इन विद्यार्थियों के शील की परीक्षा कर जो सदाचारी होगा, उसे ही पुत्री दूंगा।" उसने विद्यार्थियों को बुलाकर कहा—"तात ! मेरी लड़की आयु-प्राप्त हो गई। मैं उसका विवाह करूंगा। तुम अपने सम्बन्धियों की आंख बचाकर वस्त्र तथा अलंकार लाओ। जिन्हें किसीने न देखा हो ऐसे ही वस्त्रालंकार ग्रहण करूंगा।"

उन विद्यार्थियों ने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। अपने सम्बन्धियों की आंखें बचाकर वे आभरण चुराकर लाने लगे। जो कुछ भी कोई लाता, आचार्य उसे पृथक-पृथक रखते जाते। बोधिसत्व कुछ नहीं लाये। आचार्य ने पूछा—"तात ! तू कुछ नहीं लाया ?"

"आचार्य ! हां।"

"तात ! क्यों ?"

"आप किसीके देखते लाई चीज ग्रहण नहीं करते। मैं पाप करने के लिए कोई छिपी जगह नहीं देखता। और जहां कोई भी नहीं दिखाई देता, वहां मैं स्वयं तो होता ही हूँ।"

आचार्य ने उस पर प्रसन्न होकर कहा—"तात ! मेरे घर में धन है।

५३. सीलवीमंसक जातक। ४.१.३०५

मैंने तो सदाचारी को लड़की देने की इच्छा से विद्यार्थियों की परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया। मेरी लड़की तुम्हारे ही योग्य है।''

उसने अलंकृत करके लड़की बोधिसत्व को दी और शेष विद्यार्थियों से कहा—"तुम जो धन लाये हो, उसे अपने घर ले जाओ।''

: ५४ :

माली की लड़की

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसके अर्थधर्मानुशासक अमात्य थे।

एक दिन राजा खिड़की खोले राजाङ्गण की तरफ देखता हुआ खड़ा था। उसी समय एक माली की लड़की बेरों की टोकरी सिर पर लिये 'बेर लो, बेर लो' कहती हुई राजाङ्गण में से गुजर गई। वह लड़की बहुत सुन्दर थी और उसकी चढ़ती जवानी थी। राजा उस पर आसक्त हो गया। उसने खोज कराई कि उसकी शादी हो गई है कि नहीं। जब उसे मालूम हुआ कि वह अभी किसीकी नहीं है तो उसे बुलाकर अपनी पटरानी बनाया। बहुत सम्पत्ति दी। वह राजा की प्रिया हुई, मन को बहुत अच्छी लगनेवाली।

एक दिन राजा सोने की थाली में बेर रखे बैठा खा रहा था। सुजाता देवी ने राजा को बेर खाते देखकर कहा—"महाराज! यह सोने की थाली में रखे हुए सुन्दर लाल वर्ण अण्डे के समान क्या हैं जिन्हें आप खा रहे हैं?''

राजा को क्रोध आ गया। उसने सोचा—"बेर बेचनेवाली माली की लड़की अपने कुल के बेरों को भी नहीं पहचानती। तब उसने उससे

---

५४. सुजाता जातक। ४.१.३०६

कहा—"हे देवि ! जिन्हें तू पहले ही सिरमुण्डी, चिथड़े पहने, अपनी गोद में इकट्ठे करती थी, ये यही तेरे कुल के फल हैं।"

राजा ने हुक्म दिया—"यह यहां उबल रही है, इसका यहां मन नहीं लगता। इसे राज-भोग छेद रहे हैं। इसे वहीं ले जाओ, जहां यह जाकर बेर चुगेगी।"

बोधिसत्व ने सोचा—"मुझे छोड़ दूसरा कोई इनका मेल न करा सकेगा। मैं राजा को समझाकर इसे घर से न निकालने दूंगा।" उन्होंने जाकर राजा को समझाया—

"महाराज ! ऊंचे स्थान पर पहुँची स्त्रियों में यह दोष होते ही हैं। हे देव ! सुजाता को क्षमा करें। हे राजश्रेष्ठ ! इस पर क्रोध न करें।"

राजा ने बोधिसत्व के कहने से देवी के उस अपराध को क्षमा कर दिया और उसे यथास्थान रहने दिया। तब से दोनों मेल से रहने लगे।

: ५५ :

सिंह और कठफोड़ा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में कठफोड़ पक्षी की योनि में पैदा हुए।

एक दिन एक सिंह के गले में मांस खाते समय हड्डी फंस गई। गला सूज गया। शिकार नहीं कर सकता था। बड़ी वेदना होती थी। जिस समय कठफोड़ पक्षी चुगने गया, उसने सिंह की यह अवस्था देखी। डाल पर बैठे-ही-बैठे उसने पूछा—"मित्र ! तुझे क्या कष्ट है ?" उसने वह हाल कहा। तब पक्षी बोला—

"मित्र ! मैं यह हड्डी निकाल तो दूं लेकिन भय से तेरे मुंह में प्रविष्ट

---

५५. जवसकुण जातक। ४.१.३०८

होने का साहस नहीं होता। कहीं तू मुझे खा ही न जाय!"

"मित्र! डर मत। मैं तुझे नहीं खाऊंगा। मेरे प्राण बचा।"

"अच्छा" कहकर उसने सिंह को करवट से लिटाया। मन में सोचा—"कौन जाने, यह क्या कर बैठे।" इसलिए उसने उसके नीचे और ऊपर के जबड़े में एक लकड़ी लगा दी, जिसमें वह मुंह न बन्द कर सके। तब मुंह में घुसकर हड्डी के सिरे पर चोंच से चोट की। हड्डी गिरकर बाहर निकल आई। उसने हड्डी गिराकर लकड़ी को चोंच से गिरा दिया और सिंह के मुंह से निकलकर शाखा पर जा बैठा।

नीरोग होकर एक दिन सिंह जंगली भैंसे को खा रहा था। पक्षी ने सोचा—"इसकी परीक्षा करूंगा।" उसने उसके ऊपर शाखा पर लटकते सिंह से पूछा—

"हे मृगराज! यथाशक्ति हमने तेरा उपकार किया था। तुझे नमस्कार है। कुछ हमें भी मिले।"

यह सुनकर शेर बोला—

"नित्य शिकार खेलनेवाले, रक्त पीनेवाले के मुंह में जाकर यही बहुत है कि आज तू जीता है।"

: ५६ :

आम की खोज

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व चाण्डाल योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर कुटुम्ब पालने लगे। एक बार उसकी स्त्री को आम का दोहद पैदा हुआ। वह बोली—"स्वामी आम खाना चाहती हूं।"

---

२६. छुपक जातक। ४.१.३०६

"भद्रे ! इस समय आम नहीं है। कोई दूसरा खट्टा फल लाऊंगा।"

"स्वामी ! मुझे आम मिलेगा तभी जीऊंगी, नहीं तो जीती नहीं रहूँगी।"

वह उस पर आसक्त था। सोचने लगा—"आम कहां मिलेगा ?" उस समय बाराणसी-नरेश के उद्यान में आम फलता था। उसने सोचा—"वहां से पका आम लाकर इसका दोहद शान्त करूंगा।" वह रात को उद्यान में पहुँचा। आम के पेड़ पर फल खोजता हुआ एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमता रहा। खोजते-खोजते ही रात बीत गई। उसने सोचा—"यदि अब उतरकर जाऊंगा तो यहां के लोग मुझे देख चोर समझकर पकड़ लेंगे।" रात को वह एक वृक्ष पर चढ़कर छिप रहा।

उस समय बाराणसी-राजा पुरोहित से वेद-मन्त्र पढ़ता था। वह उद्यान में आम्र-वृक्ष की छाया में ऊंचे आसन पर बैठकर आचार्य को नीचे आसन पर बैठाकर मन्त्र सीखता था। बोधिसत्व ने ऊपर बैठे-बैठे सोचा—"यह राजा अधार्मिक है, जो ऊंचे आसन पर बैठकर मन्त्र सीखता है। ब्राह्मण भी अधार्मिक है, जो नीचे आसन पर बैठकर मन्त्र सिखाता है और, मैं भी अधार्मिक हूँ, जो स्त्री के कारण अपने जीवन की परवाह न कर आम ले जा रहा हूँ।" वह वृक्ष से उतरते हुए एक लटकती हुई शाखा के सहारे उन दोनों के बीच में आ खड़ा हुआ। बोला—"महाराज ! मैं नष्ट हुआ, तुम मूर्ख हो और पुरोहित मर गया है।" राजा ने पूछा—"क्यों ?"

"ये सब नीच कर्म हैं। धर्म को दोनों ही नहीं देखते हो। दोनों ही धर्म से च्युत हो — जो यह मन्त्र सीखता है और जो यह मन्त्र सिखाता है।"

यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा—

"मैं इस राजा के यहां अच्छी तरह पके मांस के साथ शालि धान का भोजन करता हूं। इसीलिए ऋषियों द्वारा सेवित इस धर्म का पालन नहीं करता।"

"इस स्थान को छोड़ अन्यत्र जा। यह संसार बड़ा है। दूसरे भी

प्राणी भोजन पकाते ही हैं। ऐसा न हो कि यह तेरा किया अधर्म तुझे वैसे ही फोड़ दे जैसे पत्थर घड़े को। हे ब्राह्मण! उस सम्पत्ति को धिक्कार है, उस धन को धिक्कार है, जो पापपूर्ण जीविका या अधर्माचरण से प्राप्त हो।"

राजा ने उसके धार्मिक भाव से प्रसन्न होकर पूछा—

"तुम्हारी जाति क्या है?"

"देव! मैं चाण्डाल हूं।"

"भो! यदि तू जातिवाला होता तो मैं तुझे राजा बनाता। अब से मैं दिन का राजा हूंगा, तू रात का।"

उसने अपने गले में पहनी फूलों की माला उसके गले में डालकर उसे नगर का कोतवाल बनाया। तब से राजा उसका उपदेश मानकर आचार्य का आदर करके नीचे आसन पर बैठकर मंत्र सीखने लगा।

: ५७ :

क्षमा की पराकाष्ठा

पूर्व समय में कलाबु नाम का काशीराज राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व अस्सी करोड़ धनवाले ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। उनका नाम था कुण्ड-कुमार। बड़े होने पर वह तक्षशिला में सब शिल्प सीखकर आया और कुटुम्ब को पालने लगा। माता-पिता के मरने पर उसने धनराशि की ओर देखते हुए सोचा—"यह धन कमाकर मेरे सम्बन्धी यहीं छोड़ गये, बिना साथ लिये ही चले गये। मुझे इसे साथ ले चलना चाहिए।" उसने अपना वह सारा धन विचेय्य दान करके अर्थात् जो-जो कुछ भी ले आय, वह उसे देकर दान दे दिया। स्वयं हिमालय में प्रवेश कर प्रव्रजित

५७. खन्तिवादी जातक। ४.२.३१३

हो गया। फल-मूल खाता हुआ बहुत समय तक वहीं रहा। फिर नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती में आया। क्रमानुसार वाराणसी पहुँचा। राजोद्यान में रहने लगा। अगले दिन नगर में भिक्षाटन करता हुआ सेनापति के गृह-द्वार पर पहुँचा। सेनापति उसकी चर्या से प्रसन्न होकर उसे घर में लिवा लाया। अपने लिए तैयार भोजन कराया और वचन लेकर उसे वहीं राजोद्यान में बसाया।

एक दिन कलाबु राजा शराब के नशे में मस्त, तमाशों से घिरा हुआ बड़ी शान के साथ उद्यान में पहुँचा। वहां उसने मंगल शिलापट पर बिछौना बिछवाया। एक प्रिय, मनोज्ञ स्त्री की गोद में सोया। गाने-बजाने में होशियार नर्तकियां गाना-बजाना करने लगीं। देवेन्द्र शक्र की तरह बड़ा ठाट-बाट था। राजा को नींद आ गई। उन स्त्रियों ने सोचा—"जिसके लिए हम गाना-बजाना करती हैं, वह ही सो गया। अब गाने-बजाने से क्या लाभ ?" वे वीणा, तुरिया आदि जहां-तहां छोड़कर उद्यान में घूमने लगीं और फल-फूल तथा पत्तों से अनुरक्त होकर बाग में रमण करने लगीं। उस समय बोधिसत्व उस उद्यान में पुष्पित शालवृक्ष की छाया में प्रव्रज्या-सुख का आनन्द लेते हुए वैसे ही बैठे थे, जैसे श्रेष्ठ मस्त हाथी।

उद्यान में घूमती हुई वे स्त्रियां उसे देखकर बोलीं—"आओ आओ ! आओ, इस वृक्ष की छाया में प्रव्रजित बैठा है। जबतक राजा सोता है तबतक हम इसके पास बैठकर कुछ सुनें।" वे प्रणाम कर घेरकर बैठीं। बोलीं—"हमारे योग्य कुछ उपदेश दें।" बोधिसत्व ने उन्हें धर्मोपदेश दिया।

उस स्त्री की गोद के हिलने से राजा की आंख खुल गई। जब उसने जागने पर उन्हें न देखा तो बोला—"कहां गईं वे चाण्डालिनियां ?"

"महाराज ! वे एक तपस्वी को घेरकर बैठी हैं।"

राजा को क्रोध आया। उसने तलवार निकाली और बड़े वेग से चला—"उस दुष्ट तपस्वी को सबक सिखाता हूँ।"

उन स्त्रियों ने राजा को क्रोध में भरा आता देखा तो उनमें जो राजा की अधिक प्रिया थी, उसने जाकर राजा के हाथ से तलवार ले ली। इस प्रकार उन्होंने राजा को शान्त किया। उसने आकर बोधिसत्व के पास खड़े होकर पूछा—

"श्रमण! तुम्हारा क्या वाद है?"

"महाराज! क्षमावाद।"

"यह क्षमा क्या?"

"गाली देने पर, प्रहार करने पर, मजाक करने पर अक्रोधी रहना।"

"अभी देखता हूँ, तुझ में क्षमा है या नहीं।" कहकर राजा ने जल्लाद को बुलवाया।

वह अपने स्वभावानुसार कुल्हाड़ा और कण्टेदार चाबुक लिये, पीतवस्त्र तथा लाल माला धारण किये आ पहुँचा। राजा को प्रणाम कर बोला—"क्या आज्ञा है?"

"इस चोर, दुष्ट तपस्वी को पकड़, घसीट, जमीन पर गिरा, चाबुक लेकर आगे-पीछे दोनों ओर दो हजार चाबुक लगा।"

उसने वैसा ही किया। बोधिसत्व की खलड़ी उतर गई, मांस फट गया, खून बहने लगा।

राजा ने पूछा—"भिक्षु! क्या वादी हो?"

"महाराज,! क्षमावादी। क्या तुम समझते हो कि मेरी चमड़ी में क्षमा छिपी है? नहीं महाराज! मेरी चमड़ी में क्षमा नहीं छिपी है। तुम उसे नहीं देख सकते। क्षमा मेरे हृदय में है।"

चाण्डाल ने पूछा—"क्या करूं महाराज?"

"इस दुष्ट तपस्वी के दोनों हाथ काट डाल।"

उसने कुल्हाड़ा ले गण्डक पर रखकर हाथ काट डाले। तब राजा ने कहा—"पैर काट डाल।"

उसने पांव काट डाले। हाथ-पांव की जड़ों से घड़े के मुंह में से लाख-रस बहने की तरह रक्त बहने लगा।

राजा ने फिर पूछा—"क्या वादी है ?"

"महाराज ! क्षमावादी। तुम समझते हो कि क्षमा हाथ-पांव के मूल में है। वह यहां नहीं है। मेरी क्षमा बड़ी गहराई में प्रतिष्ठित है।"

राजा ने आज्ञा दी—"कान, नाक काट डाल।" उसने कान, नाक काट डाले। सारा शरीर लहू-लुहान हो गया।

फिर पूछा—"क्या वादी है ?"

"महाराज ! क्षमावादी। ऐसा न समझें कि मेरी क्षमा कान, नाक के मूल में प्रतिष्ठित है। मेरी क्षमा हृदय के अन्दर बहुत गहराई में स्थित है।"

राजा उसके हृदय-स्थल पर एक ठोकर मारकर चल दिया—

"दुष्ट तपस्वी ! तेरी क्षमा तुझे उठाकर बिठाये।"

उसके चले जाने पर सेनापति ने बोधिसत्व के शरीर से रक्त पोंछा। हाथ-पांव, नाक तथा कान के मूल पर वस्त्र बांधा। बोधिसत्व को धीरे से बिठाकर प्रणाम करके निवेदन किया—"भन्ते ! यदि आप क्रोधित हों तो केवल इस राजा पर क्रोधित हों, जिसने इतना कष्ट पहुंचाया है। किसी और पर क्रोध न करें।"

यह सुनकर बोधिसत्व ने कहा—"जिस राजा ने मेरे हाथ-पांव तथा नाक-कान काट डाले, वह चिरकाल तक जीवित रहे। मेरे जैसे लोग क्रोध नहीं करते।"

राजा ज्यों ही उद्यान से निकलकर बोधिसत्व की आंख से ओझल हुआ, त्यों ही यह दो लाख चालीस हजार योजन महापृथ्वी फट गई। अवीचि नरक से ज्वाला ने निकलकर उसे वैसे ही लपेट लिया, जैसे कुल-प्राप्त लाल कम्बल लपेट ले।

वह उद्यान के द्वार पर ही पृथ्वी में घुस महाअवीचि नरक में पहुँचा। बोधिसत्व उसी दिन काल कर गये। राज-पुरुषों तथा नागरिकों ने गन्ध-माला तथा दीप-धूप हाथ में लेकर बोधिसत्व का शरीर-कृत्य किया।

: ५८ :

लोह कुम्भी

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व काशी जनपद के किसी गांव में पैदा हुए। बड़े होने पर काम-भोगों को छोड़ ऋषियों की प्रव्रज्या ग्रहण की। ध्यान तथा अभिज्ञा उत्पन्न कर, ध्यान में ही रत रहकर हिमालय में रमणीय खण्ड में रहते थे।

उस समय बाराणसी-राज ने स्वप्न में चार नारकीयों की चार प्रकार की स्पष्ट आवाजें सुनीं। उसने ब्राह्मणों को बुलाकर स्वप्न सुनाया और चारों प्रकार के शब्दों के अर्थ और हेतु पूछे। ब्राह्मणों ने बताया कि "महा-राज पर एक भारी खतरा आनेवाला है और वह सर्वचतुष्पद यज्ञ द्वारा शांत हो सकता है।" उनके ऐसा कहने पर राजा ने यज्ञ कराना स्वीकार किया। पुरोहितों ने ब्राह्मणों के साथ यज्ञ-कुण्ड बनवाया। अनेक प्राणी खम्बे के पास लाये गये।

उस समय बोधिसत्व ने मैत्री-भावना-युक्त चारिका करते हुए दिव्य-चक्षु से लोक को देखा। जब उन्हें यह दिखाई दिया तब उन्होंने सोचा "कि मुझे जाना चाहिए। अनेक जनों का कल्याण होगा।" वे ऋद्धि-बल से आकाश में उठकर बाराणसी-राज के उद्यान में उतरे। मंगलशिलापट पर सुवर्ण प्रतिमा की तरह बैठे।

तब पुरोहित के ज्येष्ठ शिष्य ने आचार्य के पास आकर निवेदन किया—"आचार्य! क्या हमारे वेदों में पराये को मारकर कल्याण करना असम्भव नहीं बताया है?"

"तू राज धन चाहता है तो चुप रह। हम बहुत मत्स्य-मांस खायेंगे और धन पायेंगे।"

५८. लोह कुम्भी जातक। ४.२.३७४

"मैं इसमें सहायक नहीं होऊंगा।"

वह निकलकर राज-उद्यान में पहुँचा। वहां बोधिसत्व को देखकर प्रणाम किया। कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठा।

बोधिसत्व ने पूछा—"माणवक! क्या राजा धर्मानुसार राज्य करता है?"

"भन्ते! राजा धर्मानुसार राज्य करता है। किन्तु राजा को रात में चार आवाजें सुनाई दीं। उसने ब्राह्मणों से पूछा। ब्राह्मणों ने कहा कि सर्व-चतुष्पद यज्ञ करके कल्याण करेंगे! राजा पशु-घात करके अपना कल्याण करना चाहता है। अनेक जन्तु यज्ञ के पास ले जाये गये हैं। क्या भन्ते! आप जैसे सदाचारियों के लिए यह उचित नहीं है कि उन आवाजों की उत्पत्ति बताकर अनेक जन्तुओं को मृत्यु के मुख से बचायें?"

"माणवक! राजा हमें नहीं जानता, हम भी उसे नहीं जानते; लेकिन हम इन आवाजों की उत्पत्ति जानते हैं। यदि राजा हमारे पास आकर पूछे तो हम कहकर उसका शक मिटा देंगे।"

"तो भन्ते! मुहूर्त-भर यहीं रहें। मैं राजा को लाऊंगा।"

"माणवक! अच्छा।"

उसने जाकर राजा को यह बात कही और राजा को ले आया। राजा ने बोधिसत्व को प्रणाम करके पूछा—"क्या आप सचमुच मेरे सुने शब्दों का कारण जानते हैं?"

"महाराज! हां।"

"भन्ते! कहें।"

"महाराज! वे पूर्व जन्म में दूसरों की स्त्रियों से व्यभिचार करनेवाले रहे हैं। वे बाराणसी के आस-पास चार लोह कुम्भी नरकों में पैदा हुए। उबलते हुए, लटकते, पिघले लोहे में बुलबुले उठाते हुए पकतेर हे। तीस हजार वर्ष तक नीचे रहकर, कुम्भी तल से टकराकर ऊपर उठकर तीस हजार वर्ष बाद कुम्भीमुख देखा। चारों जने चार गाथाएं पूरी करके कहना चाहते थे। वैसा न कर सके। एक-एक ही अक्षर कहकर फिर लोह कुम्भी में डूब

गये। उनमें से 'दु' कहकर डूब जानेवाला प्राणी यह कहना चाहता था—

दुज्जीवित अजीविम्ह ये सत्ते न ददम्हसे।
विज्जमानेसु भोगेसु दीपं ना कम्ह अत्तनी ॥"

(पास होने पर भी जो नहीं दिया, यह जीवन भी खराब जीवन रहा। भोगों के होने पर भी अपने लिए द्वीप नहीं बनवाया।)

बोधिसत्व ने कहा—"वह कह न सका।" बोधिसत्व ने अपने ज्ञान ही से वह सब गाथा पूरी की। शेष गाथाएं भी इसी प्रकार पूरी कीं। उनमें 'स' कहकर जो बोलना चाहता था, उसकी गाथा यह है—

सट्ठिवस्स सहस्सानि परिपुण्णानि सब्बसो।
निरये पच्चमानानं कदा अन्तो भविस्सति ॥

(हर प्रकार से पूरे साठ वर्ष तक नरक में जलते रहने का कब अन्त होगा ?)

'न' कहकर बोलने की इच्छा रखनेवाले की यह गाथा थी—

नत्थि अन्तो कुतो अन्तो न अन्तो परिदिस्सति।
तदाहि पकतं पापं भयं तुह्यं च मारिस ॥

(अन्त नहीं है। अन्त कहां से होगा ? अन्त दिखाई नहीं देता। मित्र ! मेरा और तुम्हारा पाप विशेष रहा है।)

'स' कहकर बोलने की इच्छा रखनेवाले की यह गाथा है—

सोहं नून इतो गन्त्वा योनिं लद्धान मानुसिं।
वदञ्ञू सील सम्पन्नो काहामि कुसलं बहुं ॥"

(अब मैं निश्चय से यहां से जाकर मनुष्य-देह प्राप्त करने पर दयालु तथा सदाचारी होकर बहुत कुशल-कर्म करूंगा।)

इस प्रकार बोधिसत्व ने एक-एक गाथा कहकर उसको समझाया—"महाराज ! वह नारकीय पापी यह गाथा पूरी करके कहना चाहता था, लेकिन अपने पाप की महानता के कारण वैसा न कर सका। वह अपने कर्म को करता हुआ चिल्लाया। आपको इस आवाज के सुनने के कारण कोई खतरा नहीं है। आप न डरें।"

राजा ने सब प्राणियों को मुक्त कराके, सोने का ढोल पिटवाकर यज्ञ-कुण्ड नष्ट करा दिया। बोधिसत्व प्राणियों का कल्याण करके कुछ दिन वहीं रहे। फिर हिमालय में जाकर ध्यानावस्थित होकर ब्रह्मलोक में पैदा हुए।

: ५९ :

चन्द्रमा शशाङ्क क्यों है ?

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व खरगोश की योनि में पैदा होकर जंगल में रहते थे। उस जंगल में एक तरफ पर्वत, एक तरफ नदी और एक तरफ प्रत्यन्त ग्राम था। बोधिसत्व के तीन मित्र थे— बन्दर, गीदड़ और ऊदबिलाव।

ये चारों एक साथ रहते हुए अपना-अपना भोजन खोज शाम को एक जगह इकट्ठे होते। खरगोश पण्डित तीनों जनों को उपदेश देता —"दान देना चाहिए, शील की रक्षा करनी चाहिए, उपोसथ व्रत रखना चाहिए।" वे उसका उपदेश मान अपने-अपने निवास-स्थान पर जाकर रहते।

इस प्रकार समय व्यतीत होते रहने पर एक दिन बोधिसत्व ने आकाश में चन्द्रमा को देखा। यह जानकर कि कल ही उपोसथ व्रत है, उसने शेष तीनों को कहा—"कल उपोसथ है। तुम भी तीन जने शील ग्रहण कर उपोसथ-व्रतधारी बनो। शील में प्रतिष्ठित होकर जो दान दिया जाता है, उसका महान फल होता है। इसलिए किसी याचक के आने पर अपने खाने के आहार में से उसे देकर खाना।" वे स्वीकार करके अपने निवास-स्थान पर चले गये।

अगले दिन उनमें से ऊदबिलाव प्रातःकाल ही शिकार खोजने गंगा

२१. सस जातक। ४.२.३१६

के तीर पर पहुँचा। एक मछुवे ने सात रोहित मछलियाँ पकड़ीं और उन्हें रस्सी में बाँधकर गंगा-किनारे बालू में दबा दिया। वह और मछलियाँ पकड़ने के लिए गंगा के नीचे की ओर जा रहा था। ऊदबिलाव ने मछली की गन्ध सूंघ, बालू हटा, मछलियों को निकालकर तीन बार घोषणा की—"कोई इनका मालिक है?" जब कोई मालिक न दिखाई दिया तो रस्सी के सिरे को मुंह से पकड़कर अपने निवास-स्थान पर लाकर रख दिया। "समय पर खाऊंगा" सोच, उन्हें देख, वह अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

गीदड़ ने भी निकलकर भोजन खोजते हुए एक खेत की रखवाली करनेवाले की झोंपड़ी में दो कबाब की सींखें, एक गोह और एक दही की हाँडी देखी। उसने तीन बार घोषणा की—"कोई इनका मालिक है?" जब कोई न दिखाई दिया तो दही की हाँडी लटकाने की रस्सी को गर्दन में लटका, कबाब की सींख और गोह को मुंह में उठा लाकर अपनी मांद में रखा। सोचा—"समय पर खाऊंगा।" वह भी अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

बन्दर भी वनखण्ड में जाकर आम का गुच्छा ले आया। वह भी उसे अपने निवास-स्थान पर रखकर "समय पर खाऊंगा" सोच, अपने शील का विचार करता हुआ लेट रहा।

बोधिसत्व तो "समय पर ही निकलकर बढ़िया घास खाऊंगा" सोच, अपनी झाड़ी में ही पड़े-पड़े विचार करने लगे—"मेरे पास आनेवाले मंगतों को मैं घास नहीं दे सकता। तिल-तण्डुल भी मेरे पास नहीं। यदि मेरे पास मंगता आया तो मैं उसे अपना शरीर-मांस दूंगा।"

उसके शील-तेज से शक्र का पाण्डुकम्बलवर्ण शिलासन गरम हो गया। उसने ध्यान लगाकर कारण मालूम किया। तब सोचा—"शशराज की परीक्षा लूंगा।" वह पहले ऊदबिलाव के निवास-स्थान पर पहुँचा। ब्राह्मण का वेश बनाकर खड़ा हुआ। ऊदबिलाव ने पूछा—"ब्राह्मण! किसलिए खड़ा है?"

"पण्डित ! यदि कुछ आहार मिले तो उपोसथ-व्रती होकर श्रमण-धर्म पालन करूं।"

"अच्छा, तुझे आहार दूंगा। हे ब्राह्मण ! पानी में से स्थलपर लाई हुई मेरे पास सात रोहित मछलियाँ हैं। इन्हें खाकर वन में निवास कर।"

"अभी सवेरा है, रहे, पीछे देखूंगा।"

गीदड़ के पास गया। उसने पूछा—"ब्राह्मण ! किसलिए खड़ा है ?" उसने उसी प्रकार मांगा। उसने कहा—"अच्छा दूंगा। उस खेत की रखवाली करनेवाले का रात्रि-भोजन लाया हुआ मेरे पास है—दो कबाब की सीखें, एक गोह और एक दही की हांडी। इसे खाकर वन में रह।"

"अभी सवेरा है, पीछे देखूंगा" कहकर बन्दर के पास गया। उसने पूछा—"किसलिए खड़ा है ?" ब्राह्मण ने वैसा ही उत्तर दिया। बन्दर ने कहा—"अच्छा देता हूँ। ये पके आम, ठण्डा जल और शीतल छाया मेरे पास है। इन्हें खाकर वन में रहो।"

"अभी सवेरा ही है, देखूंगा" कहकर शश पण्डित के पास गया। उसने भी खड़ा होने का कारण पूछा। उसने वही बात कही। इसे सुन बोधिसत्व अति प्रसन्न हो बोले—"ब्राह्मण ! तूने अच्छा किया जो आहार के लिए मेरे पास आया। आज मैं ऐसा दान दूंगा जैसा पहले कभी नहीं दिया। तू सदाचारी है, इसलिए हिंसा नहीं करेगा। जा, अनेक लकड़ियां इकट्ठी कर, अंगार बनाकर मुझे सूचना दे। मैं आत्म-बलिदान करके अंगारों के बीच में गिरूंगा। मेरे शरीर के पकने पर तू मांस खाकर श्रमण-धर्म का पालन करना।"

शक्र ने उसकी बात सुनकर अंगारों का ढेर तैयार कर बोधिसत्व को सूचना दी। उसने बढ़िया घास की शैया से उठकर तीन बार अपने शरीर को झाड़ा, जिसमें शरीर के बालों में प्राणी हों तो न मरें। फिर सारे शरीर को दान करके अंगारों के ढेर पर ऐसे उछला-कूदा जैसे राज-हंस कमलों के ढेर में कूदे। वह आग बोधिसत्व के रोम-छिद्र तक को भी गरम नहीं कर सकी। ऐसा लगा जैसे हिमगृह में प्रवेश किया हो

उसने शक्र को सम्बोधित कर पूछा—"ब्राह्मण ! तेरी बनाई हुई आग अति शीतल है। मेरे शरीर के रोम-छिद्र तक को गरम न कर सकी। यह क्या बात है?"

"पण्डित ! मैं ब्राह्मण नहीं, शक्र हूँ। तेरी परीक्षा लेने आया हूँ।"

बोधिसत्व ने सिंहनाद किया—"शक्र ! तेरी तो बात क्या, यदि यह सारा संसार भी मेरे दान की परीक्षा लेना चाहे तो वह मुझमें न देने की इच्छा नहीं देख सकता।"

शक्र बोला—"शश पण्डित ! तेरा गुण सारे कल्पों तक प्रसिद्ध रहे।" उसने पर्वत को निचोड़कर उसका रस ले चन्द्रमण्डल पर शश का आकार बना दिया। फिर बोधिसत्व को बुलाकर उस वन-खण्ड में, उसी झुरमुट में, नई दूब पर लिटाया। स्वयं अपने देवलोक को चला गया। चारों पण्डित एकमत होकर प्रसन्न-चित रहते हुए शील को पूरा कर, उपोसथ-व्रत का पालन करके कर्मानुसार परलोक गये।

: ६० :

कणवेर

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व काशी जनपद के गांव में एक गृहस्थ के घर चोर नक्षत्र में पैदा हुए। बड़े होने पर चोरी द्वारा जीविका चलाने लगे। लोक में वह बड़े बलवान, वीर और प्रसिद्ध हुए। कोई भी उस चोर को पकड़ न सकता था। एक दिन वह एक सेठ के घर में सेंध लगाकर बहुत-सा धन ले गया। नागरिकों ने आकर राजा से शिकायत की—"देव ! एक डाकू नगर लूट रहा है। उसे पकड़वायें।" राजा ने नगर-कोतवाल को उसे पकड़ने की आज्ञा दी।

६०. कणवेर जातक। ४.२.३१८

रात को नगर-कोतवाल ने जहां-तहां लोगों की टोलियां बनाकर नियुक्त किया और उसे धन-सहित पकड़कर राजा को सूचना दी। राजा ने नगर-कोतवाल को ही आज्ञा दी—"इसका सिर काट डालो।"

नगर-कोतवाल ने उसके दोनों हाथ पीछे कसकर बंधवा दिये। गर्दन में लाल कनेर की माला डलवा दी। सिर पर ईंट का चूरा बिखरवा दिया और उसे चौरस्ते-चौरस्ते पर चाबुक मारता हुआ, जोर से ढोल बजवा कर वध-स्थल की ओर ले चला। सारा नगर क्षुब्ध हो उठा—"इस नगर में चोर पकड़ा गया।"

उस समय वाराणसी में एक हजार मुद्रा लेने वाली श्यामा नाम की वेश्या थी—राजा की प्रिया और पांच सौ सुन्दर दासियोंवाली। उसने महल की खिड़की खोल, खड़े हो, उसे ले जाये जाते देखा।

वह रूपवान था, सुन्दर था, अत्यन्त शोभायमान, देव-वर्णवाला, सभी का सिरमौर। उसे ले जाते देखकर वह आसक्त हो गई। सोचने लगी—"किस उपाय से इस पुरुष को अपना स्वामी बनाऊं?" उसे एक उपाय सूझा। उसने दासी के हाथ नगर-कोतवाल के पास एक हजार मुद्रा भिजवाई और कहलाया—"यह चोर श्यामा का भाई है। इसके अतिरिक्त श्यामा को और कोई सहारा नहीं। तुम यह हज़ार मुद्रा लेकर इसे छोड़ दो।" दासी ने वैसा किया। नगर-कोतवाल ने उत्तर दिया—"यह प्रसिद्ध चोर है। इसे ऐसे नहीं छोड़ सकता। इसकी जगह कोई दूसरा आदमी मिले तो इसे गाड़ी में छिपाकर, बिठाकर भेज सकता हूँ।"

उस समय श्यामा पर आसक्त एक सेठ-पुत्र प्रतिदिन एक हज़ार मुद्रा दिया करता था। उस दिन भी एक हजार मुद्रा लेकर उसके घर पहुंचा। श्यामा हजार की थैली को जांघ में दबाकर बैठकर रोने लगी। सेठ-पुत्र ने पूछा—"क्या बात है?"

"स्वामी! यह चोर मेरा भाई है। मैं नीच-कर्म करती हूं, इसलिए मेरे पास नहीं आता। नगर-कोतवाल के पास भेजने पर उसने सन्देश भिजवाया है कि हजार मुद्रा मिले तो छोड़ दूंगा। अब ऐसा कोई नहीं

मिलता, जो इस हजार को लेकर नगर-कोतवाल के पास जाय।" सेठ-पुत्र ने श्यामा पर आसक्त होने के कारण कहा—"मैं जाऊंगा।"

"तो यह जो तुम लाये हो, यही लेकर जाओ।"

वह उसे लेकर नगर-कोतवाल के घर पहुँचा। नगर-कोतवाल ने उस सेठ-पुत्र को छिपी जगह में रखकर, चोर को छिपी गाड़ी में बिठाकर श्यामा के घर भेज दिया और कहलाया कि चोर देश-भर में प्रसिद्ध है, अच्छी तरह अंधेरा हो जाने दे। नगर-कोतवाल ने बहाना बनाया कि "लोगों के सो जाने के समय चोर को मरवाऊंगा।" फिर थोड़ा समय व्यतीत हो जाने पर, जब लोग सोने चले गये तब उसने सेठ-पुत्र को बड़े पहरे में वध-स्थान पर ले जाकर तलवार से सिर काट दिया। शरीर को सूली पर टांगकर नगर में प्रवेश किया।

उस समय से श्यामा किसी दूसरे के हाथ से कुछ नहीं ग्रहण करती। उसीके साथ रमण करती। बोधिसत्व सोचने लगा—"यदि यह किसी दूसरे पर आसक्त हो गई तो मुझे भी मरवाकर किसी दूसरे के साथ रमण करेगी। यह अत्यन्त मित्र-द्रोही है। मुझे चाहिए कि यहाँ न रहकर शीघ्र भाग जाऊं। लेकिन हां, जाते समय खाली हाथ नहीं जाऊंगा। इसके गहनों की गठरी लेकर जाऊंगा।" यह सोचकर कहा—

"भद्रे! हम पिंजरे में बन्द मुर्गों की तरह नित्य घर में ही रहते हैं। एक दिन उद्यान-क्रीड़ा के लिए चलें।"

उसने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। सब खाद्य-भोज्य सामग्री तैयार कराके, सभी गहनों से अलंकृत होकर उसके साथ पर्देवाली गाड़ी में बैठकर उद्यान को गई।

उसने उसके साथ खेलते हुए तय किया कि "अब मुझे भागना चाहिए।" उसे कनेर के वृक्षों के बीच ले जाकर उसका आलिंगन करने के बहाने उसे दबाकर बेहोश करके गिरा दिया। फिर उसके सब गहने उतारकर, उसीकी ओढ़नी में गठरी बांधकर, कंधे पर रखकर, बाग की दीवार लांघ कर भाग गया।

उसे जब होश आया तो सेविकाओं के पास आकर पूछा—"आर्य-पुत्र कहाँ है ?"

"आर्ये ! हम नहीं जानतीं !"

उसने सोचा—"मुझे मरा समझकर डरकर भाग गया होगा।" वह दुखी हुई और घर पहुंच जमीन पर लेट रही—"मैं तभी अलंकृत शैया पर लोटूंगी, जब अपने प्रिय स्वामी को देख सकूंगी।"

उसने अच्छे वस्त्र पहनने छोड़ दिये। दोनों शाम भोजन करना छोड़ दिया। गन्ध-माला धारण करना छोड़ दिया। उसने मन में निश्चय किया कि "जिस किसी भी तरह आर्यपुत्र का पता लगवाकर उसे बुलवाऊँगी।" उसने नटों को बुलाकर एक हजार मुद्रा दीं। उन्होंने पूछा—

"आर्ये ! क्या करें ?"

"ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां तुम्हारी पहुच न हो। तुम ग्राम, निगम तथा राजधानियों में घूमते हुए तमाशा दिखाना। तमाशा देखनेवालों के इकट्ठे होने पर पहले-पहल यह गीत गाना। अगर आर्यपुत्र उस परिषद् में होगा तो तुम्हारे साथ बातचीत करेगा। उससे मेरा 'आरोग्य कहकर लिवा लाना। यदि न आये तो मुझे सन्देश भेजना।"

वे बाराणसी से निकलकर जहां-तहां तमाशा करते हुए एक प्रत्यन्त ग्राम में पहुंचे। वह चोर भी भागकर वहीं रहता था। उन्होंने तमाशा करते समय पहले-पहल यह गीत गाया—

यन्तं वसन्त समये कणवेरेसु भानुसु।

सामं बाहाय पीलेसि सा तं अरोग्यमब्रवि॥

(तूने वसन्त समय में लाल-कनेर के वृक्षों के बीच जिस श्यामा को हाथों से दबाया था, वह तुझे अपने आरोग्य की सूचना देती है।)

चोर ने यह गीत सुनकर नट के पास आकर पूछा—

"भो ! तू कहता है, श्यामा जीती है; किन्तु मुझे तो विश्वास नहीं होता। हवा चाहे पर्वत को बहाके ले जाय; किन्तु जो श्यामा मर गई, वह मुझे अपने आरोग्य की सूचना कैसे दे सकती है ?"

"न वह मरी है, न दूसरे की इच्छा करती है। वह एक ही भर्ता मानती है और उसीकी इच्छा करती है।"

"चाहे वह जीती हो या मरी, मुझे उससे प्रयोजन नहीं। उसने चिर-काल से संसर्ग किये हुए ध्रुव स्वामी को छोड़कर मुझ अध्रुव को अपनाया, जिससे उसका पूर्व-संसर्ग नहीं था। अब वह मुझसे भी किसी दूसरे को बदल सकती है। इसलिए मैं यहां से भी और दूर जाता हूँ। उसे मेरे यहां से भी चल देने की बात कहना।"

उसने नट के देखते-ही-देखते कपड़ों को तेजी से संभाला और भाग निकला। नट ने जाकर सारा वृत्तांत श्यामा को सुनाया। उसने पश्चात्ताप करते हुए अपने ढंग से ही दिन काटे।

: ६१ :

सच्ची भार्या

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसके सर्वार्थसाधक अमात्य हुए। एक दिन राजा ने राजकुमार को सेवा में आते देखकर सोचा—"शायद यह मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करे। उसने उसे बुलाकर आज्ञा दी—"तात, जबतक मैं जीता हूं, तुम नगर में नहीं रह सकते। अन्यत्र रहकर मेरे मरने पर राज संभालना।"

उसने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। पिता को प्रणाम कर अपनी भार्या को साथ ले नगर से निकल पड़ा। प्रत्यन्त देश में पहुँचकर, पर्ण-कुटी बनाकर जंगल के फल-मूल खाकर रहने लगा। समय बीतने पर राजा मर गया।

उपराज ने नक्षत्र देखकर जाना कि पिता मर गया। बाराणसी आते हुए रास्ते में एक पर्वत देखा।

६१. सुच्चज जातक। ४.२.३२०

भार्या बोली—"देव ! यदि यह पर्वत स्वर्णमय हो तो मुझे कुछ देंगे ?"

"तू कौन है, कुछ नहीं दूंगा।"

वह असन्तुष्ट हो गई—"मैं इसके प्रति स्नेह न छोड़ सकने के कारण जंगल में आई और यह इस तरह बोलता है। अति कठोरहृदय है। राजा होकर मेरा क्या भला करेगा ?"

उसने राज्य पर प्रतिष्ठित होने पर उसे पटरानी बनाया। उसे यह यश-मात्र मिला। और सत्कार-सम्मान कुछ नहीं। मानो वह है ही नहीं। बोधिसत्व ने सोचा—"इस देवी ने इस राजा का उपकार किया। अपने दुःख का ख्याल न कर इसके साथ जंगल में रही। लेकिन यह राजा इसका ख्याल न कर दूसरी के साथ रमण करता रहता है। मैं कुछ ऐसा करूं जिससे इसे सब ऐश्वर्य मिले।"

एक दिन बोधिसत्व ने उस देवी के पास आकर कहा—"महादेवी ! हमें तुमसे भिक्षा-मात्र भी नहीं मिलती। हमारे प्रति इतनी उपेक्षा क्यों ? तुम बड़ी कठोरहृदया हो।"

"तात ! यदि मुझे मिले तो तुम्हें भी दूं। कुछ न मिलने पर क्या दू ? राजा भी मुझे अब क्या देगा, जिसने रास्ते में यह पूछने पर कि "अगर यह पर्वत स्वर्णमय होगा तो मुझे कुछ दोगे ?"—उत्तर दिया—"तू कौन है ? कुछ न दूंगा।" जो आसानी से दिया जा सकता था, वह भी नहीं दिया।"

"क्या तुम राजा के सामने यह बात कह सकोगी ?"

"तात ! क्यों न कह सकूंगी।"

"तो राजा की उपस्थिति में पूछूंगा। तुम कहना।"

"तात ! अच्छा।"

जब देवी राजा की सेवा में आकर खड़ी हुई तो बोधिसत्व ने कहा—"आर्ये ! हमें तुमसे कुछ नहीं मिलता।"

"तात ! मुझे मिले तो मैं तुम्हें दूं। मुझे भी कुछ नहीं मिलता। राजा भी अब मुझे क्या देंगे ? इन्होंने तो जंगल से लौटते समय, मेरे यह पूछने

पर कि "इस पर्वत के स्वर्णमय होने पर मुझे क्या दोगे ?" उत्तर दिया था—"तू कौन है ? कुछ नहीं दूंगा।" जो आसानी से दिया जा सकता था, वह भी नहीं दिया। उसका त्याग करने में क्या लगा था ? इन्होंने वाणी से भी पर्वत नहीं दिया।"

यह सुनकर राजा ने कहा—"जो कहे, वही करे। जो न करे, वह न कहे। केवल कहनेवाले को पण्डित लोग पहचान लेते हैं।"

यह सुनकर देवी ने राजा के सामने हाथ जोड़कर कहा—"राजपुत्र ! तुम सत्य और धर्म में स्थित हो। आपत्ति में पड़ने पर भी तुम्हारा मन सत्य में ही रमण करता है। तुम्हें नमस्कार है।"

तब बोधिसत्व ने देवी की प्रशंसा की—"जो स्त्री दरिद्रपति के साथ दरिद्री बनकर रहती है और धनी होने पर धनवान बनकर, वही कीर्ति-मान नारी है। वही परम श्रेष्ठ भार्या है।"

इस प्रकार बोधिसत्व ने देवी के गुण कहे और राजा से निवेदन किया—"महाराज ! यह तुम्हारी विपत्ति के समय तुम्हारे दुःख में शामिल रहीं। इनका सम्मान करना चाहिए।" राजा ने बोधिसत्व के कहने से देवी के गुणों का ध्यान कर उसे सब ऐश्वर्य दिया और यह कहकर बोधिसत्व का सत्कार किया कि "तुमने मुझे देवी के गुण याद कराये।"

: ६२ :
अन्धविश्वास

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व शेर की योनि में पैदा हुए। वह बड़े होने पर जंगल में रहते थे। उस समय पश्चिम समुद्र के पास बेल और ताड़ का वन था। वहां एक खरगोश बेल-वृक्ष की जड़ में एक ताड़ गाछ के नीचे रहता था।

---

६२. दद्दभ-जातक। ४.३.३२२

एक दिन वह शिकार लेकर आया और ताड़ की छाया में लेट रहा। उसने पड़े-पड़े सोचा—"यदि यह महान् पृथ्वी उलटे तो मैं कहां जाऊंगा?" उसी समय एक पका हुआ बेल ताड़ के पत्ते पर गिरा। उसने उसकी आवाज सुनकर समझा कि पृथ्वी उलट रही है और बिना पीछे देखे भागा। मरने के डर से तेजी से उसे भागते देखकर दूसरे खरगोश ने पूछा—"भो! क्या बात है, अत्यन्त डरकर भाग रहे हो?"

"भो! मत पूछ।"

"क्या डर की बात है?" पूछता हुआ वह भी दौड़ने लगा। पहले ने रुककर बिना देखे ही कहा—"यहां पृथ्वी उलट रही है!" वह भी उसके पीछे भागा। इस प्रकार उसे तीसरे ने देखा और फिर चौथे ने और इस तरह एक हजार खरगोश इकट्ठे होकर भागने लगे।

एक मृग भी उन्हें देख उनके पीछे भागा। एक सूअर, एक नीलगाय, एक भैंसा, एक बैल, एक गैंडा, एक व्याघ्र, एक सिंह तथा एक हाथी भी पृथ्वी के उलटने की बात जानकर भागे। इस प्रकार क्रमशः योजन-भर की पशु-सेना हो गई।

तब बोधिसत्व ने उस सेना को भागते हुए देखकर पूछा—"यह क्या है?"

"पृथ्वी उलट रही है!"

उसने सोचा—"पृथ्वी का उलटना कभी नहीं होता। निःसंशय इन्होंने कुछ देखा होगा। यदि मैं कुछ प्रयत्न न करूंगा तो यह सब नष्ट हो जायेंगे। मैं इन्हें जीवन-दान दूंगा।" उसने सिंह-वेग से आगे पहुँचकर पर्वत के दामन में खड़े होकर तीन बार सिंह-नाद किया। सिंह-भय से भयभीत वे रुककर इकट्ठे खड़े हो गये।

सिंह ने उनके बीच में जाकर पूछा—"क्यों भाग रहे हो?"

"पृथ्वी उलट रही है!"

"पृथ्वी को उलटते किसने देखा?"

"हाथी जानते हैं।"

हाथियों से पूछा। वे बोले—"हम नहीं जानते, सिंह जानते हैं।" सिंह भी बोले—"हम नहीं जानते, व्याघ्र जानते हैं।" व्याघ्र भी—"हम नहीं जानते, गैंडे जानते हैं।" गैंडे भी—"हम नहीं जानते, बैल जानते हैं।" बैल भी—"हम नहीं जानते, भैंसे जानते हैं।" भैंसे भी—"हम नहीं जानते, नीलगायें जानती हैं।" नीलगायें भी—"हम नहीं जानतीं, सूअर जानते हैं।" सूअर भी—"हम तहीं जानते, मृग जानते हैं।" मृग भी—"हम नहीं जानते, खरगोश जानते हैं।" खरगोशों से पूछने पर उन्होंने उस खरगोश को दिखाकर कहा—"यह जानता है।"

तब उससे पूछा—"सौम्य ! क्या तूने ऐसा देखा कि पृथ्वी उलट रही है ?"

"स्वामी ! हां, मैंने देखा।"

"कहां देखा ?"

"पश्चिम समुद्र के पास में बेल और ताड़ के वन में रहता हूँ। मैंने वहां बेल-वृक्ष की जड़ में ताड़-वृक्ष के पत्र की छाया में लेटे-लेटे सोचा था—"पृथ्वी उलटी तो मैं कहां जाऊंगा ?" उसी समय पृथ्वी के उलटने का शब्द सुनकर मैं भागा हूं।"

सिंह ने सोचा—"निश्चय ही उस ताड़-पत्र पर पका बेल गिरने से 'धब' शब्द हुआ होगा। उसी शब्द को सुनकर इसने समझा होगा कि पृथ्वी उलट रही है और भागा है। मैं यथार्थ बात जानूंगा।" उसने जनता को आश्वासन दिया—"जहां इसने देखा है, वहां मैं पृथ्वी का उलटना या न उलटना यथार्थ रूप से जानकर आऊंगा। तबतक तुम सब यहीं रहो।"

उसने खरगोश को पीठ पर चढ़ाया और सिंह-वेग से छलांग मार उसे ताड़-वन में उतारकर कहा—"आ, अपनी देखी जगह दिखा।"

"स्वामी ! साहस नहीं होता।"

"आ, डर मत।"

उसने बेल-वृक्ष के निकट जाकर कुछ दूर ही खड़े होकर कहा—"स्वामी ! यह 'धब' आवाज़ होने का स्थान है।"

सिंह ने बेल-वृक्ष के नीचे जाकर ताड़-वृक्ष के नीचे खरगोश के लेटे रहने की जगह और ताड़ के पत्ते पर गिरा हुआ पका बेल देखकर पृथ्वी के न उलटने की बात यथार्थ रूप से जानी। वह खरगोश को पीठ पर बिठाकर सिंह-वेग से पशुओं के संघ में पहुँचा। पशु-समूह को यथार्थ बात बता आश्वासन दिया कि डरें नहीं। फिर सिंह ने सबको विदा किया।

यदि बोधिसत्व न होते तो उस समय सभी प्राणी समुद्र में गिरकर नष्ट हो जाते।

: ६३ :

तपस्वी का आत्म-गौरव

पूर्व समय में कम्पिल राष्ट्र में उत्तर पांचाल नगर में पांचाल राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक निगम-ग्राम में ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए। बड़े होने पर तक्षशिला जाकर सब शिल्प सीखे। फिर तपस्वी प्रव्रज्या ले हिमालय में फल-मूल खाकर जीवनयापन करने लगे। चिरकाल तक हिमालय में रहकर नमक-खटाई खाने के लिए बस्ती की ओर उत्तर-पांचाल नगर मे पहुंचे। वहां राजोद्यान में ठहरे। अगले दिन भिक्षार्थ नगर में जाकर वापिस उद्यान में लौटे।

राजा ने उसकी श्रेष्ठ चर्या से प्रसन्न होकर उसे महान तल्ले पर बिठाकर भोजन करवाया। फिर प्रतिज्ञा ले राजोद्यान में ही बसाया। वह नित्य राजा के यहां ही भोजन करता। वर्षाकाल की समाप्ति पर उसने हिमालय लौटना चाहा। उसकी इच्छा हुई कि रास्ते के लिए उसके पास एक तले का जूता और एक पत्तों का छाता हो। उसने सोचा—"राजा से मांगूंगा।" एक दिन राजा उद्यान में आकर प्रणाम करके बैठा। उसे देखकर तपस्वी को जूता-छाता मांगने की याद आई। फिर सोचा—"दूसरे से मांगनेवाला

६३. ब्रह्मदत्त जातक। ४.१.३२३

मांगते समय रोता है, नहीं देनेवाला 'नहीं है' कहकर रोता है। जनता मुझे और राजा को रोता हुआ न देखे। एकान्त में, छिपे हुए स्थान पर दोनों रोकर चुप हो जायंगे।"

उसने राजा से कहा—"महाराज! एकान्त चाहिए।" राजा ने राज-पुरुषों को दूर हटा दिया। बोधिसत्व ने सोचा—"यदि मेरे याचना करने पर राजा ने न दिया तो हमारी मैत्री टूटेगी, इसलिए नहीं मांगूंगा।" उस दिन कहा—"महाराज! जायें, फिर किसी दिन देखूंगा।"

फिर एक दिन राजा के उद्यान आने पर उसी तरह किया। फिर उसी तरह और फिर उसी तरह। इस प्रकार याचना करते बारह वर्ष बीत गये। तब राजा ने सोचा—"आर्य, मुझसे एकान्त चाहते हैं; लेकिन परिषद् के चले जाने पर कुछ नहीं कह पाते। कहने की इच्छा रखे-ही-रखे बारह वर्ष बीत गये। इन्हें ब्रह्मचारी अवस्था में रहते चिरकाल बीत गया। मालूम होता है, उद्विग्न-चित्त होकर भोग भोगने की इच्छा से राज्य चाहते हैं; लेकिन राज्य का नाम न ले सकने के कारण चुप हो जाते हैं। आज मैं इन्हें राज्य से लेकर जो भी चाहेंगे, दूंगा।"

वह उद्यान में जाकर प्रणाम करके बैठा। बोधिसत्व ने 'एकान्त' चाहा; किन्तु लोगों के चले जाने पर भी वह कुछ न कह सके। तब राजा ने कहा—"आप बारह वर्ष से 'एकान्त चाहिये' कहकर एकान्त पाने पर भी कुछ नहीं कहते हैं। राज्य से लेकर सब कुछ देने को तैयार हूँ। जो इच्छा हो, वह निर्भय रोकर मांगें।"

"महाराज। जो मैं मांगूंगा, वह देंगे?"

"भन्ते! दूंगा।"

"महाराज! मुझे रास्ता चलने के लिए एक तलेवाला एक जोड़ा जूता और एक पत्तों का छाता चाहिए।"

"भन्ते! बारह वर्ष तक आप यह न मांग सके?"

"महाराज! हां।"

"भन्ते! ऐसा क्यों किया?"

"महाराज! जो मांगता है कि 'यह मुझे दो', वह रोता है; जो कहता है 'नहीं है' वह भी रोता है। यदि तुम मेरे मांगने पर न दो तो हम दोनों का रोना जनता न देखे, इसीलिए एकान्त चाहता रहा।"

राजा ने बोधिसत्व के आत्म-गौरव के भाव पर प्रसन्न होकर बैलों-सहित हजार लाल गायें दीं।

"महाराज! मुझे और वस्तुओं की इच्छा नहीं है। जो मैं चाहता हूं, वही मुझे दे दें।"

एक तले का जूता और पत्तों का छाता लेकर उन्होंने राजा को उपदेश दिया—"महाराज! प्रमाद-रहित रहें। दान दें। शील की रक्षा करें। उपोसथ कर्म करें।" फिर राजा के ठहरने का आग्रह करने पर भी वे हिमालय चले गये। वहां अभिज्ञा और समापत्तियां प्राप्त कर ब्रह्म-लोकगामी हुए।

: ६४ :

कुटिल जटिल

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व गोह की योनि में पैदा हुए। बड़ी आयु तथा शरीर के होने पर जंगल में रहने लगे।

एक दुराचारी तपस्वी उसके कुछ ही दूर पर्णकुटी बनाकर रहता था। बोधिसत्व ने शिकार खोजते हुए उसे देखा। सोचा—"सदाचारी तपस्वी की पर्णकुटी होगी।" वहां जाकर तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवास-स्थान पर गये।

एक दिन उस कुटिल तपस्वी को सेवकों के घर पका मधुर मांस मिला। पूछा—"यह क्या मांस है?" जब उसे यह पता चला कि यह

६४. कुटिल-जटिल। ४.३.३२४

गोह का मांस है तो वह रस-तृष्णा से अभिभूत हो गया। सोचा—"गोह मेरे आश्रम पर नित्य आती है। उसे मारकर यथारुचि पकाकर खाऊंगा। घी, दही और मसाले इकट्ठे किये। काषाय वस्त्र से मुंगरी को ढककर पर्णकुटी के दरवाजे पर बोधिसत्व की प्रतीक्षा करता हुआ शान्त, दान्त की तरह बैठा रहा।

गोह ने आकर उसकी द्वेष भरी शक्ल देखकर सोचा—"इसने हमारी जाति के किसी पशु का मांस खाया होगा। मैं इसकी जांच करती हूं।" जिधर हवा जा रही थी, उधर खड़े होकर उसने शरीर की गन्ध सूंघी। उसे पता चल गया कि उसकी जाति के किसी पशु का मांस खाया गया है। वह तपस्वी के पास आकर लौट गई। तपस्वी ने जब देखा कि वह निकट नहीं आ रही है तो मुँगरी फेंकी। मुंगरी शरीर पर न लग कर पूंछ के सिरे पर लगी। तपस्वी बोला—"जा, मैं चूक गया।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"मुझे तो चूक गया, लेकिन चार अपायों को नहीं चूकेगा। मैं तुझे श्रमण समझ तुझ असंयत के पास आई। लेकिन तूने मुझे ऐसा मारा, जैसे कोई अश्रमण मारे। हे दुर्बुद्धि! जटाओं से तुझे क्या? और मृगचर्म के पहनने से क्या। अन्दर से तू मैला है और बाहर से धोता है।"

यह सुनकर तपस्वी ने कहा—"हे गोह! आ, रुक, शाली धान का भात खा। मेरे पास तेल है, नमक है और हींग, जीरा, अदरक, मिरच आदि मसाले भी बहुत हैं।"

"रख तू अपना तेल, नमक। पिप्पली मेरे अनुकूल नहीं पड़ती। इस सौ पोरसे के बिल में फिर प्रवेश करूंगी। अरे कुटिल! यदि यहां रहेगा तो आस-पास के मनुष्यों द्वारा 'यह चोर है' कहकर पकड़वाऊंगी और अपमानित कराऊंगी। शीघ्र भाग जा।"

कुटिल जटिल वहां से भाग गया।

: ६५ :

फूलों के चार गजरे

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व त्रयस्त्रिंश भवन में एक देवपुत्र हुए। उसी समय वाराणसी में महोत्सव था। बहुत से नाग, गरुड़ और भुम्मट्टक देवताओं ने आकर उत्सव देखा। त्रयस्त्रिंश भवन से भी चारों देवपुत्र कक्कारु नाम के दिव्य पुष्पों से बने गजरे पहनकर उत्सव देखने आये। बारह योजन का नगर उन फूलों की सुगन्ध से महक उठा। मनुष्य ढूढते थे—"इन पुष्पों को किसने पहना है?" उन देव-पुत्रों ने जब देखा कि लोग हमें खोज रहे हैं तो वे राजाङ्गण में ऊपर आकाश में उड़कर महान देवता-प्रताप से स्थित हुए। जनता इकट्ठी हुई। राजा, सेट्ठी तथा उपराज आदि भी आ पहुँचे।

लोगों ने पूछा—"स्वामी! किस देवलोक से आना हुआ?"

"त्रयस्त्रिंश देवलोक से आये हैं।"

"किस कार्य से आये हैं?"

"उत्सव देखने के लिए।"

"इन फूलों का क्या नाम है?"

"ये दिव्य कक्कारु पुष्प हैं।"

"स्वामी! आप दिव्य लोक में दूसरे पहन लें। ये हमें दे दें।"

"ये दिव्य पुष्प बड़े प्रतापवाले हैं। देवताओं के ही योग्य हैं। मनुष्य लोक में रहनेवाले खराब, मूर्ख, तुच्छ विचारवाले, दुश्चरित्र लोगों के योग्य नहीं हैं। लेकिन जिन लोगों में ये गुण हों, उनके योग्य हैं।

"जो काया से किसी की चीज हरण न करे। वाणी से झूठ न बोले—तथा ऐश्वर्य मिलने पर प्रमादित न हो।

"जो इन गुणों से युक्त हो, मांगे, हम दे देंगे।"

६५. कक्कारु जातक। ४.३.३२६.

यह सुन पुरोहित ने सोचा—"यद्यपि मुझ में इन गुणों में से एक भी गुण नहीं है तो भी झूठ बोलकर ये फूल ले लूं, जिससे जनता मुझे इन गुणों से युक्त समझेगी।" उसने कहा—"मैं इन गुणों से युक्त हूँ।" और वे पुष्प मँगवाकर पहने। तब दूसरे देव-पुत्र से याचना की।

उसने कहा—"जो धर्म से धन खोजे, ठगी से धन पैदा न करे और योग्य वस्तुओं के मिलने पर प्रमादी न बने, वही कक्कारु पुष्प पाने के योग्य है।"

"मैं इन गुणों से युक्त हूँ" कहकर पुरोहित ने पुष्प मंगवाकर पहने और तीसरे देव-पुत्र से याचना की।

उसने कहा—"जिसका प्रेम हल्दी की तरह नहीं अर्थात् जो स्थिर प्रेम वाला है, जिसकी श्रद्धा दृढ़ है, जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को अकेले नहीं खाता, वह कक्कारु के योग्य है।"

"मैं इन गुणों से युक्त हूं" कहकर पुरोहित ने वे पुष्प मंगवाकर पहने। तब चौथे देव-पुत्र से याचना की।

उसने कहा—"जो न सामने सन्त-जनों की हंसी उड़ाता है, न अनुपस्थिति में ही, जो जैसा कहता है वैसा करता है, वह कक्कारु के योग्य है।"

"मैं इन गुणों से युक्त हूं" कहकर पुरोहित ने वे पुष्प भी मंगवाकर पहने।

चारों देव-पुत्र चारों गजरे पुरोहित को ही देकर देव-लोक गये। उनके चले जाने पर पुरोहित के सिर में बड़ा दर्द हुआ। ऐसा लगता था, जैसे किसी धार वाली चीज से काटा जाता हो या लोहे के पट्टे से रगड़ा जाता हो। वह दुःख से पीड़ित होकर इधर-उधर लोटता हुआ जोर से चिल्लाया। लोगों ने पूछा—"क्या बात है?" वह बोला—

"मैंने अपने में जो गुण नहीं हैं उनके बारे में झूठ ही 'है' कह उन देव-पुत्रों से पुष्प माँगे। इन्हें मेरे सिर पर से ले जाओ।"

उन्हें निकालने का प्रयत्न करने पर लोग न निकाल सके। लोहे के पट्टे

से अधमरे-जैसे हो गये। उसे उठाकर घर ले गये। वहाँ उसे चिल्लाते-चिल्लाते सात दिन बीत गये। राजा ने अमात्यों को बुलाकर पूछा—"दुश्चरित्र ब्राह्मण मर जायगा, क्या करें ?"

"देव ! फिर उत्सव करायें, देव-पुत्र फिर आयेंगे।"

राजा ने फिर उत्सव कराया। देव-पुत्र फिर आये और सारे नगर को फूलों की सुगन्ध से महकाकर उसी तरह राजाङ्गण में स्थित हुए।

जनता ने इकट्ठे होकर उस दुष्ट ब्राह्मण को लाकर देवताओं के सामने सीधा पीठ के बल लिटाया। उसने देव-पुत्रों से याचना की—"स्वामी ! मुझे जीवन-दान दें।"

वे देव-पुत्र बोले—"ये फूल तुझ दुष्ट, दुःशील—पापी के योग्य नहीं हैं। तूने सोचा, इन्हें ठगूंगा। तुझे अपने झूठ बोलने का फल मिला।" इस प्रकार देव-पुत्र जनता के बीच उसकी निन्दा कर, सिर से फूलों का गजरा उतारकर जनता को उपदेश दे, अपने स्थान चले गये।

: ६६ :

स्वर्ण-भार्या*

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में सब शिल्प सीखकर माता-पिता के पास लौटे। माता-पिता ने उसे सूचना दी कि "हम तेरे लिए भार्या खोजते हैं।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"मुझे गृहस्थी से काम नहीं। तुम्हारे बाद प्रव्रजित होऊंगा।" उनके बार-बार आग्रह करने पर उसने एक स्वर्ण-कुमारी बनवाकर कहा—"ऐसी मिलेगी तो ग्रहण करूंगा।"

उसके माता-पिता ने उस स्वर्ण प्रतिमा को ढकी गाड़ी में रखा और

* ६६. अननुसोचिय जातक। ४.३.३२८

अनेक अनुयायियों के साथ आदमियों को भेजा कि "जाओ, जम्बुद्वीप-भर में घूमो। जहां इस तरह की ब्राह्मण-कुमारी दिखाई दे, वहाँ यह प्रतिमा देकर उसे यहां ले आओ।" उस समय एक पुण्यवान प्राणी ब्रह्मलोक से च्युत होकर काशी-राष्ट्र में ही एक निगम-ग्राम में अस्सी करोड़ धनवाले ब्राह्मण के घर में लड़की होकर पैदा हुआ था। उसका नाम रखा गया था —सम्मिलहासिनी।

वह सोलह वर्ष की होने पर सुन्दरी थी, देवाप्सरा सदृश और सभी अंगों से सम्पूर्ण। उसके मन में भी कभी राग उत्पन्न नहीं हुआ था। अत्यन्त ब्रह्मचारिणी थी। स्वर्ण-मूर्ति लिये घूमनेवाले उस गाँव में पहुँचे। मनुष्यों ने उस मूर्ति को देखा तो बोल उठे—"अमुक ब्राह्मण की लड़की सम्मिलहासिनी यहां किस लिए खड़ी है?"

उन मनुष्यों ने यह बात सुनी तो ब्राह्मण के घर जाकर सम्मिलहासिनी को वरा। उसने माता-पिता के पास सन्देश भेजा—"मुझे गृहस्थी से काम नहीं। मैं तुम्हारे मरने पर प्रव्रजित होऊंगी।" "लड़की! यह क्या कहती है?" कहकर उन्होंने वह स्वर्ण-प्रतिमा लेकर उसे बड़ी शान-बान के साथ विदा किया। बोधिसत्व और सम्मिलहासिनी, दोनों की इच्छा न रहते हुए भी विवाह कर दिया गया। उन्होंने एक घर में रहते हुए, एक शैया पर सोते हुए भी एक दूसरे को राग-दृष्टि से नहीं देखा। वे वैसे ही रहे, जैसे दो भिक्षु या दो ब्राह्मण एक साथ हों।

आगे चलकर बोधिसत्व के माता-पिता काल कर गये। उसने उनका शरीर-कृत्य समाप्त कर सम्मिलहासिनी को बुलाकर कहा—"भद्रे! मेरे कुल का अस्सी करोड़ धन और अपने कुल का अस्सी करोड़ लेकर इस परिवार को पाल। मैं प्रव्रजित होऊंगा।"

"आर्यपुत्र! तुम्हारे प्रव्रजित होने पर मैं भी प्रव्रजित होऊंगी। मैं तो तुम्हें नहीं छोड़ सकती।"

वे दोनों सारा धन दान कर, सम्पत्ति को थूक की तरह छोड़कर हिमालय चले गये। वहां दोनों ने तपस्वी प्रव्रज्या ली। चिरकाल तक

जंगल के फल-मूल खाते रहे। फिर नमक-खटाई खाने के लिए हिमालय से उतरकर, क्रमशः वाराणसी पहुंचकर राजोद्यान में रहने लगे।

वहां रहते समय सुकुमारी प्रव्रजिका को रूखा-सूखा, मिला-जुला भोजन मिलने से रक्त-विकार रोग हो गया। उचित औषधि न मिलने से दुर्बल हो गई। बोधिसत्व भिक्षाटन के समय उसे नगर-द्वार तक ले जाते और वहां एक शाला में पट्टे पर लिटाकर स्वयं भिक्षा के लिए नगर में प्रवेश करते। वह उनकी अनुपस्थिति में ही मर गई। जनता प्रव्रजिका का सौन्दर्य देख उसे घेरकर रोने-पीटने लगी। बोधिसत्व भिक्षा से लौटे तो उसे मरा देखा। उन्होंने यह सोचकर "कि जिसका स्वभाव टूटना है, वह टूटता है। सभी संस्कार अनित्य हैं। यही उनकी गति है।" जिस पट्टे पर वह पड़ी थी, उसी पर बैठकर मिला-जुला भोजन करके मुंह धोया। घेरकर खड़े लोगों ने पूछा—

"भन्ते! यह प्रव्रजिका तुम्हारी कौन होती थी?"

"गृहस्थ रहते समय यह मेरी चरण-सेविका थी।"

"भन्ते! हम सहन नहीं कर सकते—रोते हैं, पीटते हैं; तुम क्यों नहीं रोते?"

"जीती थी तो यह मेरी कुछ लगती थी; अब परलोकवासिनी होने से मेरी कुछ नहीं लगती। जो दूसरों के वश में चली गई है, उसके लिए मैं क्यों रोऊं? यदि मृत्यु के लिए शोक करें तो सदा मृत्यु के वश में पड़े अपने-आपके ही बारे में शोक करें। खड़े रहने, बैठने तथा चलने के समय की तो बात ही क्या, आँख खोलने और बन्द करने के समय भी आयु का क्षय होता ही रहता है। जब अपनी आधी आयु पूर्ण लगने पर अपना मरण भी संशय-रहित है तो सभी प्राणियों पर दया करनी चाहिए और जो बीत जावे उसके बारे में शोक नहीं करना चाहिए।"

इस प्रकार बोधिसत्व ने अनित्यता को प्रकाशित करते हुए उपदेश दिया। जनता ने प्रव्रजिका का शरीर-कृत्य किया। बोधिसत्व हिमालय में प्रवेश कर ध्यान तथा अभिज्ञा प्राप्त करके ब्रह्मलोक-गामी हुए।

: ९७ :

कौआ और मोर

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व मोर की योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर विशेष सुन्दर होकर जंगल में विचरने लगे। उसी समय कुछ बनिये दिशा-कौआ लेकर जहाज से बावेरु-राष्ट्र गये। बावेरु-राष्ट्र में पक्षी नहीं होते थे। उस राष्ट्र के जो-जो निवासी आते, उस कौवे को पिंजरे में पड़ा देखकर कहते—"इसकी चमड़ी के वर्ण को देखो, गले तक चोंच है। मणि की गोलियों जैसी आंखें हैं।" इस प्रकार कौवे की प्रशंसा करते हुए उन्होंने उन व्यापारियों से कहा—"आर्यो! यह पक्षी हमें दे दो। हमें भी इसकी जरूरत है। तुम्हें अपने राष्ट्र में दूसरा मिल जायगा।"

"तो कीमत देकर ले लो।"

"पांच कार्षापण लेकर दे दें।"

"न देंगे।"

इस प्रकार क्रमशः बढ़ाने पर सौ कार्षापण पर पहुंचे। बनियों ने कहा—"यद्यपि हमारे लिए यह बहुत उपयोगी है तो भी तुम्हारी मैत्री का ख्याल करके सौ कार्षापण लेकर दे देते हैं।"

उन्होंने उसे सोने के पिंजरे में रखा। नाना प्रकार के मछली-मांस तथा फलाफल से पाला। दूसरे पक्षियों के न होने के कारण यह दुर्गुणों से युक्त कौआ भी श्रेष्ठ-लाभी हुआ। अगली बार वे बनिये एक मोर को सिखा-पढ़ाकर साथ ले गये। जो चुटकी बजाने पर आवाज लगाता, ताली बजाने पर नाचता। जनता के इकट्ठा हो जाने पर नौका की धुर पर खड़ा होकर वह परों को झाड़कर मधुर स्वर से आवाज लगाता हुआ नाचता। मनुष्यों ने प्रसन्न होकर कहा—"आर्यो! यह सुन्दर सुशिक्षित पक्षि-राज

---

९७. बावेरु जातक। ४.४.३३९

हमें दो।"

"पहले हम कौवा लेकर आये, वह ले लिया। अब एक मोर-राज लेकर आये, वह भी लेना चाहते हो। तुम्हारे राष्ट्र में पक्षी लेकर आना ही कठिन है।"

"आर्यों! जो भी हो। अपने राष्ट्र में आपको दूसरा मिल जायगा। यह हमें दें।"

उन्होंने कीमत बढ़ाकर उसे हजार में लिया। उसे सात रत्नों के सुन्दर पिंजरे में रखकर मछली, मांस, फलादि तथा मधु-खील और शर्बत से पाला। मोर-राज को श्रेष्ठ लाभ और यश मिला। जब से वह पहुंचा तब से कौवे का लाभ-सत्कार घट गया। कोई उसकी ओर देखना भी नहीं चाहता था।

: ६८ :

सर्वज्ञता के लिए

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व अस्सी करोड़ धन के मालिक विसय्ह नाम के सेठ हुए। वह पांच शीलों से युक्त था और स्वभाव का दानी। चारों नगर-द्वारों पर, नगर के मध्य में तथा अपने दरवाजे पर, छः जगहों पर दान-शालाएं बनवा कर दान देता। प्रतिदिन छः लाख खर्च करता। उसने सारे जम्बूद्वीप को उद्वेलित कर दिया। जो दान दिया, उसके प्रताप से शक्र का भवन काँप उठा। देवेन्द्र का पाण्डु-वर्ण कम्बल-शिलासन गरम हो गया।

शक्र सोचने लगा—"कौन है, जो मुझे मेरे स्थान से च्युत करना चाहता है?" उसने देखा कि "यह विसय्ह नाम का सेठ ही है, जो अत्यधिक पैर फैला कर, सारे जम्बूद्वीप में हलचल मचाता हुआ दान देता है। सम्भव है, इस दान के प्रताप से मुझे च्युत कर स्वयं शक्र हो जाय। मैं इसके धन

६८. विसय्ह जातक । ४.१.३४०

का नाश करके इसे दरिद्र बनाऊँगा, जिससे यह दान न दे सके।"

तब उसने उसके सारा धन-धान्य, तेल, मधु, शक्कर औरतों और नौकर-चाकर को अन्तर्ध्यान कर दिया। दान-प्रबन्धकों ने आकर कहा—"स्वामी! दानशालाएं भी खाली हो गई। जहां जो रखा था, कहीं कुछ नहीं दिखाई देता।" सेठ ने कहा—"दान-उच्छेद मत होने दो, खर्चा यहां से ले जाओ।" उसने भार्या को बुलाकर कहा—"भद्रे! दान चालू कराओ।"

उसने सारा घर खोजा। उसे आधे मासे भर भी कहीं कुछ दिखाई नहीं दिया। बोली—"आर्य! जो वस्त्र हम पहने हैं, उन्हें छोड़ कहीं कुछ नहीं दिखाई देता। सारा घर खाली है। सात रत्नों से भरे कोठों के द्वार खुलवाने पर भी कुछ न दिखाई दिया।" सेठ और उसकी भार्या को छोड़ दूसरे दास, नौकर-चाकर भी नहीं दिखाई दिये।

उसने फिर भार्या को सम्बोधित किया—"भद्रे! दान नहीं बन्द किया जा सकता। सारे घर में खोजकर कुछ अवश्य निकालो।"

उसी समय घसियारा दराँती, बहंगी और घास बांधने की रस्सी दरवाजे के अन्दर फेंककर भाग गया। सेठ की भार्या ने वही लाकर दिया—"स्वामी! इन्हें छोड़कर घर में और कुछ नहीं दिखाई देता।" सेठ ने कहा—"भद्रे! इससे पहले मैंने कभी घास नहीं काटी है; लेकिन आज घास छीलकर, बेचकर यथायोग्य दान दूंगा।" दान देना बन्द न हो जाय, इस डर से वह दराँती, बहँगी और रस्सी लेकर, नगर से निकलकर घास की जगह पर गया। वहां घास छीलकर दो ढेरियां बांधी। बहंगी पर रखकर नगर में बेचने लाया। उसने सोचा कि "दाम का एक हिस्सा हमारे लिए होगा और दूसरे हिस्से को दान देंगे।" नगर-द्वार पर घास बेचने से उसे जो मासक मिले, उनका एक हिस्सा उसने याचकों को दे दिया। याचक बहुत थे। 'मुझे भी दें, मुझे भी दें' कहकर चिल्लाने लगे। दूसरा हिस्सा भी देकर भार्या-सहित उस दिन वह निराहार ही रहा।

इस प्रकार छः दिन बीत गये। सातवें दिन जब वह घास ला रहा था, निराहार रहने तथा अति सुकुमार होने के कारण माथे पर सूर्यताप के लगते ही उसकी आँखें चकरा गईं। वह होश न सँभाल सका और घास को बखेरते हुए गिर पड़ा। शक्र उसकी करनी को देखता हुआ विचरता था। उसी समय आकाश में खड़े होकर उसने कहा—"विसय्ह! तूने पूर्व समय से दान दिये हैं। दान देते-देते तेरे धन का व्यय हो गया। यदि भविष्य में दान देना छोड़ दे तो तेरा सब धन तुझे प्राप्त हो जाय।"

सेठ ने उसकी बात सुनकर पूछा—"तू कौन है?"

"मैं शक्र हूं।"

"शक्र तो स्वयं दान देकर, शील का पालन कर, उपोसथ-कर्म कर सात व्रतों की पूर्त्ति करके शक्रत्व को प्राप्त हुआ। लेकिन तू तो दान को रोक रहा है। यह अनार्य कृत्य है।"

शक्र जब उसे न रोक सका तो पूछा—"दान किस लिए देता है?"

"न शक्रत्व की इच्छा है, न ब्रह्मत्व की। मैं तो सर्वज्ञता की प्रार्थना करता हुआ दान देता हूँ।"

शक्र ने उसकी बात सुन प्रसन्न हो उसकी पीठ पर हाथ फेरा। बोधिसत्व का शरीर उसी क्षण भोजन खाये हुए के शरीर की भांति भर गया। शक्र के प्रताप से सारा धन भी पूर्ववत् हो गया। तब शक्र उसे अपरिमित धन देकर और दान के लिए प्रेरित करके अपने निवास-स्थान को गया। कहता गया—"महासेठ! अब से तू प्रतिदिन बारह-बारह लाख का दान दे।"

: ६९ :

सन्धिभेद

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व उसके पुत्र होकर जन्मे। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प ग्रहण कर पिता के मरने पर धर्मानुसार राज्य करने लगे।

उसी समय एक ग्वाला जंगल में गौवें चराकर वापिस लौटते समय एक गाभिन गौ को भूल, जंगल में छोड़, लौट आया। उस गाय की एक सिंहनी से दोस्ती हो गई। वे दोनों पक्की दोस्त हो एक जगह चरती थीं। आगे चलकर गौ ने बछड़े को और सिंहनी ने शेर के बच्चे को जन्म दिया। वे दोनों कुलागत मैत्री के कारण पक्के दोस्त हो इकट्ठे रहते थे।

एक जंगली आदमी ने जंगल में दाखिल होकर उनकी मैत्री देखी। जब उसने जंगल में पैदा हुआ सामान ले जाकर राजा को दिया तो राजा ने पूछा—"मित्र! तूने जंगल में कोई आश्चर्य की बात देखी?"

"देव! और तो कुछ नहीं देखा, एक सिंह और एक बैल को परस्पर मित्र हो साथ चरते देखा है।"

"इनमें तीसरा आ मिलने पर विपत्ति आयेगी। जब इनमें किसी तीसरे को देखें तो मुझे कहना।"

"देव! अच्छा।"

जंगली आदमी के बाराणसी जानेपर एक गीदड़ बैल और सिंह की सेवा में रहने लगा। जंगली आदमी ने जाकर उन्हें देखा। सोचा—"अब तीसरे के आ मिलने की बात राजा से कहनी चाहिए।" वह नगर को गया। गीदड़ ने सोचा—"सिंह और बैल के मांस को छोड़कर दूसरा कोई ऐसा मांस नहीं है जिसे मैंने न खाया हो। इनमें फूट डालकर इनका मांस खाऊंगा।" उसने दोनों में फूट डालना शुरू किया—"यह तुझे ऐसा कहता है, वह तुझे

६९. सन्धिभेद । ४.२.३४९

ऐसा कहता है।" परस्पर फूट डालकर उसने ऐसा कर दिया कि वे शीघ्र ही आपस में लड़कर मर जायें।

जंगली आदमी ने आकर राजा को सूचना दी—"देव ! उनमें तीसरा आ मिला है।"

"वह कौन है ?"

"देव ! गीदड़ है।"

"वह दोनों में फूट डालकर मार डालेगा। हम उनके मरने के समय पहुँचेंगे।" कहकर राजा रथ पर चढ़ जंगली आदमी के बताये मार्ग से चलकर वहाँ उस समय पहुँचा, जब वे परस्पर लड़कर मर चुके थे। गीदड़ प्रसन्न-चित्त हो एक बार सिंह का मांस खाता, एक बार बैल का। राजा ने उन दोनों को मरा देखकर रथ पर बैठे-ही-बैठे सारथी से कहा—

"न इनमें स्त्रियों के लिए लड़ाई थी, न भोजन के लिए। इसलिए इस फूट डालनेवाले की चतुराई देख। चुगलखोरी तेज तलवार की तरह मांस में घुसती है। इसीलिए अधम पशु सिंह और वृषभ को खाते हैं। जो आदमी चुगलखोर, फूट डालने वाले के वचन को सुनता है, वह इसी अवस्था को प्राप्त होता है। हे सारथी ! जो फूट डालनेवाले चुगलखोर की वाणी की ओर ध्यान नहीं देते, वे स्वर्गगामी आदमियों की तरह सुख से सोते हैं।"

यह कहकर राजा सिंह के केसर, चर्म, नख, दाढ़ आदि नगर को लिवा ले गया।

: ७० :

शोकातुर पिता

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक गृहस्थ के घर में पैदा हुए। नाम रखा गया सुजातकुमार

७०. सुजात जातक। २.१.३५२

उसके बड़े होने पर उसका पितामह मर गया। उसका पिता अपने पिता के मरने से शोकाकुल हो गया। उसने श्मशान से हड्डियां लाकर अपने उद्यान में मिट्टी का स्तूप बनाया। उन हड्डियों को उस स्तूप में रखा। फिर समय-असमय स्तूप की पुष्पों से पूजा करता। चैत्य के चारों ओर चक्कर काटता हुआ रोता-पीटता। न स्नान करता, न खाता, न खेती का काम देखता।

यह देख बोधिसत्व ने सोचा—"अप्पा के मरने के बाद पिता शोकातुर है। मुझे छोड़ और कोई इसे नहीं समझा सकता। एक उपाय से इसका शोक दूर करूंगा।" उसने गांव के बाहर एक मरा बैल देखा और घास-पानी ले उसके सामने करके कहने लगा—"खा, खा,—पी, पी।" जो कोई आता, उसे देखकर कहता—"सुजात! क्या पगले हो? मरे हुए बैल को घास-पानी देते हो?" वह कुछ उत्तर न देता। उन्होंने उसके पिता से जाकर कहा— "तेरा पुत्र पगला गया है। मरे बैल को घास-पानी देता है।" यह सुन गृहस्थ का पितृ-शोक जाता रहा। उसकी जगह पुत्र-शोक उत्पन्न हो गया। उसने जल्दी-जल्दी आकर पूछा—

"तात सुजात! घास को लेकर निष्प्राण, बूढ़े बैल के सामने 'खा,खा,—पी, पी' क्यों कहता है? कहीं अन्न-पानी से मरा बैल जी उठता है? तू तो पण्डित है, यह मूर्ख की तरह क्यों विलाप करता है?"

बोधिसत्व ने कहा—

"उसका सिर वैसे ही है, उसके हाथ-पाँव, कान और पूंछ वैसे ही हैं, इसलिए मैं सोचता हूं कि शायद बैल जी उठे। लेकिन अप्पा का न तो सिर दिखाई देता है, न हाथ-पैर दिखाई देते हैं। क्या तुम भी दुर्मति नहीं हो, जो हड्डियों पर मिट्टी का स्तूप बनाकर रोते हो?"

यह सुन बोधिसत्व के पिता ने सोचा—"मेरा पुत्र पण्डित है। इहलोक तथा परलोक-कृत्य, दोनों जानता है। मुझे समझाने के लिए ही इसने यह किया है।" वह बोला— "तात सुजात पण्डित! मैं समझ गया कि सभी संस्कार अनित्य हैं। पिता का शोक-हरण करनेवाले पुत्र को ऐसा ही होना चाहिए।" उसने पुत्र की प्रशंसा करते हुए कहा—

"घी पड़ी हुई आग की तरह जलते हुए मेरे हृदय के दुःख को पानी से अग्नि शान्त करने की तरह तूने शान्त कर दिया। मेरे हृदय में लगे हुए शोक-शल्य को निकाल दिया—मुझ शोकातुर का पितृ-शोक दूर कर दिया। हे माणवक ! तेरी बात सुनकर मैं शोक-रहित हो गया हूँ। अब मैं न चिन्ता करता हूं, न रोता हूं। इस प्रकार जिन प्रज्ञावानों के हृदय में प्रज्ञा होती है, वे दूसरों को शोक से उसी प्रकार मुक्त कर देते हैं, जैसे सुजात ने पिता को किया।"

: ७१ :

धोनसाख जातक

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व तक्षशिला में प्रसिद्ध आचार्य हुए। जम्बूद्वीप-भर के क्षत्रिय विद्यार्थी तथा ब्राह्मण विद्यार्थी उसीके पास विद्या सीखते थे।

बाराणसी-राज के पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार ने भी उसके पास तीनों वेद पढ़े। वह स्वभाव से कठोर, परुष तथा दुस्साहसी था। बोधिसत्व ने उसके शरीर-लक्षणों से ही उसका स्वभाव जानकर उसे उपदेश दिया—"तात ! तू कठोर, परुष तथा दुस्साहसी है। इस प्रकार के आदमी द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य स्थायी नहीं होता। कल्याण, अच्छी पैदावार तथा शरीर का सुख सदैव एक-सा नहीं रहता। ऐश्वर्य नष्ट होने पर उसे वैसे ही आश्रय नहीं मिलता, जैसे समुद्र में आदमी को नौका के नष्ट होने पर। मनुष्य जो-जो कर्म करता है, उन्हें अपने-आप ही भोगता है—शुभ कर्म करनेवाला शुभकर्म तथा अशुभकर्म करनेवाला अशुभकर्म। जो जैसा बीज बोता है, वह वैसा फल पाता है।"

वह आचार्य को प्रणाम कर बाराणसी गया। पिता को शिल्प दिखाकर युवराज-पद पर प्रतिष्ठित हुआ। पिता के मरने के बाद राजा बना। उसका

७१. धोनसाख जातक। ४.१.३५३

पिङ्गिय नाम का कठोर, परुष एक पुरोहित था। उसने ऐश्वर्य के लोभ से सोचा—"मैं इस राजा द्वारा सकल जम्बुद्वीप के सारे राजा पकड़वाऊं। ऐसा होने पर यह एकछत्र राजा होगा और मैं एक ही पुरोहित।" उसने राजा को अपनी बात समझाई।

राजा बड़ी सेना के साथ निकला। एक राजा के नगर को घेरकर उसे पकड़ लिया। इसी प्रकार एक-एक करके सारे जम्बुद्वीप के राज्य जीत लिये। तब हजार राजाओं के साथ तक्षशिला का राज्य लेने के लिए वहां पहुँचा। बोधिसत्व ने नगर की मरम्मत करा उसे ऐसा बना दिया कि दूसरे उसका ध्वंस न कर सकें।

वाराणसी-राज भी गंगा नदी के तट पर बड़े वट-वृक्ष के नीचे, कनात बिछाकर, उस पर चंदवा तनवाकर, उसके नीचे शैया बिछवाकर रहने लगा। जम्बुद्वीप के हजार राजाओं को जीतकर भी तक्षशिला को न जीत सका। तब पुरोहित से पूछा—"आचार्य! हम इतने राजाओं के साथ आकर भी तक्षशिला नहीं ले सके। क्या करना चाहिए?"

"महाराज! हजार राजाओं की आँखें निकाल, उन्हें मार, कोख चीर, पाँच प्रकार का मधुर-मांस ले इस वट-वृक्ष पर रहनेवाले देवता की बलि दें। आँतों की बत्ती से वृक्ष को घेरकर लहू के पंचांगुली चिह्न लगायें। इस प्रकार शीघ्र ही हमारी जय होगी।"

राजा ने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। कनात के अन्दर महायोद्धा मल्लों को रखा। फिर एक-एक राजा को बुलवा, दबवाकर, बेहोश करवा आँखें निकलवाकर मरवा डाला। मांस लेकर लाशें गंगा में बहा दी गयीं। फिर उपरोक्त विधि से बलि चढ़ा, बलि-भेरी बजवाकर युद्ध के लिए निकला। एक यक्ष आया और राजा की दाहिनी आँख निकालकर ले गया। बड़ी वेदना हुई। पीड़ा से बेहोश हो वह आकर वट-वृक्ष के नीचे बिछे आसन पर चित पड़ रहा।

उस समय एक गीध ने एक तीक्ष्ण सिरेवाली हड्डी लेकर, वृक्ष की शाखा पर बैठ, मांस खाकर गिरा दी। हड्डी की नोक आकर राजा की

बायीं आँख में लोहे के काँटे की तरह लगी और उसकी आँख फोड़ दी। उस समय उसे बोधिसत्व का वचन याद आया। उसने कहा—"मालूम होता है, हमारे आचार्य ने यह देखकर ही कहा था कि जिस प्रकार बीज के अनुरूप फल होता है, उसी प्रकार कर्मानुरूप विपाक अनुभव करते हैं। यही आचार्य पाराशर्य का वचन है कि "तू पाप न कर, जो तुझे कष्ट दे।" हे पिङ्गिय! यही वह विस्तृत शाखाओंवाला वट-वृक्ष है, जहाँ अलंकृत तथा चन्दनसार लगाये हुए हजार क्षत्रियों को मार डाला। अब वही दुःख मेरे पास लौट आया है। चन्दन-लिप्त गात्रवाली, सिन्दु वृक्ष की लता के समान ऊपर उठी हुई शोभायमान मेरी भार्या है। अब मैं उस अप्सरी को बिना देखे ही मर जाऊंगा, यह मेरे लिए इससे भी अधिक दुःखदायक है।

इस प्रकार विलाप करता हुआ ही वह मरकर नरक में पैदा हुआ। न वह ऐश्वर्य-लोभी पुरोहित ही उसकी रक्षा कर सका, न उसका अपना ऐश्वर्य। उसके मरते ही उसकी सारी सेना तितर-बितर होकर भाग गई।

: ७२ :

उरग-जातक

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व वाराणसी के द्वार पर एक गांव में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। वे कृषि-कर्म करके जीविका चलाते थे। पुत्र और पुत्री, दो बच्चे थे। आयु होने पर वह पुत्र के लिए समानकुल की लड़की ले आया।

दासी के सहित वे छः जने हो गये। वे आपस में बड़े मेल से प्रसन्न-चित्त, प्रेमपूर्वक रहते थे। बोधिसत्व शेष पांचों को इस प्रकार उपदेश देते—"जो मिले उसमें से दान दो, शील की रक्षा करो, उपोसथ-

७२. उरग-जातक। ४.१.३५४

व्रत रखो, मरण-स्मृति की भावना करो, अपने मरण का ख्याल करो; प्राणियों का मरना निश्चित है, जीना अनिश्चित है, सभी संस्कार अनित्य हैं, क्षय-व्यय स्वभाववाले हैं। रात-दिन अप्रमादी होकर विचरो।"

वे उपदेश ग्रहण कर अप्रमादी हो, मरण-स्मृति की भावना करते थे।

एक दिन बोधिसत्व खेत पर जाकर हल चला रहे थे। पुत्र कूड़ा निकालकर जला रहा था। उसके पास एक बिल में विषैला सांप था। धुआं उसकी आंखों में लगा। उसने क्रोधित हो, निकलकर चारों दांत गड़ाकर उसे डस लिया। वह मरकर गिर पड़ा। बोधिसत्व ने उसे गिरा देखा तो बैलों को रोक दिया। उठा लाकर एक वृक्ष के नीचे लिटा कपड़े से ढक दिया। वह न रोया न चिल्लाया। इस प्रकार अनित्यता का विचार कर कि "टूटने के स्वभाववाला टूट गया, मरण स्वभाववाला मर गया, सभी संस्कार अनित्य हैं, मरणशील हैं," वह हल चलाने लगा।

उसने खेत के पास से जानेवाले एक विश्वस्त आदमी को देखकर पूछा—"तात ! घर जाते हो ?"

"हां।"

"तो हमारे घर जाकर ब्राह्मणी को कहना कि आज पूर्व की तरह दो जनों का भोजन न लाकर एक ही जने का भोजन लाये। पहले अकेली दासी ही भोजन लाती थी, आज चारों जने शुद्ध वस्त्र पहनकर हाथ में सुगन्धित-फूल लिये आये।"

उसने "अच्छा" कहकर ब्राह्मणी से वैसे ही जा कहा।

"तात ! यह सन्देश तुझे किसने दिया ?"

"आर्ये ! ब्राह्मण ने।"

वह जान गई कि "मेरा पुत्र मर गया है", किन्तु उसे कम्पन मात्र भी नहीं हुआ। इस प्रकार सुसंयत चित्तवाली ब्राह्मणी ने स्वच्छ वस्त्र पहन, हाथ में सुगन्धित फूल ले, आहार लिया और बाकी लोगों के साथ खेत पर पहुंची। कोई भी न रोया न चिल्लाया। बोधिसत्वने जहाँ पुत्र पड़ा था, वहीं

छाया में बैठ कर खाया। भोजनान्तर सबने लकड़ियाँ लेकर चिता पर रखीं। गन्ध-पुष्पों से पूजा कर आग लगाई। किसीकी आँख से एक बूंद भी आँसू नहीं गिरा। सभी ने मरणानुस्मृति का अभ्यास किया था। उनके शील के तेज से शक्र का भव गरम हो गया।

उसने विचार किया—"कौन है जो, मुझे मेरे स्थान से च्युत करना चाहता है?" उसे पता लगा कि उनके गुण-तेज से ही उसका आसन गरम हुआ है। वह प्रसन्न हुआ और सोचा कि "मुझे इनके पास जाकर इनसे सिंह-घोषणा करानी चाहिए।" सिंह-घोषणा कराके इनका घर सात रत्नों से भर देना चाहिए। वह शीघ्रता से वहाँ पहुँचा और दाहक्रिया के स्थान पर एक ओर खड़ा होकर बोला—"तात! क्या करते हो?"

"स्वामी! एक मनुष्य को जला रहे हैं।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम एक आदमी को नहीं जला रहे हो; किन्तु एक मृग को मारकर पका रहे हो।"

"नहीं स्वामी! मनुष्य को ही जला रहे हैं।"

"तो किसी वैरी मनुष्य को जला रहे होगे?"

"स्वामी! वैरी पुरुष नहीं, औरस पुत्र है।"

"तो अप्रिय पुत्र होगा।"

"स्वामी! मेरा अति प्रिय पुत्र है।"

"तो क्यों नहीं रोते हो?"

उसने न रोने का कारण बताते हुए कहा—"जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली छोड़ कर चला जाता है उसी प्रकार प्राणी अपनी केंचुली छोड़कर चला जाता है। इस प्रकार भोग-हीन शरीर के काल कर जाने पर जब उसे जलाया जाता है तो वह रिश्तेदारों के रोने को नहीं जानता है। इसलिए मैं इसका सोच नहीं करता हूँ। उसकी जो गति होगी, वहाँ गया।"

शक्र ने बोधिसत्व की बात सुन ब्राह्मणी से पूछा—"माँ! तेरा वह क्या होता था?"

"स्वामी! दस महीने कोख में लेकर स्तन-पान करा हाथ-पाँव ठीक कर

पाला-पोसा पुत्र है।'

'माँ! पिता चाहे पुरुष होने के कारण न रोये; किन्तु माता का हृदय कोमल होता है, तू क्यों नहीं रोती ?"

उसने न रोने कारण कहा—

"बिना बुलाये वहाँ से आया, बिना आज्ञा लिये यहाँ से गया। जैसे आया, वैसे चला गया। उसमें अब रोना-पीटना क्या ? जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने-पीटने को नहीं जानता। इसीलिए मैं उसका सोच नहीं करती हूं। जो उसकी गति होगी, वहाँ गया।"

तब शक्र ने बहन से पूछा—"अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! मेरा भाई होता था।"

"अम्म ! बहनों का भाई से प्रेम होता है। तू क्यों नहीं रोती ?"

"यदि रोऊँ तो कृश हो जाऊँगी। उससे मुझे क्या लाभ होगा ? हमारे मित्र तथा सुहृदों को और भी अरुचि होगी। जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने-पीटने को नहीं जानता। इसलिए मैं उसका सोच नहीं करती हूं। जो उसकी गति होगी, वहाँ गया।"

शक्र ने बहन की बात सुन उसकी भार्या से पूछा—

"अम्म ! तेरा वह क्या था।"

"स्वामी ! मेरा पति था।"

"पति के मरने पर स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, अनाथ। तू क्यों नहीं रोती ?"

"जैसे बालक जाते हुए चन्द्रमा को देख उसे लेने के लिए रोता है वैसे ही उसका आचरण है जो किसी मरे हुए को रोता है। जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने-पीटने को नहीं जानता। इसीलिए मैं उसका सोच नहीं करती हूं। जहाँ उसकी गति होगी, वहाँ गया।"

शक्र ने भार्या की बात सुन दासी से पूछा—"अम्म ! तेरा वह क्या होता था ?"

"स्वामी ! मेरा आर्य !"

"निश्चय ही उसने तुझे पीटकर, पीड़ित कर काम लिया होगा, इसीसे तू सोचती है कि अच्छा हुआ मर गया, और रोती नहीं है।"

"स्वामी ! ऐसा न कहें। वह इनके योग्य नहीं है। क्षमा, मैत्री, दया से युक्त मेरा आर्यपुत्र हृदय से पाले पुत्र के समान था।"

"अम्म ! तो तू रोती क्यों नहीं है ?"

"जैसे टूटा हुआ पानी का घड़ा फिर जुड़ नहीं सकता और उसके लिए रोना बेकार है, वैसा ही उसका आचरण है, जो मरे के लिए रोता है। जलाया जाता हुआ वह रिश्तेदारों के रोने-पीटने को नहीं जानता। इसलिए मै उसका सोच नहीं करती। जो उसकी गति होगी, वहीं गया।"

शक्र ने सबकी धर्म-कथा सुन प्रसन्न होकर कहा—"तुमने अप्रमादी होकर मरणानुस्मृति का अभ्यास किया है। अब से तुम अपने हाथ से काम न करो। मै देवराज शक्र हूँ। मैं घर में अनन्त सात रत्न कर दूंगा। तुम दान दो, शील रखो, उपोसथ-व्रत करो और अप्रमादी रहो।"

उन्हें उपदेश देकर उनके घर को असीम धन से भरकर शक्र चला गया।

: ७३ :

चिड़िया ने बदला लिया

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व हाथी की योनि में पैदा हुए। बड़े होने पर सुन्दर, महान् शरीरवाले होकर अस्सी हजार हाथियों के नेता बन, हिमालय प्रदेश में रहने लगे।

उसी समय एक लटुकिका चिड़िया ने हाथियों के विचरने की जगह पर अण्डे दिये। अण्डे सेये जाकर उसमें से चूज़े बाहर आये। अभी जब

७३. लटुकिका जातक। ५.१.३५७

उनके पर नहीं निकले थे, अब वे उड़ नहीं सकते थे। उसी समय हजार हाथियों के साथ बोधिसत्व चरते-चरते वहाँ आ पहुँचे। उसे देख लटुकिका ने सोचा—"यह हस्ति-राज मेरे बच्चों को कुचलकर मार देगा। हन्त ! मैं इन बच्चों की रक्षा के लिए इससे धार्मिक याचना करूं।" उसने दोनों पंख जोड़, उसके आगे खड़ी होकर कहा—

"हे अरण्यक ! हे यूथपति ! हे यशस्वी ! हे साठे हाथी ! मैं तुम्हें नमस्कार करती हू, मैं पखों से तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रों का वध मत करो।"

"लटुकिके ! मैं तेरे पुत्रों की रक्षा करूंगा। तू चिन्ता न कर।"

वह उन बच्चों के ऊपर खड़े हो गये। अस्सी हजार हाथियों के चले जाने पर लटुकिका को सम्बोधित कर कहा—"हमारे पीछे एक अकेला हाथी आता है। वह मेरा कहना नहीं मानता। उसके आने पर उससे भी प्रार्थना कर पुत्रों की रक्षा करना।" यह कह वह चला गया।

लटुकिका ने दूसरे हाथी के आने पर उससे प्रार्थना की—"हे अरण्यक ! हे पर्वतवासी ! हे एकचारी कुञ्जर ! मैं तुझे नमस्कार करती हूँ। मैं पंखों से तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ—मुझ दुर्बल के पुत्रों का वध मत करो।"

"लटुकिके ! तू दुर्बल है, मेरा क्या करेगी ? मैं तेरे बच्चों को मारूंगा। तेरे जैसी लाखो को भी मैं बायें पैर से कुचल दूंगा।"

यह कहकर बच्चों को पांव से चूर्ण-विचूर्ण कर तथा अपने मूत्र से बहाकर चिंघाड़ता हुआ चला गया। लटुकिका ने वृक्ष की शाखा पर बैठकर कहा—"हाथी ! अभी तो तू चिंघाड़ता हुआ जाता है। कुछ दिन में मेरी क्रिया देखेगा तू नहीं जानता कि शरीर-बल से ज्ञान-बल बढ़कर है। अच्छा, तुझे जनाऊंगी।"

यह कह उसने कुछ दिन एक कौवे की सेवा की। कौवे ने प्रसन्न होकर पूछा—"तेरे लिए क्या करूं ?"

"स्वामी ! मैं और कुछ नहीं चाहती। केवल यही आशा करती हूं कि

आप अपनी चोंच से इस अकेले घूमनेवाले हाथी की आंख फोड़ दें।"

उसके "अच्छा" कहकर स्वीकार कर लेने पर उसने एक मक्खी की सेवा की। उसने पूछा—"तेरे लिए क्या करूं?"

"इस कौवे द्वारा उस अकेला घूमनेवाले हाथी की आँख फोड़ दिये जाने पर मैं चाहती हूं कि तुम उस जगह पर अण्डा दे दो।"

उसने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। तब उसने एक मेंढक की सेवा की। उसने पूछा—"क्या करूं?"

"जब अकेला घूमनेवाला हाथी अन्धा होकर पानी की खोज करे तो तुम पर्वत पर खड़े होकर आवाज करना और उसके पर्वत पर चढ़ जाने पर, उतरकर नीचे प्रपात में आवाज लगाना। मैं इतना ही तुमसे चाहती हूं।"

उसने उसकी बात सुन "अच्छा" कहकर स्वीकार किया।

एक दिन कौवे ने हाथी की दोनों आंखें फोड़ दीं। मक्खी ने आकर अण्डे दे दिये। वह कीड़ों से खाया जाता हुआ पानी खोजता घूमता था। उसी समय मेंढक ने पर्वत पर खड़े हो आवाज दी। हाथी यह समझ कर पर्वत पर चढ़ा कि वहां पानी होगा। मेंढक ने उतरकर प्रपात में खड़े होकर आवाज लगाई। हाथी "पानी होगा" समझकर प्रपात की ओर जाता हुआ फिसलकर पर्वत के नीचे गिरा और मर गया।

लटुकिका ने उसे मरा जाना तो प्रसन्न हुई कि शत्रु की पीठ देख ली। वह उसके शरीर पर चल-फिरकर यथाकर्म परलोक गई।

: ७४ :

मंत्र-ग्रहण

पूर्व समय में वाराणसी में सेनक नाम का राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व शक्रत्व को प्राप्त हुए। सेनक राजा की एक नाग-

७४. खरपुत्त जातक। ६.२.३८६

राज के साथ मित्रता थी। वह नाग-राज नाग-भवन से निकलकर भूमि पर शिकार पकड़ता फिरता था। गांव के लड़कों ने उसे देखकर ढेलों तथा डण्डों से पीटा। राजा ने क्रीड़ा के लिए उद्यान जाते समय देखकर पूछा—"यह लड़के क्या कर रहे हैं?" जब सुना कि एक सर्प को मार रहे हैं तो आदमियों से कहा कि "मारने मत दो, इन्हें भगा दो।"

नागराज जीवित बचकर नाग-भवन गया। वहाँ से बहुत से रत्न लेकर आधी रात के समय राजा के शयनागार में घुसकर रत्न रख दिये। बोला—"मेरी जान तुम्हारे ही कारण बची।" उसने उसके साथ मैत्री स्थापित की। वह बार-बार जाकर राजा से भेंट करता। उसने अपनी नाग-कन्याओं में से काम-भोगों से अतृप्त एक कन्या को राजा की सेवा में रहने के लिए नियुक्त किया, साथ ही राजा को एक मन्त्र दिया कि जब उसे न देखे तब इस मन्त्र को जपे।

एक दिन राजा ने उद्यान में पहुँच नाग-कन्या के साथ पुष्करिणी में जल-क्रीड़ा की। नाग-कन्या ने एक जल-सर्प को देखा तो रूप बदलकर उसके साथ अनौचित्य का सेवन किया। राजा ने जब उसे नहीं देखा तो सोचा—"कहाँ गई?" मन्त्र जपने पर वह उसे अनाचार करती हुई दिखाई दी। राजा ने उसे बाँस की चपटी से मारा। वह क्रोधित होकर वहाँ से नाग-भवन पहुँची। पिता ने पूछा—"क्यों लौट आई?"

"तुम्हारे मित्र ने जब देखा कि मैं उसका कहना नहीं करती हूँ तो उसने मुझे पीठ पर मारा।"

उसने पीठ की चोट दिखाई। नाग-राज ने बिना सच्ची बात जाने ही चार नाग-तरुणों को बुलाकर भेजा—"जाओ, सेनक के शयनागार में घुस कर फुंकार से ही उसे भूसे की तरह जला दो।" वे राजा के सोने के समय उसके शयनागार में प्रविष्ट हुए। उनके प्रवेश करने के समय ही राजा देवी से बोला—"भद्रे! मालूम है, नाग-कन्या कहाँ गई?"

"देव! नहीं जानती।"

"आज जिस समय हम पुष्करिणी में जल-क्रीड़ा कर रहे थे, उसने एक सर्प के साथ अनाचार किया। मैंने उसे बाँस की चपटी से मारा, जिससे वह ऐसा न करे। मुझे डर लगता है कि वह नाग-भवन जाकर मेरे मित्र को कुछ कहकर हमारी मैत्री तोड़ेगी।"

यह सुन तरुण वहीं से लौट पड़े। नाग-भवन पहुँच कर उन्होंने राजा से वह समाचार कहा। उसके मन में संवेग उत्पन्न हुआ। वह उसी क्षण राजा के शयनागार में पहुँचा और वह बात कहकर क्षमा माँगी, फिर उसने राजा को सबकी बोली जानने का मन्त्र दिया। कहा कि "यह मेरा जुर्माना है।" साथ ही यह भी कहा कि "यह मन्त्र अति मूल्यवान है। यदि किसी और को देगा तो आग में जलकर मरेगा। राजा ने "अच्छा" कह स्वीकार किया।

तब से वह चींटियों की बात भी समझ सकता था। एक दिन वह महान तल्ले पर बैठा हुआ मधु-खाँड के साथ भोजन कर रहा था। खाते-खाते मधु की एक बूद, खाँड की एक बूंद तथा पूये का एक टुकड़ा भूमि पर गिर पड़ा। एक चीटी उसे देखकर चिल्लाती घूमती थी—"राजा के महान तल्ले पर शहद की मटकी फूट गई। खांड की गाड़ी और पूओं की गाड़ी उलट पड़ी। शहद, खाँड तथा पूये खाओ।" राजा उसकी आवाज सुनकर हँसा। राजा के पास खड़ी देवी ने सोचा—"राजा क्या देखकर हँसा?"

जब राजा खाकर, नहाकर पलंग पर बैठा था तो एक मक्खी से उसके स्वामीने कहा—"भद्रे! आ रमण करें।" वह बोली—"स्वामी! थोड़ा सबर करें। अभी राजा के लिए सुगन्धियाँ लाई जायेंगी। उनका लेप करते समय पैरों में सुगन्धि-चूर्ण गिरेगा। मैं उसमें लोट-पोटकर सुगन्धित शरीरवाली हो जाऊंगी। तब राजा की पीठ पर लेटकर रमण करेंगे।" राजा ये शब्द सुनकर भी हँसा। देवी फिर सोचने लगी—'राजा क्या देखकर हँसा?"

फिर शाम को जब राजा भोजन कर रहा था, भात का एक दाना जमीन पर गिर पड़ा। चीटियाँ चिल्लाईं—'राजकुल में भात की गाड़ी टूटकर बिखर गई। भात खाओ।" यह सुन राजा फिर हँसा। देवी

सोने की कड़छी लिये राजा को परस रही थी। वह सोचने लगी कि 'मुझे देखकर राजा हँसता है।" उसने राजा के साथ शैया पर लेटने के समय पूछा—"देव! क्यों हँसे?" वह बोला—"मेरे हँसने के कारण से तुझे क्या?" लेकिन फिर जिद करने पर कह दिया।

तब वह बोली—"आप जो मन्त्र जानते हैं, वह मुझे दें।"

"नहीं दे सकता।"

वह बार-बार जिद करने लगी। राजा बोला—"यदि मैं यह मन्त्र तुझे दूँगा तो मैं मर जाऊंगा।"

"देव! मर भी जायें तो भी मुझे दे।"

राजा ने स्त्री के वशीभूत होकर "अच्छा" कहा और सोचा—"इसे मन्त्र देकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊंगा।" वह रथ पर चढ़कर उद्यान गया।

उस समय शक्र ने संसार पर नजर डालते हुए यह बात देखी। उसने सोचा—"मूर्ख राजा स्त्री के लिए आग में जल मरने जा रहा है। मैं इसकी जान बचाऊँगा।" उसने 'सुजा' नामकी असुर-कन्या को लिया और बाराणसी में प्रविष्ट हुआ। वह बकरी बनी और शक्र स्वयं बकरा। उसने ऐसा संकल्प किया कि जनता उन्हें न देखे और वे रथ के आगे-आगे हो लिये। उस बकरे को राजा और रथ के घोड़े देखते थे, और कोई नहीं।

बकरे ने बातचीत पैदा करने के लिए ऐसा आकार बनाया जैसे बकरी के ऊपर चढ़ने जा रहा हो। रथ में जुते एक घोड़े ने उसे देखा तो बोला—"मित्र बकरे! हमने सुना था कि बकरे मूर्ख होते है, निर्लज्ज होते हैं; लेकिन देखा नहीं था। तू छिपकर करने योग्य अनाचार को इतने जनों की नजर के सामने ही करता है। जो पहले हमने सुना था, उसका यह जो देखते हैं, उससे मेल खाता है।"

यह सुनकर बकरे ने कहा—"हे गर्दभ-पुत्र! यह समझ कि तू भी मूर्ख है, जो रस्सियों में बंधा है। टेढ़े होंठ हैं और नीचे मुँह हैं तथा यह तेरी और भी मूर्खता है, जो मुक्त होने पर भागता नहीं है। और तुझसे बढ़कर मूर्ख यह सेनक राजा है, जिसे तू रथ में खींचता है।"

राजा उन दोनों की बातें समझता था, इसलिए उसे सुनते हुए उसने धीरे-धीरे रथ हांका। घोड़े ने भी उसकी बात सुनकर कहा—

"हे अजराज ! जिस कारण मैं मूर्ख हूं, वह मैं जानता हूं; लेकिन मैं यह पूछता हूं—बता कि सेनक क्यों मूर्ख है ?"

"क्योंकि वह उत्तम वस्तु को प्राप्त करके भार्या को दे देगा, जिससे उस की अपनी मृत्यु होगी और वह भार्या भी उसकी न रहेगी।"

राजा ने उसकी बात सुनकर कहा—"अजराज ! तू ही हमारा कल्याण करेगा। बता, हमें क्या करना चाहिए ?"

"महाराज ! प्राणी के लिए अपने से बढ़कर प्रियतर कुछ नहीं है। एक प्रिय वस्तु के लिए अपना विनाश करना व प्राप्त यश को छोड़ना उचित नहीं।"

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को उपदेश दिया। राजा ने प्रसन्न होकर पूछा—"अजराज ! कहां से आया।"

"महाराज ! मैं शक्र हूं। तुम पर दया करके तुम्हें मृत्यु से मुक्त करने के लिए आया हूं।"

"देवराज ! मैंने उसे वचन दिया है कि "तुझे मन्त्र दूंगा।" अब क्या करूं ?"

"महाराज ! तुम्हारे दोनों के नाश को प्राप्त होने की जरूरत नहीं। उससे पहले यह कहो कि मन्त्र सीखने से पहले चाबुक खाने पड़ते हैं। उसे चाबुक लगवाओगे तो वह मन्त्र नहीं ग्रहण करेगी।"

राजा ने "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। शक्र राजा को उपदेश दे अपने स्थान को गया। राजा ने उद्यान पहुंच देवी को बुलाकर कहा—

"भद्रे ! मन्त्र लेगी ?"

"देव ! हां।"

"तो तैयारी करता हूं।"

"क्या तैयारी ?"

"पीठ पर सौ कोड़े पड़ने पर भी आवाज नहीं निकालनी होगी।"

उसने मन्त्र-लोभ से "अच्छा" कहकर स्वीकार किया। राजा ने जल्लाद को बुलवाकर दोनों ओर चाबुक लगवाए। वह दो-तीन चाबुक सहने के बाद बोली—

"मुझे मन्त्र नहीं चाहिए।"

तब राजा बोला— "तू मुझे मारकर भी मन्त्र लेना चाहती थी।"

उसने उसकी कमर की चमड़ी उधड़वाकर छोड़ा। उसके बाद फिर वह कुछ नहीं बोल सकी।

: ७५ :

फूल की गन्ध की चोरी

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में शिल्प सीखा। आगे चलकर ऋषियों के ढंग से प्रव्रज्या लेकर एक पद्म-सरोवर के पास रहने लगे। एक दिन तालाब में उतरकर खिले फूल को सूंघते थे। एक देव-कन्या ने वृक्ष-स्कन्ध के विवर में खड़े होकर धमकाते हुए कहा—

"यह जो तू बिना दिये हुए कमल-फूल को सूंघता है, यह भी चोरी का एक प्रकार है। तू गन्ध-चोर है।"

तब बोधिसत्व ने प्रश्न करते हुए कहा—

"न ले जाता हूं, न तोडता हूं, केवल दूर से सूंघता हूं। मै किस प्रकार गन्ध-चोर कहला सकता हूं ?"

उसी समय एक आदमी उस तालाब में भिसं उखाड़ रहा था, कमल तोड़ रहा था। बोधिसत्व ने उसकी ओर इशारा करके कहा—"दूर खड़े होकर सूंघने वाले को चोर कहती है। इस आदमी को क्यों कुछ नहीं कहती, जो सब कुछ नष्ट कर रहा है ?"

७५. भिस पुप्फ जातक। ६.२.३९१

उसे कुछ न कहने का कारण बताते हुए देव-कन्या ने कहा—

"जो लोभ में डूबा आदमी है, जो दाई के वस्त्र की तरह मैला है, उसे कुछ कहने के लिए मेरे पास वचन नहीं है; लेकिन श्रमण को कहना उचित समझती हूं। जो निर्दोष पुरुष है, जो नित्य पवित्रता के लिए प्रयत्नशील है, उसका बाल की नोक के समान पाप भी महामेघ के समान प्रतीत होता है।"

उस देव-कन्या द्वारा संविग्न हृदय हो बोधिसत्व ने कहा—

"हे देवी! तू मुझे जानती है। इसलिए पुत्र पर अनुकम्पा करती है। यदि फिर भी इस प्रकार का कोई दोष देखे तो सावधान करना।"

"न हम तुझ पर निर्भर करते है। न तेरी मजदूरी करते हैं। हे भिक्षु! तू ही जान कि किस सुकर्म से सुगति की प्राप्ति होती है।"

इस प्रकार उपदेश देकर वह अपने विमान में चली गई। बोधिसत्व भी ध्यान प्राप्त कर ब्रह्मलोक-गामी हुए।

: ७६ :

वट्टक-जातक

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व बटेर की योनि में पैदा हुए। वह बटेर अरण्य में रूखे तिनके तथा दाने खाकर रहता था। उस समय बाराणसी में रहनेवाला एक लोभी कौवा हाथी आदि के मुर्दार से अतृप्त रहकर जंगल में गया कि वहां इससे बढ़कर भोजन मिलेगा। वहां उसने फल-मूल खाते हुए बोधिसत्व को देख कर सोचा—"यह बटेर बड़ा मोटा है। मालूम होता है, मधुर चोगा चुगता है। इसका खाना पूछकर, वही खाकर मैं भी मोटा होऊंगा।" वह बोधिसत्व से ऊपर की शाखा पर बैठा और बोला—"भो बटेर! आप कौन-

७६. वट्टक जातक। ६.२.३९४

सा बढ़िया भोजन करते हैं, जिससे खूब मोटाये हैं ?" बोधिसत्व ने उसका उत्तर देते हुए कहा—

"हे मातुल ! तू मक्खन-तेल के साथ बढ़िया भोजन करता है । तू किस कारण से दुबला है ?"

"हे बटेर ! शत्रुओं के बीच में रहनेवाले, उनका भोजन चुरा-चुरा कर खानेवाले, नित्य ही उद्विग्न-हृदय मुझ कौवे में शरीर की दृढ़ता कहाँ आ सकती है । पाप कर्म के कारण कौवे नित्य उद्विग्न रहते हैं । इसलिए उन्हें जो भोजन मिलता है, वह उनके शरीर को नहीं लगता । इसलिए मैं दुर्बल हूं । हे बटेर ! तू तो घास-तिनके खाता है, जिनमें कुछ स्निग्धता नहीं । तू किस कारण से मोटा है ?"

"हे कौवे ! मैं अल्पेच्छा, अल्पचिन्ता, अधिक दूर न जाना पड़े तथा जो भी मिल जाय, उसीसे गुजारा कर लेने के कारण मोटा हूँ । जो अल्पेच्छुक है, जिसे अल्पचिन्ता रूपी सुख प्राप्त है तथा जिसे अपने भोजन की मात्रा का ठीक ज्ञान है, उस आदमी की जीवन-चर्या सुख-पूर्वक चल सकती है ।

: ७७ :

गृद्ध-जातक

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था । उस समय बोधिसत्व गीध की योनि में पैदा हुए । बड़े होने पर वह अपने बूढ़े, अन्धे माता-पिता को गुफा में रखकर गोमांस आदि लाकर पोसने लगा । उस समय बाराणसी की श्मशान-भूमि में एक निषाद ने लगभग सभी जगह गीधों को फँसाने के लिए जाल फैलाया ।

एक दिन बोधिसत्व गोमांस खोजते-खोजते श्मशान में दाखिल हुआ ।

७७. गिज्झ जातक । ६.२.३६४

वहाँ जाल में पैर फँस गये। उसे अपनी चिन्ता न थी। वह बूढ़े माता-पिता की याद कर रोने लगा—

"पहाड़ की दरार में रहनेवाले वृद्ध माता-पिता क्या करेंगे? मैं बन्धन में बँधकर नीलिय नामक चिड़ीमार के वशीभूत हो गया।"

तब चिड़ीमार-पुत्र ने गृद्धराज का विलाप सुनकर पूछा—

"हे गीध! किसके लिए विलाप करता है और क्या विलाप करता है? मैंने इससे पूर्व मानुषी बोली बोलने वाला पक्षी न सुना, न देखा।"

"मै पर्वत की दरार में रहनेवाले माता-पिता का पोषण करता रहा। अब जब मैं तेरे वशीभूत हो गया हूं तो वे क्या करेंगे?"

"जो गीध सौ योजन ऊपर से मुर्दार को देख लेता है, वह पास के ही जाल और बन्धन को क्यों नहीं देख लेता?"

"जब मनुष्य का पराभव होनेवाला होता है तो वह पास होने पर भी जाल और बन्धन को नहीं देख पाता।"

"तो हे गीध! पर्वत की दरार में रहनेवाले अपने वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण कर। मैंने तुझे मुक्त किया। सकुशल अपने सम्बन्धियों को देख।"

"इसी प्रकार हे चिड़ीमार! तू भी सब रिश्तेदारों के साथ आनन्द कर। मैं पर्वत की दरार में रहनेवाले बूढे माता-पिता का पालन करूँगा।"

बोधिसत्व मरण-दु:ख से मुक्त होकर शिकारी के सुखी रहने की कामना कर, मुँह भर मांस ले गये और माता-पिता को दिया।